वीर सेवा मन्दिर का त्रैमासिक

अनेकान्त

(पत्र–प्रवर्तक : आचार्य जुगल किशोर मुख्तार 'युगवीर')

वर्ष–47 किरण–4 अक्तूबर–दिसम्बर–94

वीर सेवा मंदिर, 21 दरियागंज, नई दिल्ली–110002

४० वर्ष पूर्व-वर्णी जी की कलम से

जो घर छोड देते है वे भी गृहस्थों के सदृश व्यग्र रहते है। कोई तो केवल परोपकार के चक्र में पडकर स्वकीय ज्ञान का दुरूपयोग कर रहे है। कोई हम त्यागी हैं, हमारे द्वारा ससार का कल्याण होगा ऐसे अभिमान में चूर रह कर काल पूर्ण करते है।

○○

शान्ति का मार्ग सर्व लोकेषणा से परे है। लोक–प्रतिष्ठा के अर्थ, त्याग–व्रत–सयमादि का अर्जन करना, धूल के अर्थ रत्न को चूर्ण करने के समान है। पचेन्द्रिय के विषयो को सुख के अर्थ सेवन करना जीवन के लिए विष भक्षण करना है। जो विद्वान है वह भी जो कार्य करते है आत्म–प्रतिष्ठा के लिए ही करते है। यदि वे व्याख्यान देते है, तब यही भाव उनके हृदय मे रहता है कि हमारे व्याख्यान की प्रशसा हो–लोग कहे कि आप धन्य है, हमने तो ऐसा व्याख्यान नही सुना जैसा श्रीमुख से निर्गत हुआ। हम लोगो का सौभाग्य था जो आप जैसे सत्पुरूषो द्वारा हमारा ग्राम पवित्र हुआ। इत्यादि वाक्यो को सुनकर व्याख्याता महोदय प्रसन्न हो जाते है।

○○

मेरा यह दृढतम विश्वास हो गया है कि धनिक वर्ग ने पडित वर्ग को बिल्कुल ही पराजित कर दिया है। यदि उनके कोई बात अपनी प्रकृति के अनुकूल न रुचे तब वे शीघ्र ही शास्त्रविहित पदार्थ को भी अन्यथा कहलाने की चेष्टा करते है।

○○

वासना में अनेक प्रकार के सकल्प रहते है जो प्राय. प्रत्येक मनुष्य के अनुभव में आरहे है। यही कारण है जो लोक में प्रायः सभी दुखी देखे जाते हैं। सुख का अनुभव उसी को होगा जो सब चिन्ताओ से रहित हो जावे।

–वर्णी वाणी से

(समयसार : प्रकाशक-कुन्दकुन्द भारती)

मुन्नुडि

समयप्रमुख- आ० विद्यानन्द मुनि, सम्पादन—बलभद्र जैन, द्वितीया वृत्ति—१९९४, विद्यार्थी—सस्करण, पृ० स० २८—३१३, डिमाई आकार की

आम्नाचार्य कुन्दकुन्द-द्विसहस्राब्दी के समय वीर—निर्वाणग्रन्थ प्रकाशन समिति ४८, शीतला बाजार इन्दौर द्वारा प्रकाशित समयसार—गुटका पाकर मन मे आया था कि इसके विषय मे श्री १०८ समयप्रमुख से जिज्ञासा करू। किन्तु उस पर छपे बाल—सस्करण ने मुझे सहसा न विदधीत क्रिया की स्मृति दिलाई, क्योकि सस्करण के समान उस समय मेरी भी बाल—जिज्ञासा होने की सभावना थी। तथा मै अपनी मन्थर—नाडी के अनुसार प्राकृत ग्रन्थ के प्रथम विद्यार्थी—सस्करण ।१९७८। तक प्रतीक्षा मे सार्वजन—सस्करण की आशा लगाये था। इसे देखकर मुनिश्री के दर्शन कर के अपने मतव्यो का निश्चय किया ही था कि—

स्वयंभू सप्रमाण सूक्ष्मेक्षक श्रमण-सिद्धान्त इतिहास—कार एव आचार्य जुगल किशोर की पत्रिका अनेकान्त के अक वर्ष ३३ कि २ से आरब्ध हुई कुन्दकुन्द—भारती से प्रकाशित आम्नायाचार्य की कृतियो के परम्परा—प्राप्त मूल पाठो मे भी परिवर्तन की चर्चा देखकर, तथा मा० सम्पादको (प० पदमचन्द जी एव प० बलभद्रजी) के बीच हुए पत्राचार को सावधानी से पढकर सन्—१९७५ से वर्तमान चिन्ता मुखर हुई। और वर्तमान युगाचार्य श्री १०८ शान्तिसागर जी के समय का सत्प्ररूपणा के सूत्र स० ९३ का अत्र सजदा प्रतिभाति प्रकरण मानसपटल पर छा गया। जिसका विसर्जन, २२ ७ ८९ को समाधिस्थ अवस्था मे प० जिनदासजी फडकुले को 'अरे जिनदास धवलातील ९३ सूत्र भावस्त्री चे वर्णन करणारे आहे व तेथे सजद शब्द अवश्य पाहिजे, असे वाटते' परिमार्जन—प्रतिबोध प्रात स्मरणीय युगाचार्य श्री ने स्वय किया था। अनायास ही मुख से निकला 'ते गुरू मेरे मनबसो,' सविशेष अपने प्र० प्र० प्रशिष्यो को वही अतर्मुखता विरक्ति दो जिसके साथ आपने १९८९ मे मूलाचार के अग्रेजी—भाषान्तरकार स्व० वैरिष्टर चम्पतराय को ३, ४ गाथाओ का विशद विवेचन न करके 'वैरिष्टर मेरा श्रुतज्ञान या चिन्तन इनके विषय मे स्पष्ट नही है। अभी शब्दार्थ देकर काम चलाओ' दी थी। इस गुरूपरम्परा के अनुसार मै कल्पना भी नहीं कर सकता था कि श्रमण या प्राग्वैदिक भारतीय—सस्कृति के जनभाषा मे प्रथम प्ररूपक कुन्दकुन्दाचार्य की सहिता को,

भौतिकता से आक्रान्त मानवता को देने के लिए आरब्ध कुन्दकुन्द–भारती सस्थान ही आम्नायाचार्य के एक मूल पद के साथ छेडछाड करेगा, क्योकि वह शास्त्रार्थ शार्दूल समन्त भद्राचार्य की दृष्टि मे त्वच्छासनैका–धिपतित्वलक्ष्मी है जिनकी प्रखर उक्तियो के कारण पचमकाल, वक्ता (समयप्रमुख) श्रोता (सम्पादकादि) के वचनानय का निग्रह शाश्वत है। इसी भावना से लिखने–बोलने के पहले मै १५ ६३ को, मुनिश्री १०८ से निम्न निवेदन करने गया था।

प्रो० गो पिशल आदि प्राकृतविदो के अनुसार जैन–शौरसेनी वैदिक–सस्कृत के समान प्राचीन तथा पृथक है, साहित्यिक–सौरसेनी से साहित्यिक–सस्कृत के समान। अतएव जैसे वैदिक–सस्कृत मे साहित्यिक–सस्कृत के आधार पर आज तक एक पद नही बदला गया है, वही हमे करना है जैन–शौरसेनी के विषय मे।

मुनि श्री ने अपनी भाषा–समिति मे आधे घटे तक अपनी साधना आगमज्ञान और शौरसेनी के विशेषाध्ययन का उपदेश दिया।

प्रो० गो –मै सजदपद–विवाद के समय से ही मूल की अक्षुण्णता का लघुतम पक्ष धर हूँ अत जैन–शौरसेनी या कुन्दकुन्द–वाणी की अक्षुण्णता के लिए अनेकान्त का प्रेरक हू। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन सघ–निर्मित दोनो पडितो मे ममत्व भी है, तथा ये दोनो आपके भी कृपाभाजन रहे है। ये व्याप्य हे और आप व्यापक है। ऐसे प्रसगो मे व्यापक (आप तथा श्रमणमुनि) को अधिक हानि हुई है।

मुनि श्री का पुन वाग्गुप्ति मय उपदेश चला।

प्रो० गो –आपको जो एक अन्य ताडपत्र की प्रति मिली है, उसे अनेकान्त वीर–सेवा–मन्दिर, को दिला दीजिये।

मुनि श्री –मै ५० हजार लोग भेजकर वीर–सेवा–मन्दिर का घिराव करा सकता हूँ। या ५० पडितो के अभिमत (पफलेट) रूप मे छपवाकर बाट सकता हूँ और उस से वीर–सेवा–मन्दिर की भी वही हानि होगी जो आयकर मे शिकायत करके इन्होने कुन्दकुन्द भारतीकी की है।

अभी तक हमारा एक करोड का फण्ड हो गया होता अगर अनेकान्त ने इसके खिलाफ न लिखा होता। गो० यह सब हमारे गुरूओ के अनुरूप नही होगा। अत. आप लिखे कि अमुक ताड पत्रीय प्रति को आधार मानकर प० बलभद्रजी का सस्करण प्रकाशित किया गया है तथा पूर्वप्रकाशनो को त्रुटिपूर्ण, भूलयुक्त या अशुद्ध कदापि न लिखे, क्योकि यह लिखना जिनवाणी के लिए आत्मघातक होगा। जब एक ही ग्रथ मे पोग्गल, पुग्गल, आदि रूप बहुल (प्रवृति–अप्रवृति) रूप से पाये जाते है तो वे तदवस्थ ही रहे। एकरूपता के लिए एक भी पद बदला, घटाया–बढाया न जावे जो अधिक उपयुक्त लगे उसे 'अत्र सजद. प्रतिभाति' करना पादटिप्पणी मे विश्व मान्य सपादन–प्रकाशन–सहिता है। व्याकरण के आधार पर सशोधन और वह भी दूसरे (साहित्यिक–सस्कृत या शौरसेनी) के आधार पर न हुआ है और न होगा। महाराज! आपको कोई प्राकृत व्याकरण प्राकृत मे मिला है?

मुनिश्री ने प्रकारान्तर से हेतु रूपसे जयसेनी टीकागत सूत्रो को कहा।

गो० . सब प्राकृत–व्याकरण सस्कृत मे है। ये ब्राह्मणयुग की देन है जिसमे लघु–भाषाओ को अप–भ्रश बनाया है। तीर्थ–राज वीर प्रभु से आगम रूप मे आया तथा गणहर ग्रथिया श्रुतस्मृत रूप से जब शास्त्र रूप मे आया तो १८ भाषाओ के आचार्यो की दृष्टि श्रोता–हित पर थी, वत्थुसहावो को विद्वज्जनसवेद्य रखकर प्राकृत जन को वचित करने की नही थी। स्याद्वाद भाषा–चौकापथी (CONSERVATISM) का भी निराकरक है। वह भाषा–स्याद्वाद है। कहके नमोअस्तु की। और मै उस आशा के साथ लौटा था जो शोधादर्श पत्रिका के विद्वान सपादक श्री अजित प्रसाद जैन ने अपनी टिप्पणी मे लिखा था (प्रो० खुशालचद्र गोरावाला जैन साहित्य के पिछली पीढी के शेष रहे मूर्धन्य–विद्वानो मे से है। भगवद् कुन्दकुन्दाचार्य की अमर कृति समयसार के मूल पाठ मे पूज्य आचार्य राष्ट्रसत विद्यानन्द मुनि के मार्ग–दर्शन मे कुन्दकुन्द–भारती मे प्राकृत व्याकरण के आधार पर किए गए सशोधनो के विषय पर आचार्य श्री के साथ उनकी चर्चा हुई थी। उपर्युल्लिखित भेट वार्ता इस सबध मे उनकी मनोव्यथा को उजागर करती है। समयसार ग्रथ मे शौरसेनी प्राकृत–भाषा के प्राचीनतम रूप के दर्शन होते है तथा प्राकृत भाषा के व्याकरण उसके बहुत बाद मे रचे गए थे। अत समयसार की भाषा पूर्णरूपेण व्याकरण के नियमो के अनुरूप न हो तो इसमे कोई आश्चर्य की बात नही। हम प्रोफेसर साहब के अभिमत से सहमत हैं कि उपलब्ध प्राचीन पाडुलिपियो के आधार पर स्थिर किए गए मूल पाठ मे व्याकरण, अर्थ आदि की दृष्टि से यदि कोई सशोधन उपयुक्त समझा जाय तो मूल पाठ के साथ छेडछाड न करके उसे पाठ टिप्पणी के रूप मे देना ही उचित है।)

लगभग एक वर्ष तक ऐसा लगा कि आधुनिक युगाचार्य के प्रशिष्यत्व ने जोर मारा है। और अब कुन्दकुन्द–भारती आम्नाचार्य के मूलरूप का सर्वोपरि सरक्षक (CUSTODIAN) रहेगा किन्तु १९९४ मे प्रकाशित अब द्वितीयावृति मे पृ० १५ से १९ तक छपी समय प्रमुख श्री १०८ की देशना 'विद्वानो की चर्चा वीतराग होनी चाहिए' को वॉच कर लगा कि अभूत पूर्वता एव असाधारणता या अभिनव प्रियता वही करा रहे है, जो किसी अलकार (उपाधि) लुब्ध कवि के विषय मे 'अनुप्राशस्य लोभेन भूप कूपे निपातत ' काव्यजगत का मधुरोपालम्भ है। और महावीर निर्वाण की २६वी शती मे कुन्दकुन्द भारती ही आम्नायाचार्य की कृतियो की शोधक एव व्याख्याकार न रहकर सशोधकता एव परिमार्जकता की ओर अग्रसर है। क्योकि समय–प्रमुख जी ने–

जिनकी ध्वनि ओकार रूप, निरअक्षरमय महिमा अनूप।
दश अष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा सात शतक समेत।।

की स्वकल्पना या मान्यता अनुरूप व्याख्या करके वही किया है जो दौलतरामजी के छहढाला की एक हस्त लिखित प्रति की दूसरी ढाल के छन्द १३ के साथ उत्तरकाल मे 'रागादि सहित' व्यापक पाठ की जगह व्याप्य कपिलादि रचित श्रुत का अभ्यास सो है कुशास्त्र बहुदेनत्रास करके किसी अवसर परस्त लिपिकार ने किया होगा। समय

प्रमुख भाषा को पूर्वचर और व्याकरण को उत्तरचर मानकर भी अनेकान्त के वर्ष ४१ कि. ४ के शब्द व्याकरणातीत को लेकर व्याकरण को भाषा के सजाने–सवारने का श्रेय देते हुए उसको अनजाने ही धार्मिक वाड्.मय में भी अनिवार्य सिद्ध करने का प्रयास करते दिखते हैं। जबकि न्यायशास्त्री भी व्याकरण को अस्माकूणां नैयायिकार्ना अर्थरि प्रयोजनं न तु शब्दरि घोषित करके महत्व नहीं देते हैं। क्योंकि व्याकरण, भावों या चिन्तन की आदान–प्रदानक ७०० भाषाओं को व्याप्य (लधुभाषा) से व्यापक (महाभाषा) बनाती हैं। सुवाच्य–सुबोधता के आदर्श पर चलकर अथवा मागधी–शौरसेनी आदि भाषाओं के बाहुल्य या अधिक क्षेत्र में अववोधता के कारण। वर्तमान भारतीय १४ भाषाओ के समान। वेदपूर्व युग में १८ भाषाए प्रमुख व्यापक रही हों भी ऐसी सभावना संकेतित करती है तथा वैदिक संस्कृत भी, अब अंग्रेजी के समान इन १८ भाषाओं में अन्तिम होगी। हमारी अति–सहिष्णुता या विजयी के सामने सर्व समर्पणता के कारण, जैसा कि ऐतिहासिक युग में आठवीं शती की अरब–विजय की और १६ वी शती की अग्रेजी–विजय के कारण अभी हम सांस्कृतिक दासता (अग्रेजीयत) का गत ४७ वर्षो में भोग रहे है।

साहित्यिक सस्कृत के समान प्राकृते उसे (धर्मतत्व को) विद्वज्जन सवेद्य रखकर, शब्द शास्त्र का सागर (अपेयजल) नही बनाता। व्याकरण शब्द–विद्वान होता है। यह आवश्यक नही की उसे शिष्ट ही होना चाहिए। फलत. कुन्दकुन्द भारती के प्रमुख श्री–१०८ से गुरू श्रद्धालु समाज यही आशा करता है कि व्याकरण–पूर्व को व्याकरणातीत मानकर अपने विद्वान–सपादक द्वारा जिन वाणी को साहित्यिक–शौरसेनी के साचे मे कसने के प्रयास को अभूतपूर्व या 'लीक से हटकर', कह के हम अनादिकाल से भटकते प्राणियो को अनन्त भटकन मे पडने की विधि न देवे। क्योकि यह घोडे के आगे गाडी रखने के समान है। पूर्वचर (कुन्दकुन्द–भारती) को उत्तरचर ब्राह्मण–(वैदिक सस्कृति के)–व्याकरणो मे कसना वही होगा, जो चन्द्रगिरी पर बनी भरतेश्वर की मूर्ति के साथ मूर्तिभजको ने किया है,। यह पुरातत्वीय स्मारकों के विरूपण या विनाश के समान 'इहामुत्रापायावद्य' है। जिससे हम अविरत भी विरत है। तब 'दंसणणाण चरिताणि सेविदव्वाणि साहुणाणिच्च' महाव्रती के तो विशद दर्शन हैं। यह प्रार्थना ही अनेकान्त का उद्देश्य–विधेय हैं।

व्याकरण के द्वारा किसी भाषा की पहिचान नाम, रूप एव आकारदान की कल्पना यदि भूतार्थ होती तो ब्राह्मण युगीन संस्कृत के यौवन में मध्यम–जघन्य–पात्र सस्कृत न छोडते और वह जनभाषा होती। अर्धमागधी, शौरसेनी, मराठी, प्राकृत के अतिरिक्त श्रमण–वाड्मय श्रोता–सुबोधता–सुवाच्यता–नीति के द्वारा बनायी गयी प्राकृतो को अपभ्रंश (पुराविनाश) नाम देकर द्रविड–भाषाओं के समान अनार्यता देकर वैदिक व्याकरण अवज्ञात न करती। साहित्यिक–सस्कृत की अनुपादेयता तो श्री १०८ समय प्रमुख की दृष्टि में भी है जैसा कि उनके द्वारा ही प्रयुक्त 'मुन्नुडि' शब्द से स्पष्ट हैं। वे जानते है कि प्राग्वैदिक जनभाषा होने के कारण मानव–सस्कृति के आरम्भिक

प्ररूपक श्रमण सिद्धान्तकारों के समान सर्वांग, सम्पूर्ण अनुशासित–नियमित भाषाविदों (संस्कृत पोषकों) द्वारा रचित प्राकृत काव्यों से करतलामलक है।

वागरणसुत्त आदि पदों के आधार पर ही व्याकरण पूर्व–आध्यात्मिक ग्रन्थों के मूलपाठों को उत्तरकालीन व्याकरण साधित शब्दों द्वारा बदलना बालतर्क नहीं है। अपितु 'हत्थिगुम्फा' के खारवेल–शिलालेख के मूलपदों को व्याकरण या अर्थ की दृष्टि से अब उत्कीर्ण कराना है। जिसे मुनिश्री भी 'इहामुत्रापायावद्य' मानने से इकार नहीं करेगे।

मूल (दिगम्बर) आगमो के सर्वप्रथम सूत्रकार आचार्यवर गुणधरभट्टारक के सूत्रो पर वृत्तिकार यतिवृषभाचार्य ने

मगल कारण हेदू सत्थस्स पमाण णाम कत्तारा।
पढम चिय कहिदव्वा एसा आइरियपरिभासा।। । तिलोयपण्णति–१/७।

सुयणाणसरीरी आचार्य वीरसेन ने इसका ही अनुसरण करके धवलाटीका के मगलाचरण रूप–

मगल णिमित हेऊ–परिमाण णाम तहय कत्तार।
वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमाइरियो।।

दिया है। उत्तरोत्तर ग्रन्थकर्ता कुन्दकुन्दाचार्य की कृति पंचास्तिकाय के संस्कृत टीकाकार जयसेनाचार्य ने भी अपनी कृति मे इस गाथा को उध्दृत करके वागरिय का पर्यायवाची 'व्याख्याय' लिखा है और इस प्रकरण को समाप्त करते "इति संक्षेपेण मगलाद्यधिकार–षडक् प्रतिपादित व्याख्यातम्" ही लिखा है। उनको वागरण का अर्थ यदि सभव होता तो वे अपनी टीका में प्रयुक्त और सम्पादक श्री (ब०भा०) की उत्तरकालीन–व्याकरणपरता के अनुसार केवल व्याख्यान न करके इन छहों अगो के प्रकृति–प्रत्ययादि भी लिखते अस्तु। सागारानगार धर्मो के विद्वज्जन सवेद्य रचनाकार तथा अनगारो के पाठक रूप से श्रुत पण्डिताचार्य आशाधर जी ने भी जईवसह कृत गाथा की संस्कृत छाया (अनगारधर्म भा० १–६ की व्याख्या तृतीय उद्धरण) मे की व्याख्या करके जयसैनाचार्य का ही समर्थन। व्याख्याय। ही किया हैं।

वक्ता–श्रोता वचनानय से सावधान उत्तरोतर–ग्रन्थकारो ने यदि शिवकुमार महाराजादि की अवबोधकता के लिए पाठवैविध्य (पुग्गल–पोग्गलादि) किये हो तो समुचित है। क्योंकि उन्हे वत्थु सहावोधम्मो रखना था तथा द्वादशवर्ष पठन पाठन कराके भी विद्वज्जन–संवेद्य रूप से आत्मरूप को "धर्मस्य तत्व निहित गुहायाम्" करके जनसा धारण को जीव–उद्धार–कला (सहज पठन–पाठन एवं यजन–याजन) से वचित नहीं करना था। और अपनी भी जीविका का भार कृषि–मसि–असि धारकों पर डालकर प्रतिग्रह (दान)–उपजीवी नहीं बनना था। वे थे 'ध्वननशिल्पिकरस्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते'। ख्यातिलाभपूजाविरत।

जहा तक निरवद्य सम्पादन की बात है वह समय प्रमुख श्री की व्यक्तिगत मान्यता है। जैसाकि उनसे १५.६३ को निवेदन किया गया था। मा० दि० जैन सघ का लघुतम

सेवक होने के कारण मुझे भी सम्पादकद्वय के साथ आत्मीयता है। श्री १०८ मुनिश्री के युगो पहिले से ये उपदेशक–विद्यालय के स्नातक थे। अपनी–अपनी मान्यता के अनुसार सघ को छोडकर ये समय–प्रमुख श्री १०८ के लोकसग्रही रूप से आकृष्ट हुए थे। प० बलभद्र जी ने आपके सान्निध्य मे अज्जमखु होना स्वीकार किया और प० पद्मचन्द नागहत्थि नही हो सके।

सम्पादक श्री ने जो सूत्र निश्चित किये उनकी चर्चा तत्कालीन जैन–साहित्य के लोकमान्य प्राकृतज्ञो तथा श्रुत्–स्थविरो के साथ करने या कराने की कुन्दकुन्द–भारती ने क्यो उपेक्षा की? और स्व० डा० हीरालाल जी के समान उनके द्वारा, सर्वप्रथम सहयोगी स्व० प० हीरालाल जी तदनन्तर फूलचन्द जी एव बालचन्द जी से गहन विमर्श करके भी अपने सम्पादन–सूत्रो का प्रारूप तत्कालीन विज्ञ (दिगम्बर) जगत को भेजा था। उत्तरकाल मे भी यह काम सघ कराता रहा है। अपनी अन्तिम सासतक मुख्यरूप से मूल–आगमो के सम्पादक एव भारती–(हिन्दी)–भाषान्तरकार स्व० फूलचन्द्र जी की प्रेसकापी भा०दि० जैन सघ स्वयबुद्ध मुख्तार वन्धुओ को भिजवाता था। आश्चर्य होता है कि मूल–आगमो के टीका–(परिकम्म) टीकाकार, प्रागार्य भारतीय–सस्कृति को सस्कृत–पूर्वयुगीन भाषाओ मे ही चित्रित करके वैदिक–सस्कृति को भी त्याग, सन्यास, मोक्ष, अध्यात्मवाद, लोक–परलोक, दर्शन तथा गृहस्थ वानप्रस्थ (गृह्यसूत्र आरण्यक) सहिता दाता की भारती को भारतीय क्या विश्वजनीन करने के, उदात्त लक्ष्य को उद्देश्य मानकर बनी 'कुन्दकुन्द भारती' ने अपने आपको 'अहमेवमतो जिनवाण्या ' क्यो किया? जबकि सम्पादन मे पूर्णरूप से उन पूर्वपाठो के विषय से साधार सूचना का भाव था जिन्हे अब अनेकान्त से मागकर 'सय अच्छी आउली करिय वअस्स अस्स कारण पुच्छेसि' करके अब अनेकान्त से मागा गया। और न देने की बात करके परम्परा से आगत पदो के साथ कामाचार किया गया है। प्रत्येक पृष्ठ पर रिक्त बहुयृभाग या भाग यह सूचित करता है कि यहा सम्पादन मे उपयुक्त–पाठान्तरो के लिए ही हमे इस वर्द्धमान कागजमूल्य? मूल्य/मूल्यो के युग मे छोडा गया है।

अनायास ही ये रिक्त स्थान श्री १०८ आचार्य विमलसागर जी की शास्त्र–प्रतिष्ठा की ओर स्वाध्यायी जैन–जगत को सादर साभार आकृष्ट करते है। क्योकि इसमे इस अभिनवता, असाधारणता, व्ययनिरपेक्षिता का लेश अद्यावधि प्रकाशित, पुनर्मुद्रित ग्रन्थो मे नही दिखता है गोकि आचार्य श्री की यह जिनवाणी –प्रतिष्ठा सभवत शतप्राय हो चुकी है। तथा उनकी तथा उपाध्यायश्री १०८ भरतसागर के चिन्तन, शिक्षादि उन्हे सक्षम सम्पादकत्व की भूमिका देते है।

अच्छा होता कि समयप्रमुख मुनिश्री १०८ अपने सम्पादकजी को दिशा देते कि उनके द्वारा अधीत ताडपत्रीय तथा अद्यावधि मुद्रित प्राचीन सस्करणो को प्रति सकेत (क, ख, आदि) दे करके समस्त पाठो की सोद्धरण पुष्टि करे और टिप्पण मे अपनी मान्य उत्तरकालीन प्राकृत व्याकरणो के रूपो को ससूत्र देवे तो यह विद्यार्थी ही नही शोधार्थी–सस्करण हो जाता। जैसा कि स्व० मुख्तार बन्धुओ के समान जिनवाणी

साधनालीन प० जवाहरलाल जी (भिडर) ने आचार्यकल्प प० टोडरमल जी की कृति मोक्षमार्ग प्रकाशक की मूलभाषा को अक्षुण्ण रखकर 'विशेष' के माध्यम से जिज्ञासुओ एव शोधको के लिए दिशा देकर किया है। तथा उनके परम सहयोगी डा० चेतन प्रकाशजी पाटनी (श्री पार्श्वनाथ मन्दिर, शास्त्री नगर जोधपुर–३४२००३) के द्वारा प्रकाशित सस्करण १६६४ से स्पष्ट है। सुयणाणसरीरी वीरसेन स्वामी ने मगल को अनिवार्य कहा है क्योकि इसके द्वारा ग्रथकर्ता, टीकाकार, सम्पादक प्रवचनकर्ता भी शपथ करता है, परमगुरु परम्परागुरु, गुरु के वचनो की तदवस्थता के साथ साथ उनके वचनसार अनुसरण की एव कर्ता आचार्य के शब्दो की तदवस्थता की। क्योकि तत्तत् आचार्यो के पद उनके लिए शब्दरूपी पुरातत्त्वीय स्मारको के समान है। वे भाषासहकार या स्याद्वाद के समान है। और साहित्यिक सस्कृत के समान भाषा–एकाधिकार से अछूते है। विश्वास है कि 'कुन्दकुन्द–भारती' उत्तम मुद्रण, आवरण सज्जादि के समान परम्परित–पाठो की अक्षुण्णता या तदवस्थता को महत्त्व देकर वीरनिर्वाण की ५–६ वी शती मे सूत्रित आगमो को वीरनिर्वाण की १० शती के बाद सकलित जिनसम्प्रदायी (श्वेताम्बर) आगमो के समान "बहुश्रुत विच्छितौ भविष्यद् भव्यलो–कोपकाराय श्रुतभक्तये––––– वलभ्यामकार्य–––––––तन्मुखादविच्छन्नावशिष्ठान, न्यूनाधिकान् त्रुटिताऽघटितान् आगमान्–––––––" होने के सकट से बचाकर मूल (अचेल) सघी आगमो मे झलकती वेदपूर्व या आर्यपूर्व सस्कृति के ध्रुव को चलायमान होने के सकट से बचाकर अनुगृहीत करेगी।

—खुशालचन्द्र गोरावाला

●●

'ग्रन्थो के सपादन और अनुवाद का मुझे विशाल अनुभव है। नियम यह है कि जिस ग्रन्थ का सम्पादन किया जाता है उसकी जितनी सभव हो उतनी प्राचीन प्रतियॉ प्राप्त की जाती है उसमे अध्ययन करके एक प्रति को आदर्श प्रति बनाया जाता है। दूसरी प्रतियो मे यदि कोई पाठ भेद मिलते है तो उन्हे पाठ टिप्पण मे दिया जाता है। यह एक सर्वमान्य नियम है। जो विद्वान इस पद्धति का अनुसरण करता है वह सिद्धान्त रक्षा मे सफल माना जाता है। जो इस नियम का उल्लघन करता है, उसकी समाज मे भले ही पूछ हो, सिद्धान्त रक्षा मे उसकी कोई कीमत नही की जा सकती।

वेदो के समान मूल आगम प्राचीन है। वे व्याकरण के नियमो से बधे नही है। व्याकरण के नियम बाद मे उन ग्रन्थो के आधार पर बनाए जाते है। फिर भी कुछ अश मे कमी रह जाती है, इसलिए व्याकरण के आधार पर सशोधन करना योग्य नही। जो जैसा पाठ मिले वह वैसा ही रहना चाहिए।'

—फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री

आगम के प्रति विसंगतियाँ

पद्मचन्द्र शास्त्री

क्या जनमत आगम से बड़ा है ?

'सत्य क्या लोकतत्र है जो लोगों की सहमति (वोटो) से काम चलेगा ? क्या जिनवाणी जनवाणी है? आगम की प्रामाणिकता जनमत से सिद्ध हो जायगी? आगम को सिद्ध करने के लिए आगम चाहिए, न कि जनमत सग्रह।'–उक्त विचार उपाध्याय श्री कनकनन्दी मुनिराज के हैं और इन विचारो से हम पूर्ण सहमत है।

स्मरण हो कि गत दिनो 'कर्मबन्ध और उसकी प्रक्रिया' पुस्तक के सबध मे कटनी मे एक गोष्ठी अ भा दि जैन विद्वत्परिषद के तत्वावधान मे श्री देवेन्द्र कुमार शास्त्री की अध्यक्षता मे हुई और उसमें पारित प्रस्ताव मे स्पष्ट लिखा गया कि–'कर्मबन्ध और उसकी प्रक्रिया' आगम वर्णित तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत की गई है।'–इस कथन से स्पष्ट है कि प्रस्ताव मे मिथ्यात्व के अकिचित्कर होने की पुष्टि को स्वीकार किया गया है। पं. प्रकाश हितैषी (जो गोष्ठी मे संमिलित थे) ने गोष्ठी के विषय मे लिखा है कि–"प० जगन्मोहन लाल जी ने विपक्ष के प्रमाणो का समाधान करने का प्रयत्न भी किया किन्तु सही समाधान कुछ भी नहीं निकल सका।

विद्वत्परिषद के अध्यक्ष लिखते हैं कि–'अध्यक्ष, दि जैन पचायत कटनी की ओर से मिथ्या प्रचार किया जा रहा है कि सगोष्ठी में सभी विद्वानो ने यह स्वीकार कर लिया है कि मिथ्यात्व अकिचित्कर है।'–वे यह भी लिखते है कि 'प्रस्ताव पुनः ठीक से पढे उसमे केवल बडे पंडित जी (प जगन्मोहन लाल जी सिद्धान्त शास्त्री) के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की गई है अत. मिथ्या प्रचार न करें।'

हम नही समझे कि जब प्रस्ताव मे स्पष्ट लिखा हैं कि 'पुस्तक आगम वर्णित तथ्यो के आधार पर प्रस्तुत की गई हैं' तब विवाद कैसा? यदि उसमे तथ्य नहीं तो कृतज्ञता कैसी? क्या पंडित जी को आयु मे बडे मानकर बडे पडित जी लिखा गया है? और कृतज्ञता व्यक्त की गई है?

उक्त स्थिति में यह खुले रूप मे स्पष्ट होता है कि गोष्ठियॉ गोटी बिठाने के लिए की जाती है, जिनमे भाग लेने वाले कुछ व्यक्ति तो मुँह देखी कह ही देते हैं, जैसे कि डॉ देवेन्द्र कुमार जी, जो मौके पर दस्तखतो से इन्कार की हिम्मत न जुटा सके। यदि वे प्रस्ताव से असहमत थे और उन्हे विरोध ही इष्ट था तो प्रस्ताव पर हस्ताक्षर

क्यों किए, और बाद को विरोध मे क्यो लिखने लगे। खैर। ऐसे में यह अवश्य सिद्ध हुआ कि जनमत एक और स्थिर नहीं होता जब कि आगम (सिद्धान्त) स्थिर और तथ्य हैं।

जब शकित स्थलों में पूर्वाचार्य यह कह सकते हैं कि 'गोदमो एत्थ पुच्छेयव्वों' तब वर्तमान संशोधकों को यह कहने मे लाज क्यों आती है कि 'कुन्दकुन्दाइरियों एत्थ पुच्छेयव्वो।' फलतः—वे अपने मत की पुष्टि कराने के लिए जनमत सग्रह (गोष्ठियों) द्वारा प्रयत्न करते हैं। क्या, वे नहीं जानते कि आगम का निर्णय आगम से होता है जनमत से नहीं?

यह पचमकाल का प्रभाव ही है कि इस अर्थयुग मे जिसे अपनी मान्यता की पुष्टि करानी होती है वह पैसा खर्च करके चन्द कथित विद्वानों को इकट्ठा कर अपने अहं की पुष्टि कराकर खुश होता है कि मैने लका की विजय करली। पर, समझदार एवं आगम श्रद्धालु यह भली भॉति समझते है कि वर्तमान युग मे पैसे का बोल बाला है, कौन सा ऐसा कृतघ्न होगा जो किराया और सम्मान देने वाले दाता का असम्मान कर चला जाय? वह सोचता है जिसमे तुम भी खुश रहो और हम भी खुश रहे ऐसा करो। फलत: वह गीतगाता चला जाता है। और अवसर आने पर बदल भी जाता है। क्योंकि—

'सचाई छुप नहीं सकती बनावट के उसूलो से।
खुशबू आ नहीं सकती कभी कागज के फूलो से।।

ऐसा ही एक विवाद उठा है—आगम भाषा का। उसमे भी परम्परा की लोक से हटकर एक रूपता की जा रही है—प्राचीन आगम—भाषा को अत्यन्त भ्रष्ट तक कहा जा रहा है। पाठक सोचे कि दिगम्बर आगमो की मूल भाषा कौन सी है? क्या उसमें प्राचीन आचार्य प्रमाण है या नवीन कुछ पडित या नवीन कोई आचार्य?

दिगम्बर आगमों की मूल भाषा मात्र शौरसेनी नहीं

वास्तव में शौरसेनी कोई स्वतंत्र सर्वांगीण भाषा नही और न महाराष्ट्री आदि अन्य भाषाए ही सर्वांगीण हैं। सभी प्राकृतें 'दशअष्ट महाभाषा समेत, लघु भाषा सात शतक सुचेत' जैसी सर्वांगीण भाषा से प्रवाहित हुए झरने जैसी हैं। ये प्राकृत के ऐसे अश रूप हैं जैसे शरीर में रहने वाले नाक कान आदि अग। इनमे केवल नाम भेद है, बनावट भेद है पर रक्त सचार खुराक आदि का साधन मूल शरीर ही है। जिस क्षण ये मूल शरीर को छोड देंगे उस क्षण ये उपाग स्वय समाप्त हो जाएगे अथवा जैसे किसी स्त्री की माग का सिदूर और माथे की बिन्दी उसके सुहागिन होने की पहिचान मात्र होते है वे स्त्री को उसके लक्षणों से वियुक्त नही कर सकते उसका पूर्ण शरीर साधारण स्त्रीत्व को ही धारण करता हैं ऐसी ही स्थिति शौरसेनी आदि उपभाषाओ की है ये भी अन्य सहारे के बिना जी नहीं सकती। और ना ही किसी आगम का किसी उपभाषा—मात्र में सीमित होना शक्य है। ऐसे मे केवल शौरसेनी के गीतगाना कोई

बुद्धिमत्ता नही।

परम्परित प्राचीन दिगम्बर आगमो के मूलरूप व दिगम्बरत्व के प्राचीनत्व को सुरक्षित रखने के उद्देश्य और परम्परित पूर्वाचार्यों की ज्ञान गरिमा को सन्मान देने हेतु हमने आवाज उठाई तब भावी सकट से अजान कुछ अर्थ प्रेमियो ने दलील दी कि जब शब्द रूपो के बदलने से अर्थ मे कोई अन्तर न पडता हो तब शब्द–रूपो के बदलने मे क्या हर्ज है? पर, हम कहते है कि जब फर्क ही नही पडता तो बदलने की आवश्यकता ही क्या है? कही, यह रूप–बदल दिगम्बरत्व और दिगम्बर आगमोको परवर्ती बनाने की अज्ञ–भूल तो नही? या कही कोई बडप्पन दिखाने और आगम सशोधक रूप से प्रसिद्ध होने की मनचीती भावना तो नही जो शुद्ध को अशुद्ध बताकर आगमिक बहुत से शब्दो को बहिष्कृत कर शुद्ध किया जा रहा है। कौन कहता है, हमारे आगमो की भाषा अत्यन्त भ्रष्ट है और हम उसे शुद्ध कर रहे है। दिगम्बरो के आगम–मूलत सर्वथा शुद्ध और प्रमाणिक है और उनके शब्दो मे एक रूपता लाने की जरूरत नही है। उसमे सामान्य प्राकृत जातीय सभी भॉति के शब्द रूप है जैसा कि लेख मे आगे दर्शाया जायगा।

रही अर्थ–भेद न होने की बात। सो हम निवेदन कर दे कि आगमो के अर्थ उस लौकिक अर्थ की भॉति नही जो एक नम्बरी या दो नम्बरी (दोनो प्रकार का) होने पर भी सुख–सुविधा मे समान अनुभव देता है। यदि अर्थ प्रेमियो की दृष्टि मे कोई अन्तर नही पडता तो क्यो न णमोकार मत्र के 'णमो अरहताण' को जैनी लोग good Morning to arihamatas या 'अस्सलामालेकु अरिहन्ता' जैसी भाषा मे पढ लेते और अब भाषा के प्रश्न को गहराई ओर ऐतिहासिक प्राचीनता की दृष्टि से भी सोचा जाय। अन्यथा ऐसा न हो कि हम शिखर जी के अधिकार पाने के लिए झगडते और दिगम्बरत्व का प्राचीनत्व सिद्ध करते रहे ओर अब हमारी भूल से एक नवीन बखेडा और खडा हो जाय और दिगम्बर आगम मूल बदलते रहने से अप्रामाणिक ओर अस्थायी माने जाय। तथा कहा जाये कि जिसके मूल आगम ही शुद्ध नही वह दिगम्बरत्व प्राचीन कैसे? क्योकि जिसके आगम जितने स्थायी और शुद्ध व प्राचीन होगे वह धर्म उतना ही प्राचीन होगा यत –आगम के बिना धर्म नही चलता। फलत यदि आगम मूल रूप बदल गया तो दिगम्बरत्व की प्राचीनता और आगम दोनो ऐसे खतरे मे पड जाएँगे जो 'मिटै न मरि है धोय'। हॉ, इससे इतना तो हो जायगा कि एक नवीन झगडा शुरू हो और नेताओ को नेतागिरी के लिए नया काम मिल जाय

दिगम्बर आगमों की मूल भाषा कौनसी ?

मूल रूप मे आगमो की भाषा अर्धमागधी रही है ऐसी दोनों सम्प्रदायो की मान्यता है। उसकाल मे यह भाषा विभिन्न प्रदेशो के विभिन्न शब्द रूपो को आत्मसात् करती रही और यह अर्धमागधी ही बनी रही। अर्धमागधी से तात्पर्य है–आधी भाषा मगध की और आधी मे अन्य भाषाएँ। तीर्थकरो की दिव्यध्वनि को गणधरो और परम्परित आचार्यो ने इसी भाषा मे अपनाया। क्योकि आचार्य मुनि विभिन्न प्रदेशो मे भ्रमण करते थे और

उन प्रदेशो की भाषा के शब्दो को प्रवचनो मे प्रयोग करते थे। ताकि जन सामान्य उनके उपदेशो को सरलता से ग्रहण कर सके। इस भॉति मूल भाषा अर्ध मागधी ही रही। जिसे बाद मे (शौरसेनी बहुल के कारण) जैन–शौरसेनी नाम दे दिया गया।

प्राकृत मे महाराष्ट्री, शौरसेनी आदि जैसे भेद तब हुए जब पश्चाद्वर्ती सस्कृत वैयाकरणो ने ई० सन की दूसरी तीसरी शताब्दी मे भाषा को देश–भेद की विभिन्न बोलियो मे बॉधकर व्याकरण की रचना की। इन वैयाकरणो ने सस्कृत के शब्दो के आधार पर प्राकृत शब्दो के रूपो का निर्माण प्रदर्शित किया। प्राय सभी ने प्राकृत (महाराष्ट्री) को प्रधानता दी ओर अन्य प्राकृतो के मुख्य नियम पृथक पृथक निर्दिष्ट कर 'शेष प्राकृतवत्' या महाराष्ट्रीवत् लिख दिया। इससे वैयाकरणो की दृष्टि मे शौरसेनी आदि की गौणता सहज सिद्ध होती है यदि उनकी दृष्टि मे शौरसेनी की प्रमुखता रही होती तो वे शौरसेनी को प्रधानता देते और अन्य भाषाओ के लिए' शेष शौरसेनीवत्' लिखते जैसा कि उन्होने नही किया।

वचन से मुकरना : एक बिडम्बना

लोक मे सच कबूल कराने के लिए त्रिवॉचा (तीन बार हॉ) भराने की प्रवृत्ति है। और लोग है कि त्रिवॉचा भरने के बाद वचन से नही मुकरते। पर सपादक समयसारादि (कुन्दकुन्द भारती) है कि सात त्रिवॉचा भरने, अर्थात् जैन–शौरसेनी को अनेक बार स्मरण करने के बाद भी वचन से मुकर गए है। स्मरण रहे कि उक्त संपादक ने सन् १६७८ व १६६४ के दोनो समयसारी सस्करणो मे २१–२१ बार जैन–शौरसेनी का स्मरण किया है ओर मुन्नुडि पृ ६ पर स्पष्ट लिखा है कि 'कुन्दकुन्द की सभी रचनाएँ जैन–शोरसेनी मे रची गई है।' इन्होने नियमसार प्रस्तावना पृ १२ पर इतना तक लिखा है–'कुन्दकुन्द की भाषा जैन–शौरसेनी है–––––उन्होने (आ० कुदकुदने) अपनी भाषा मे मगध और महाराष्ट्र मे बोली जाने वाली बोलियो के शब्दो को भी सम्मिलित करके भाषा को नया आयाम प्रदान किया।'–

अब उक्त संपादक ने दिनाक २३ अक्तूबर से ३० अक्तूबर ६४ तक दिल्ली के गुरुनानक फाउण्डेशन मे, कुन्दकुन्द भारती द्वारा मनाई 'राष्ट्रीय शौरसेनी प्राकृत–सगोष्ठी मे वितरित पत्रक मे डा. प्रेम सुमन के साथ निम्न घोषणा की है–'दिगम्बर परपरा के प्राकृत ग्रन्थो की जो भी भाषा उभर कर सामने आती है वह शौरसेनी प्राकृत है उसे इसी नाम से पहिचाना जाना चाहिए–किसी जैन आदि विशेषण लगाने की इसमे आवश्यकता नही है।' अर्थात् उक्त घोषणा द्वारा ये जैन शौरसेनी भाषा की स्वीकृति से मुकर गए जबकि ये स्वय मुन्नुडि मे जैन–शौरसेनी की स्वीकृति की घोषणा कर चुके हैं और जब कि प्राकृत के ख्याति प्राप्त विद्वान डा हीरालाल जैन इस जैन–शौरसेनी (मिली जुली भाषा) से सहमत है ओर डॉ ए एन उपाध्ये भी मिली जुली प्राकृत (जैन शौरसेनी) की स्वीकृति दे चुके है।

फिर भी यदि इनकी बदली दृष्टि से दिगम्बर आगमों की भाषा शौरसेनी ही है तो, क्यों तो इन्होने नियमसार की प्रस्तावना में कुन्दकुन्द के विषय में ये लिखा कि–'उन्होंने (कुन्दकुन्द ने) अपनी भाषा मे मगध और महाराष्ट्र की बोली को सम्मिलित कर भाषा को नया आयाम दिया।' और क्यों अब अपने उक्त पत्रक में ही अन्य भाषाओं के मेल को दर्शाया इन्होंने उक्त पत्रक मे लिखा हैं–

"डॉ. उपाध्ये ने प्रवचनसार की भाषा का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि इसमें अर्धमागधी की कई विशेषताएँ सम्मिलित है (इन पंक्तियो को डॉ. प्रेम सुमन ने सन् १६८८ में प्रकाशित शौरसेनी प्राकृत व्याकरण की भूमिका में भी दिया हैं।) डॉ. हीरालाल जैन तो स्पष्ट ही कर चुके हैं कि–

"The prakrit of the sutras, The Gathas as well as of the commentary, is Saurseni influenced by the order Ardhamagdhi on the one hand and the Maharastri on the other and this is exactly the nature of the language called Jain saurseni" (Introduction of षटखडागम p. IV)

उक्त स्थिति मे सपादक क्यो जैन शौरसेनी की घोषणा कर अपने वचन से मुकर गए ओर क्यों डॉ सुमन जी भी जैन जैसे सबल विशेषण को हटाने लगे? जो विशेषण कि दिगम्बर जैनागमो की परम्परित मूल भाषा की प्रामाणिकता की सिद्धि मे कवच है। भाषा से जैन–विशेषण हटाने के एकॉगी आग्रह ने ही तो इन्हे यह कहने के लिए मजबूर कर दिया है कि आगम भाषा अत्यन्त भ्रष्ट है आदि

प्राकृत महारथियों के दो ग्रन्थ :

जैन आगमो की मान्य अर्धमागधी और बाद मे दिगम्बरो मे मान्य 'जैन शौरसेनी' से जैन शब्द उडाकर उस भाषा को मात्र शौरसेनी का रूप देने वाले दो महारथी विद्वान प्राकृत के ग्रन्थो का संपादन भी करते रहे है ओर सपादनों मे सहायक भी रहे है। उन्होने ही 'शौरसेनी व्याकरण' तथा 'कुन्दकुन्द शब्दकोश' का निर्माण किया है। दोनो ग्रन्थो मे दिए गए कुछ शब्द ही देखे जॉय और निश्चय किया जाय कि वे शब्द शौरसेनी व्याकरण के किन सूत्रों से निर्मित है और क्या वे शौरसेनी के हैं? यदि दिगम्बर आगमो की भाषा शौरसेनी है और वे शब्द शौरसेनी के है तो कुन्दकुन्द भारती प्रकाशन से वे वहिष्कृत क्यो किए गए? और यदि शौरसेनी के नहीं तो क्यों कुन्दकुन्द की रचना में उपलब्ध हुए? निर्णय करना आप का कार्य है कि उक्त व्याकरण रचयिता गलत हैं या परमपूज्य आगम भाषा गलत हैं?

'शौरसेनी प्राकृत व्याकरण' (उदयपुर)

इक्को पृ. ५५। चुक्किज्ज पृ. ६१। मुणेयव्व पृ. ३४।
करिज्ज पृ. ६१। कुणई पृ. १। होइ पृ ३३, ६०।
सक्कइ पृ ६४। लोए पृ. ८८, ६०। पुग्गल पृ. २५, ८८, ६१।
हवइ पृ. ७७। जाण पृ. ६३। भणिऊण पृ. ६४।
सुणिऊण पृ. ४। रूंधिऊण पृ ६४ आदि।

'कुंदकुंद शब्द कोश (विवेक विहार)

सुय केवली पृ ३४४। भणिय पृ. २३५। इक्क पृ. ५६।
धित्तव्व पृ ११२। हविज्ज पृ. ३५०। गिण्हइ पृ १०७।
कह पृ ८७। मुयइ पृ. २५२। जाण पृ. १२६।
करिज्ज पृ. ८५। भणिज्ज पृ २३०।
पुग्गल पृ. २२५। जाणिऊण पृ. १२६। णाऊण पृ १४६।
चुक्किज्ज पृ १२३ आदि।

स्मरण रहे कि कुदकुद भारती के सम्पादनो मे उक्त जातीय शब्दो का बहिष्कार कर दिया गया है। और हम उक्त शब्द रूपो और आगमगत सभी शब्द रूपो को सही मान रहे है तब हम पर कोप क्यो?

मीठा मीठा गप कडुआ कडुआ थू :

सपादक कुदकुद भारती ने डॉ सरजू प्रसाद के 'प्राकृत विमर्ष' ग्रन्थ से 'मुन्नुडि पृ. ६ पर एक उदाहरण दिया है जिसमे जैन शौरसेनी की पुष्टि है। पर सपादक की मन चीती न होने से अब वे उसे ठीक नही मान रहे। 'प्राकृत विमर्ष मे निम्न सदेश भी है। उन पर भी विचार होना चाहिए।

१ "शौरसेनी ग्रन्थ की स्वतत्र रचनाऍ तो उपलब्ध नही होती परन्तु जैन शौरसेनी मे दिगम्बर सप्रदाय के ग्रन्थ उपलब्ध होते है। कुदकुद रचित 'पवयणसार' जैन--शौरसेनी की प्रारम्भिक प्रसिद्ध रचना है। कुदकुदाचार्य की प्राय सभी रचनाऍ इसी भाषा मे है।" प्राकृत विमर्श पृ ४३

२ "महाराष्ट्री स्टैण्डर्ड प्राकृत मानी जाती है ------प्राकृत वैयाकरणो ने महाराष्ट्री को ही मूलमान कर विस्तार से वर्णन किया है ओर अन्य प्राकृतो को उसी प्राकृत के सदृष्य बताकर कुछ भिन्न बिशेषताऍ अलग अलग दे दी है।" वही पृ. ३७

३ 'शौरसेनी प्राकृत के स्वतत्र ग्रन्थ अभी (सन् १६५३) तक उपलब्ध नही हो सके है वही पृ. ४१

४ 'महाराष्ट्री प्राकृत को ही वैयाकरणो ने प्रधान भाषा मानकर उसके आधार पर अन्य प्राकृतो का वर्णन किया है।' वही पृ. ७५।

५ 'उस काल मे महाराष्ट्री स्टैण्डर्ड प्राकृत थी।' वही पृ. ७५

हम यह भी स्मरण करा दे कि अब शौरसेनी की ओर करवट लेने वाले और 'शौरसेनी व्याकरण' तथा 'कुदकुद शब्दकोश' में विविध भाषाओ के शब्द रूपो का पोषण करने वाले डॉ. प्रेम सुमन जैन हमे दिनांक ३.४.८८ के पत्र में भी तत्कालीन भाषाओ के प्रयोग होने की स्वीकृति पहिले ही दे चुके हैं। तथाहि–

"कोई भी प्राचीन प्राकृत ग्रन्थ आगम, किसी व्याकरण के नियमो से बधी भाषा मात्र को अनुगमन नही करता। उसमे तत्कालीन विभिन्न भाषाओं, बोलियो के प्रयोग सुरक्षित मिलते हैं।"–"एक ही ग्रन्थ मे कई प्रयोग प्राकृत बहुलता को दर्शाते है। अत

उनको बदलकर एक रूप कर देना सर्वथा ठीक नही है।"—"प्राचीन ग्रन्थो का एक रूप कर देना सर्वथा ठीक नही है"—"प्राचीन ग्रन्थो का एक एक शब्द अपने समय का इतिहास स्तम्भ होता है।"—

नोट-इनके पूरे पत्र के लिए, देखे 'अनेकान्त अक मार्च ६४। ऐसे मे यह चिन्तनीय हो गया है कि इनकी करवट का कारण क्या है?

हम पुन स्पष्ट कर दे कि हममे इतनी क्षमता नही जो प्रामाणिक आचार्य गुणधर, पुष्पदत, कुदकुद, जयसेन, वीरसेन, जैसे पूज्य आचार्यो की भाषा का तिरस्कार कर किसी आधुनिक आचार्य या किसी बडे से बडे आधुनिक (प्रसिद्धि प्राप्त) विद्वान या विद्वानो को ज्ञान में उनसे ऊँचा मानने की धृष्टता करे और आगम भाषा की परख के लिए उनसे परामर्श करे या सम्मेलन बुलाएँ। परख की बात उठाना भी घोर पाप और आगम अवज्ञा है। जरा सोचे कि क्या हमारे पूर्व ग्रन्थ भाषा भ्रष्ट है? यदि भाषा भ्रष्ट है तो वे आगम ही नही। ओर जिसके आगम ही ठीक नही वह धर्म (दिगम्बरत्व) भी प्राचीन कैसे? क्यो कि धर्म तो आगम से प्रामाणिकता पाता है। देखे— प्राचीन आगमो के कुछ शब्द। **क्या ये भ्रष्ट जातीय शब्द हैं?** जिनको कुदकुद भारती ने दिगम्बर आगमो से बहिष्कृत कर कसायपाहुड व षट्खण्डागम जैसे प्राचीन ग्रन्थो को गलत सिद्ध करने का दु साहस किया है देखे

१. **कसाय पाहुड के शब्द**

गाथा २३ 'सकामेइ' गाथा २४, २७, ५७, ६२, ७४, ७६, ६५, ६६, १०१, १०३, ११६, १२०,१२२, १२५, १३०, १३६ मे 'होइ'। गाथा १६, ६६, १०१, १०४—१०६ भजि यव्वो। गाथा ५६ 'पवेसेइ'। गाथा ४२ णिरय गइ।

गाथा ८५ कायव्व गाथा १०८ उवइ—अणुवइड्ड। गाथा १०२, १०६ मिच्छाइट्ठी। गाथा १०२ सम्माइट्ठी।

२. **'खवणाहियार चूलिया'** गाथा ३ होई, गाथा ३, ६, ७, ८, ६, १२ होइ , गाथा ५ छुहइ, गाथा ११ खवेइ आदि।

३. **'षटखंडागम' के शब्द**—सूत्र ४, १७७, गई। सूत्र ५ णायव्वाणि। सूत्र ४६ वउव्विहो। सूत्र २०, ५१, १३२, १३३ वीयराय। सूत्र २५ से २८, ८३ सम्माइट्ठी। सूत्र २५ से २८, ७१, ७६ मिच्छाइट्ठी। आदि

४. **टीका**—पृ. ६८ जयउ सुयदेवदा। पृ. ६८, ७१ काऊण। पृ ७१ दाऊण। पृ १०३ सहिऊण। पृ ७४ सभबइ। पृ ६८, १०६, ११०, ११३ कुणइ। पृ. ११० उप्पज्जइ। पृ १२० गइ। पृ १२५ कायव्वा। पृ. १२७, १३० णिग्गया। पृ. ६८ सुयसायरपारया। पृ ६५ भणिया। आदि

५. **कुंदकुंद** अष्ट पाहुडो मे ही एक एक पाहुड मे अनेको स्थानो पर—होइ, होई, हवइ, हवेइ, जैसे रूप है। और नियमसार आदि अनेक ग्रन्थो मे ऐसे ही शौरसेनी से बाह्य अनेक शब्द रूप बहुतायत से पाए जाते है। ऐसे मे कैसे माना जाय कि

दिगम्बर आगम शौरसेनी के हैं और वर्तमान में आगमों में जो जैन शौरसेनी रूप हैं वे अशुद्ध हैं? स्मरण रहे कि जैन शौरसेनी का तात्पर्य ही मिली जुली प्राकृत है।

शौरसेनी करण का इनका नमूना

कुन्दकुन्द भारती वाले, शोरसेनी की घोषणा कर, आगमों को शौरसेनी में कर भी पा रहे हैं क्या? प्रस्तुत चन्द शब्द रूपों से इनके प्राकृत ज्ञान को सहज ही परखा जा सकता हैं। शौरसेनी प्राकृत व्याकरण और 'कुन्दकुन्द शब्दकोश' द्वारा इनके समर्थकों के प्राकृत ज्ञान का दिग्दर्शन तो हम करा ही चुके हैं। अब देखिए इनके व्याकरण सम्मत शौरसेनी के कुछ शब्द रूप। इन रूपों को इन्होंने अपने संपादनों में दिया है, जबकि ये शौरसेनी के गीत गा रहे है और पुष्टि में समाज का प्रभूत धन व्यय करा विद्वानों को इकट्ठा करने में लगे हैं। देखें

१ समयसार (कुंदकुंद भारती) गाथा १०, ३४, ११२, १२७, से गाथा १२६ और गाथा १४७ तथा 'नियमसार गाथा १४३, १४४, १५६ का 'तम्हा' शब्द रूप।

२ समयसार गाथा १ का 'वंदित्तु' शब्दरूप।

३ समयसार गाथा ६३ का 'तुज्झ' शब्दरूप।

४ समयसार गाथा २१, २३, २४, २५, ३३, २७६ से ३०० तक का 'मज्झ' शब्द रूप।

५ समयसार गाथा ८५ का 'चेव' शब्दरूप।

६ समयसार गाथा २७, ३१, ३८, ४२ का 'खलु' शब्दरूप।

व्याकरण की दृष्टि से शौरसेनी के नियमानुसार उक्त शब्दों के क्रमश निम्नरूप न्याय्य है, जिन्हें शौरसेनी समर्थक शौरसेनी मे नहीं कर सके (क्रमश देखें)

१ 'तम्हा' की जग्ह 'ता' होने का विधान है। देखें–प्राकृत शब्दानुशासन सूत्र 'तस्मात्ता ३ २ १३ और हेमचन्द्र ८ ४ २७८

२ 'वदित्तु' की जगह वदिअ या वदिदूण होने का विधान है। देखें प्राकृत शब्दानुशासन सूत्र 'इयदूणौ क्त्वा' ३ २ १० हेम 'कत्वा इयदूणों' ८ ४ २७१

३ 'तुज्झ' की जगह ते दे तुम्ह होने का विधान हैं। देखें 'प्राकृतसर्वस्व' सूत्र 'तेदे तुम्हा ङसा' ६/८६

४ षष्ठी विभक्ति में 'मज्झ' होने का विधान नहीं हैं। देखें 'प्राकृत सर्वस्व' सूत्र 'न मज्झ ङसा' ६/६४

५ 'एव की जगह 'एव्व' होने का विधान है। देखें. प्राकृत शब्दानुशासन सूत्र 'एवार्थे एव्व' ३ २ १८

६ 'खलु' की जगह 'क्खु' होने का विधान हैं। देखें प्राकृत सर्वस्व सूत्र क्खु निश्चयें ६/१५१

संशोधको के संशाधनों में, निश्चय ही शौरसेनी के नियमों से विरूद्ध, अन्य भाषा के शब्द रूप होने से सिद्ध है कि–आगमों की भाषा जैन–शौरसेनी हैं और शौरसेनी के पक्षधर अथक प्रयत्नों के बाद भी 'जैन शौरसेनी' को नहीं मिटा सके हैं। स्मरण

रहे कि जैन–शौरसेनी भाषा मिली जुली भाषा हैं। और शौरसेनी मूलत. नाटको की प्रमुख भाषा हैं। (साहित्य दर्पणकार ने तो इस भाषा को (६, १५६, १६५ में) सुशिक्षित स्त्रियों के सिवाय, बालक, नपुंसक, ज्योतिषी, विक्षिप्त रोगियों की भाषा तक कहा हैं। लक्ष्मीधर ने षडभाषा चन्द्रिका (श्लोक ३४) में इस भाषा को छमद्‌वेष धारी साधुओं की भाषा भी कहा हैं।) ऐसा डा जगदीशचन्द्र ने पृ २१ पर लिखा हैं।

दिगम्बर आगमो को शौरसेनी घोषित करने वाले और व्याकरण के गीतगाने वाले कृपा करके यह भी सोंचे कि जैनाचार्यो ने अपने ग्रन्थों के नामों में जो पाहुड शब्द जोडा हैं। (जैसे कसाय पाहुड, दसण पाहुड, सुत्तापाहुड आदि) वह शब्द शौरसेनी व्याकरण के किन विशेष सूत्रों से संपादित हुआ है? क्योंकि शौरसेनी के जो विशेष नियम सूत्र वैयाकरणों ने दिए है उनमे एक सूत्र भी ऐसा नहीं हैं जो पाहुड शब्द की सिद्धि कर सके। सभी सूत्र अन्य प्राकृतो के हैं। यत–

पश्चादवर्ती सभी व्याकरण संस्कृत शब्दों के आधार पर निर्मित है और सस्कृत के 'प्राभृत' शब्द को मूल मानकर वैयाकरणो ने पाहुड शब्द की रचना की है तथाहि–

महाराष्ट्री नियम त्रिविक्रम सूत्र 'खघथधभाम्' १ ३ २० से 'भ' को 'ह' हुआ हैं। प्राकृत चन्द्रिका सूत्र 'जैवात्रिके परभृते सभ्रते प्राभृते तथा' सूत्र ३/१०८ से 'ऋ' को 'उ' और सूत्र' तो ड पताका प्राभृति प्राभृत व्यापृत प्रते ' २/१७ से 'त' को 'ड' हुआ हैं। तब 'पाहुड शब्द बना है। ऐसे में 'जैन शौरसेनी को बहिष्कृत कर एकदेशीय सकुचित शौरसेनी की घोषणा करना कौनसी सदबुद्धि है–जब कि पूर्वाचार्यो की भाषा सर्वजन सुबोध कही गई है–'बालस्त्रीमंदभूर्खाणा आदि। और वह भाषा अर्धमागधी व जैन–शौरसेनी है।

कितना बडा भ्रामकप्रचार :

दिगम्बर जैनाचार्यो की परम्परा (विद्वत्परिषद्) में श्रुत धारक भद्रबाहु आचार्य का काल वीर निर्वाण सवत् १६२ बतलाया है और सम्राट चन्द्रगुप्त इन्हीं आचार्य के साथ दक्षिण देश को गए हैं। वह काल उत्तर भारत में बारह वर्षीय दुष्काल का समय हैं। इसी काल में उत्तर भारत से दिगम्बर मुनियो का दक्षिण में बिहार हुआ बताया है इस काल के लगभग ४५० वर्ष बाद अर्थात् वीर निर्वाण संवत् ६१४ में धरसेन आचार्य का प्रादुर्भाव बतलाया है और इसके पूर्व आचार्य गुणधर का समय है। तथा आचार्य पुष्पदन्त का समय वीर निर्वाण सवत् ६३३ अर्थात् (आचार्य धरसेन के अस्तित्व में) १६ वर्ष के अन्तराल में बतलाया हैं। इस प्रकार आचार्य पुष्पदंत का काल श्रुतकेवली भद्रबाहु से लगभग ४७१ वर्ष बाद और आ० गुणधर का समय भद्रबाहु के ४५० वर्ष बाद का ठहरता है।

दिगम्बरों की मान्यता में आचार्य गुणधर कृत 'कसाय पाहुड' व आचार्य पुष्पदन्त कृत 'षट् खण्डागम' ग्रन्थराज दो ग्रन्थ ही ऐसे प्राचीनतम हैं जो सर्वप्रथम प्रकाश में आए। इनसे पूर्व किन्हीं ग्रन्थो का निर्माण नहीं हुआ ऐसी अवस्था में इस काल से ४७१ और ४५० वर्ष पूर्व के मुनियो के लिए ऐसा लिख देना कि 'जब मौर्य युग में जैन मुनिसंघ दक्षिण की ओर गया तो उनके ग्रन्थों के साथ प्राचीन शौरसेनी का दक्षिण

भारत में अधिक फैलाव हुआ। सम्राट खारवेल ने अपने राजनैतिक प्रभाव से इस भाषा को वहाँ संरक्षण प्रदान किया' (राष्ट्रीय शौरसेनी प्राकृत संगोष्ठी में वितरित पत्रक) यह कितना बडा भ्रामक प्रचार हैं जबकि उक्त दोनों ग्रन्थो से पूर्व के कोई ग्रन्थ आज भी उपलब्ध नहीं हैं।

खारबेल के शिलालेख :

सगोष्ठी मे वितरित पत्रक मे कहा गया है कि 'सम्राट खारवेल ने अपने राजनैतिक प्रभाव से इस भाषा (प्राचीन शौरसेनी) को वहाँ संरक्षण प्रदान किया'।

उक्त सरक्षण कार्य के विषय में कुदकुंद भारती की ओर से कोई ऐतिहासिक प्रमाण या खारवेल के आदेश पत्र का कोई प्रमाण तो प्रस्तुत नहीं किया गया। हॉ, वहॉ के संपादक ने 'मुन्नुडि' पृ. ६ पर हाथी गुंफा के शिललेख का उद्धरण देते हुए शिला मे अकित 'नमो सव सिधान' शब्द का संकेत अवश्य दिया है। यह शिलालेख खारवेल (मौर्यकाल के १६५ वे वर्ष) का है उक्त शिलालेख में णमोकार मत्र के 'नमो अरहंतानं, नमो सवसिधान' का उल्लेख है और इसी शिलालेख मे 'पसासित, पापुनाति, कारयति, पथापयति, वितापति आदि ऐसे बहुत से शब्द है जो प्राचीन या नवीन किसी भी शौरसेनी के नहीं है। क्योकि शौरसेनी मे 'त' के स्थान में 'द' करने का अकाटय नियम है और यहॉ क्रियापदो मे सर्वत्र 'त' का प्रयोग हैं। (देखे जैन शिलालेख सग्रह २ भाग पृ० ४)

इसके सिवाय दिगम्बरों में णमोकार मंत्र का प्रचलन 'ण' प्रमुख है और इस मंत्र का सर्वप्रथम उल्लेख जो षट् खण्डागम के मगलाचरण में उपलब्ध है उसमें भी मत्र मे सर्वत्र 'ण' का उल्लेख है। तो प्रश्न होता है कि 'न' और 'ण' इन दोनो में प्राचीन शौरसेनी कौनसी है और नवीन कौनसी हैं? खारवेल के शिलालेख की या षट् खण्डागम के पाठ की? यदि दिगम्बर आगमों की भाषा प्राचीन शौरसेनी है तो आगमों मे 'ण' क्यों? और यदि 'ण' का पाठ है तो वह शौरसेनी क्यो? और शौरसेनी व्याकरण के किस विशिष्ट सूत्र के नियम से? मथुरा के प्राचीन अनेक शिलालेखो मे भी 'नमो अरहतानं' का उल्लेख हैं। (शिलालेख सं. भाग २ पृ. १७, १८.)

हम पुनः निवेदन कर दे कि यद्यपि हमें परंपरित प्राचीन प्राकृत आगमों की भाषा बंधनमुक्त इष्ट है— 'सकल जगज्जन्तूना व्याकरणदिभिरनाहित संस्कारः सहजो वचन व्यापारः प्रकृतिः। तत्र भवं सैव प्राकृतम्।' तथापि हमें प्राकृत मे व्याकरण मान्यता वालो को इंगित करने हेतु उक्त प्रसंग दर्शाने पडे हैं। ताकि विज्ञजन भी सशोधको की स्वमान्य शौरसेनी की व्याकरणज्ञातीतता को सहज ही हृदयंगम कर सकें। इनके संशोधन पश्चाद्वर्ती व्याकरण से भी ठीक हैं क्या? खारवेल के शिलालेख किसी कथन मात्र से शौरसेनी नहीं हो जाते—उनकी भाषा तो अभी विवादस्थ हैं आदि।

कई लोग हमसे कहते हैं—इस अर्थयुग में आप ज्ञान की बात क्यों करते हैं? जैसा चलता है, वैसा चलता रहे। काल का प्रभाव तो होता ही है। सो हमारा कहना है कि— 'कभी तो किसी के भनक पडेगी कान। और नहीं तो हमारे दिवगत आचार्य तो जान ही रहे हैं।

●●

आगम भाषा और लिपि

न्यायमूर्ति एम एल जैन

प्राकृत भाषा मे निबद्ध दि. जैन आगम के सम्पादन को लेकर कुछ समय से दो विभिन्न मत सामने आए है। एक पक्ष का विचार है कि--

"सम्पादन के लिए किसी प्राचीन प्रति को जिसके सम्बन्ध मे यह विश्वास हो कि उसके पाठ प्राय शुद्ध है आदर्श प्रति मान लिया जाता है। आदर्श प्रति के अतिरिक्त लिखित या मुद्रित जो भी प्रतियॉ मिल सकती है उनसे पाठ का मिलान किया जाता है। पाठ भेद होने की दशा में प्राचीन प्रति या आदर्श प्रति के पाठ का व्याकरण आदि की दृष्टि से अन्त परीक्षण किया जाता है। इस प्रकार पाठ का निर्धारण किया जाता है। पाठ निर्धारण की यह विद्वत्सम्मत प्रक्रिया है।

दूसरे पक्ष का विचार है कि किसी ऐसे पाठ को जो प्राचीनतम (या आदर्श) प्रति मे है इसलिए नहीं बदला जा सकता कि वह व्याकरण सम्मत नहीं है ऐसा करना आगम में परिवर्तन करना है। टिप्पण दिया जाना प्राचीन परपरा है।

इस विषय मे मेरे समान 'अल्पश्रुत' व्यक्ति के लिए कुछ निश्चय करना उतना ही कठिन है जितना आगम का अर्थ करना--समझना।फिर भी यह कुछ लिखने का साहस इसलिए है कि कदाचित इस विषय पर कुछ प्रकाश पडे।

भरत के नाटयशास्त्र (१--२ ई. सदी) के अनुसार--

चतुर्विधा प्रवृत्तिश्च प्रोक्ता नाटय प्रयोकतृभि·
आवन्ती, दाक्षिणात्या च पान्चाली चोड्रमागधी

अर्थात् नाटको मे चार प्रकार की प्राकृत का प्रयोग होता है--

पश्चिम की आवन्ती
दक्षिण की दाक्षिणात्य
उत्तर की पाञ्चाली
पूर्व की ओड्रमागधी

अशोक के शिलालेखो की भाषा मौर्य काल से पहले से चली आ रही पर्याप्त उन्नत मागधी प्राकृत है। वह भी सारे भारत मे न प्रचलित थी और न हो ही सकती थी। अत उस पर भी विभिन्न प्रदेशो की भाषाओं का असर दिखाई पडता है जैसे गिरनार के शिलालेख में पैशाची प्राकृत का प्रभाव।

अशोक के बाद कलिग मे खारवेल के समय मे जो प्राकृत प्रचलित थी वह मागधी नही, स्थानीय प्राकृत थी। इसीलिए उदयगिरी व खण्डगिरी पर ब्राहमी लिपि मे उत्कीर्ण शिलालेखो की भाषा मागधी प्राकृत से भिन्न अपनी स्वय की विशेषताएँ लिए हुए अलग किन्तु उन्नत प्राकृत है। इस प्राकृत का नाम ओड्र मागधी है जो ई.पू. पहली सदी मे ओड्र, मगध, अग, बेग, कलिग, पौड्र आदि प्रदेशो मे प्रचलित थी। मेरे अनुमान से ओड्रमागधी का ही सस्कृतीकरण होकर अर्धमागधी नाम पड गया।

अब अशोक के अथवा खारवेल के हाथीगुमफा के समय की कोई व्याकरण तो उपलब्ध है नही जिसके आधार पर से यह कहा जा सके कि शिलालेखो की भाषा कितनी शुद्ध है या कितनी अशुद्ध। दरअसल उनकी भाषा के सशोधन के प्रयत्न का अर्थ होगा—

१ भविष्य मे लेखो की प्राचीनता पर सशय पैदा करना, तथा

२ भाषा के वर्गीकरण व इतिहास के सकेतो को मिटा देना।

समयसार का कौन सा पाठ वही पाठ है जो स्वय कुदकुद ने लिखा या बोला था, यह कहना तो असभव कार्य है, अभी तो विद्वान उनके समय के बारे मे भी एकमत नही है। हमे यह भी पता नही कि उस समय कोन सा व्याकरण प्रचलित था। इसके इलावा समयसार के करीब २० मुद्रित सस्करण निकालेगे। उनकी भाषा पर सर्वत्र नियत्रण रखना भी सभव नहीं है। इस विषय पर दोनो पक्ष विचार विमर्श कर चुके है और अब इस चर्चा को विराम देना ही हितकर है। इस पर लगे समय व साधनो का उपयोग जैन साहित्य के प्रचार—प्रसार मे करना अधिक श्रेयस्कर है।

मान्यता है कि महाराज ऋषभ देव ने लिपि का आविष्कार किया और उसका नाम अपनी बेटी ब्राह्मी के नाम पर रखा। अत नि.सन्देह ब्राह्मी लिपि का प्रयोग कार्य सम्पादन मे लोग तब से ही करते आ रहे होगे फिर भी समस्त तीर्थकर, केवली सर्वज्ञ गणधर लिपि का प्रयोग न कर केवल स्मरण शक्ति पर आधारित श्रुत ही चलाते रहे। इस हद तक कि मूल दिगम्बर आगम का अधिकाश विच्छिन्न हो जाने दिया। इसके पीछे का रहस्य क्या है यह माने कि यह इसलिए किया गया कि यदि शास्त्र लिपिवद्ध हो जाते, तो चिन्तन के विकास की धारा अवरूद्ध हो जाती और कट्टरता पनपती जैसा कि आगम लिपिवद्ध होने के पश्चात् से आज तक होता आ रहा है। क्या हमारे पण्डित इस विषय पर ज्ञानाजन शलाका चलाने की कृपा करेगे। ●●

मिथ्या भाव अभावतैं, जो प्रगटै निजभाव।
सो जयवन्त रहो सदा, यह ही मोक्ष उपाय।।
इस भव के सब दुखनि के, कारण मिथ्याभाव।
तिनकी सत्ता नाशकरि, प्रगटै मोक्ष उपाय।।
यह विधि मिथ्या गहन करि, मलिन भयो निजभाव।
ताको होत अभाव है, सहजरूप दरसाव।।

कलि कालिदास : पं. आशाधर

आचार्या जैनमती जैन
एम ए (प्राकृत जेनोलॉजी)

भारतीय साहित्य के क्षेत्र मे 'कालिदास' महान प्रसिद्ध कवि हो गए हैं। 'पं. आशाधर' को भी उनके प्रशंसको ने उन्हे 'कलि कालिदास' कहा है। कलि कालिदास कहने का औचित्य क्या है? कवि कुलगुरू कालिदास ने साहित्य—साधना और प्रतिभा के बल पर अनेक महाकाव्यों, नाटको ओर खण्ड काव्यों की प्रौढ सस्कृत भाषा मे सृजना कर भारतीय वाड्.मय के विकास मे महान योगदान दिया है। क्या ई० सन् १४वीं शताब्दी के आचार्य प० आशाधर ने कवि कालिदास के समान साहित्य—सृजना की कलि कालिदास कहने का तात्पर्य यही है कि पं. आशाधर ई० पूर्व प्रथम शताब्दी में होने वाले कालिदास के समान अपूर्व प्रतिभावान और काव्य की सभी विधाओं पर लेखनी चलाने के धनी थे तथा उनका आदर्श जीवन अनुकरणीय था। ऊहापोह पूर्वक सिद्ध किया जाएगा कि पं. आशाधर कलि कालिदास थे या नहीं? क्यों कि आज कल भक्त लोग निर्गुण लोंगो को भी कलिकालसर्वज्ञ आचार्य कल्प आदि उपाधियो से विभूषित करने लगे है।

सागार धर्मागृत के लेखक पं. आशाधर महान अध्ययनशील थे। उनके विशद एवं गम्भीर अध्ययन का ही यह प्रसाद है कि विभिन्न विषयों—जैन—आचार, अध्यात्म, दर्शन, साहित्य, काव्य, कोष, आयुर्वेद आदि सभी विषयों के वे प्रकाण्ड पडित के रूप मे विश्रुत हो सके। उनके समान कोई गृहस्थ ख्याति प्राप्त प्रतिष्ठित विद्वान नहीं हुआ हैं। प कैलासचन्द शास्त्री के रशब्दो में: "आशाधर अपने समय के बहुश्रुत विद्वान थे। न्याय, व्याकरण, काव्य, साहित्य, कोश, वेद्यक, धर्मशास्त्र अध्यात्म, पुराण आदि विषयों पर उन्होने रचना की है। सभी विषयों पर उनकी अस्खलित गति थी ओर तत्सम्बन्धी तत्कालीन साहित्य से वे सुपरिचित थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका समस्त जीवन विद्या व्यासंग मे ही बीता था और वे बडे ही विद्यारसिक ओर ज्ञानधन थे। आचार्य जिनसेन ने अपनी जयधवला टीका की प्रशस्ति में अपने गुरू वीरसेन के सम्बन्ध में लिखा है कि उन्होने चिरन्तन पुस्तकों का गुरूत्व करते हुए पूर्व के सब पुरतक शिष्यो को छोड दिया था अर्थात्चिरन्तन शास्त्रो के वे पारगामी थे। प आशाधर भी पुस्तक शिष्य कहलाने के सुयोग्य पात्र थे। उन्होने अपने समय में उपलब्ध समस्त जैन पुस्तको के आत्मसात कर लिया था १"

जैन साहित्य ओर इतिहास में पं. नाथूलाल २ ने भी उपर्युक्त प्रकार से विचार प्रकट किए हैं।

(क) आकर्षक व्यक्तित्व :

पं आशाधर बहुमुखी प्रतिभा के धनी एव असाधारण कवि थे। उनका व्यक्तित्व सरल ओर सहज होने के कारण उनके मित्रो के अलावा मुनि ओर भट्टारक भी प्रशंसक थे। उन्होने उनका शिष्यत्व स्वीकार कर गौरव का अनुभव किया था। उनकी अपूर्व एव विलक्षण प्रतिभा ने विद्वानो को चकित स्तम्भित कर दिया था। राजा विन्ध्यवर्मा के सन्धि वैग्रहिक मंत्री एव महाकवि बिल्हण ने आशाधर की विद्वत्ता पर मोहित होकर कहा था .

'हे आशाधर! तथा हे आर्य! तुम्हारे साथ मेरा स्वाभाविक सहोदर पना है और श्रेष्ठपना है, क्यो कि तुम जिस तरह सरस्वति पुत्र हो उसी तरह मै भी हूँ। ३'

उपर्युक्त कथन से सिद्ध है कि आशाधर कोई सामान्य पुरूष नहीं थे। इनके अपरिमित ज्ञान को देखकर श्री मदनकीर्ति मुनि ने उन्हे प्रज्ञा प्रुज (ज्ञान के भंडार) कहा है ४ इसी प्रकार उनके गुरूत्व से प्रभावित एव आकर्षित होकर अनेक मुनियो एवं विद्वानों ने उन्हे अनेक उपाधियो से विभूषित किया है मुनि उदयसेन ने पं. आशाधर को 'नय विश्व चक्षु' और 'कलि कालिदास' कहकर अभिनन्दन किया ५ भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति ने आशाधर को 'सूरि' सम्यग्धारियों में शिरोमणि आदि कहा है। उतरवर्ती विद्वानो ने पं. आशाधर को आचार्य कल्प कहा है ६। इस प्रकार अनेक मुनिगण ने उनका यशोगुणगान किया हैं।

यद्यपि पं आशाधर गृहस्थ विद्वान थे, लेकिन उन्हे निर्विकल्प अनुभूति हुई थी ७। पूर्व परम्परा के सम्यक् अध्येता प. आशाधर की विद्वत्ता पर जैनेतर विद्वान भी मुग्ध थे। 'अष्टांगहृदय' जैसे महत्वपूर्ण आयुर्वेद ग्रन्थ पर टीका लिखी। काव्यालकार और अमरकोश की टीकाएँ भी उनकी विद्वत्ता की परिचायक है।

(ख) पं. आशाधर का जीवन वृत्त :

पं. आशाधर उन विद्वानो मेंसे नहीं हैं जो अपने सम्बन्ध मे चुप रहते हैं अर्थात् कुछ भी नहीं लिखते है यह परम सौभाग्य की बात है कि पं आशाधर ने जिन यज्ञ कल्प, सागार धर्मामृत और अनागार धर्मामृत नामक ग्रन्थों की प्रशस्ति मे अपनी जन्मभूमि, जन्मकाल, मातापिता, विद्या भूमि, कर्मभूमि आदि के सम्बन्ध पर्याप्त जानकारी दी। इन्ही प्रशस्तियो के आधार पर उनका जीवन वृत प्रस्तुत करना समुचित है।

१. जन्मभूमि-: प. आशाधर की जन्मभूमि के सम्बध मे कोई विवाद नहीं है। प्रशणस्ति के अध्ययन से ज्ञात होता है कि शाकभरी (साभरझील) के भूषणरूप सपादलक्षदेश के अन्तर्गत मण्डलकर दुर्ग (मेवाड) नामक देश अर्थात् स्थान को प आशाधर ने पवित्र किया था ८। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि वर्तमान मे राजस्थान का माण्डलगढ जिला भीलवाडा (दुर्ग) मे प आशाधर का जन्म हुआ था।

२. माता-पिता एवं वंश-: सागार धर्मामृत की प्रशस्ति मे उल्लेख मिलता है कि जैनधर्म श्रद्धालु भक्त सल्लक्षण प आशाधर के पिता थे और माता का नाम श्री रत्नी था ६। प आशाधर के पिता को राजाश्रय प्राप्त था। प. आशाधर जी का जन्म राजपूताने की प्रसिद्ध वैश्य जाति व्याघ्रेरवाल या बघेरवाल जाति मे हुआ था १०।

३. पारियारिक स्थिति-: प. आशाधर का विवाह हुआ था। अत्यधिक सुशील एव सुशिक्षित सरस्वती नामक महिला को प आशाधर की पत्नी होने का सौभाग्य मिला था। इनके छाहड नामक एक पुत्र था, जिसने अपने गुणो के द्वारा मालवा के राजा अर्जुनवर्मा को प्रसन्न किया था ११। पडित नाथूराम प्रेमी १२ सल्लक्षण के समान इनके बेटे छाहड को अर्जुनवर्मा देव ने कोई राज्यपद दिया होगा। क्यो कि "अक्सर राजकर्मचारियो के वशजो को एक के बाद एक राजकार्य मिलते रहते है।"

उपर्युक्त उल्लेख से सिद्ध होता है कि प आशाधर का कुल सुसस्कृत राजमान्य था।

४. भाई-बन्धु-: उपलब्ध प्रशस्ति मे यह उल्लेख नही मिलता है कि प. आशाधर के कोई बन्धु था। प प्रेमचन्द डोणगावकर न्यायतीर्थ के अनुसार इनके वाशाधर नामक बन्धु होने का दो जगह उल्लेख हुआ है वाशाधर के स १२३६ मे भट्टारक नरेन्द्र कीर्ति के उपदेश से काष्टासघ मे प्रवेश किया था १३।

५. शिक्षा एवं गुरू परम्परा-: प आशाधर की प्रारम्भिक शिक्षा कहाँ हुई इसका कही उल्लेख नही मिलता है। इनका बचपन माण्डल गढ मे बीता था। सभव है यही पर इन्होने प्रारम्भिक शिक्षा पाई हो। वि स १२४६ मे जब आशाधर १६ वर्ष के हुए तो उस समय म्लेच्छ (मुसलमान) राजा शहाबुद्दीन द्वारा सपादलक्ष देश पर आक्रमण किया गया था और उसका राज्य भी हो गया था। इसके राज्य मे जेन यतियो पर उपद्रव होने लगा था। जेन धर्मानुसार आचरण करना कठिन हो गया था। जैन धर्म पर आघात होने और उसकी क्षति होने के कारण अपने जन्म स्थान छोडकर सपरिवार मालवा मण्डल की धारापुरी नामक नगरी मे आ गए थे। उस समय वहाँ विन्ध्य वर्मा राजा थे। यहीपर रह कर आशाधर ने वादिराज के शिष्य प धरसेन ओर इनके शिष्य प महावीर से जैनधर्म, न्याय ओर जैनेन्द्र व्याकरण पढा था १४।

अत प. महावीर ही इनके विद्यागुरू है। यहीं पर अनेक विषयो का गभीर स्वाध्याय कर जेन धर्म के वे मर्मज्ञ विद्वान बनकर पडित उपाधि से विभूषित हुए।

६. कर्मभूमि-: विद्या भूमि धारानगरी मे प आशाधर जैन एव जैनेतर समस्त साहित्य का अध्ययन कर बहुश्रुत हो गए थे। इसके पश्चात् धारा को छोडकर नालछा आ गए। आखिर क्यो? यहॉ यह भी उल्लेखनीय है कि उस समय 'धारानगरी' काशी की तरह विद्या का केन्द्र थी। प नाथूराम प्रेमी १५ का कहना हे कि उस नगरी के सभी राजा—भोजदेव, विन्धय वर्मा, अर्जुन वर्मा केवल विद्वान ही न थे, बल्कि विद्वानो का सम्मान भी करते थे। परिजात मञ्जरी मे महा कविमदन ने लिखा है धारानगरी की

चोरासी चौराहो पर विभिन्न दिशाओ से आने वाले विभिन्न विद्वानो के पडितो ओर कला–कोविदो की भीड रहती थी। वहॉ की 'शारदा–सदन विद्यापीठ' की ख्याति दूर–दूर तक व्याप्त थी। इस प्रकार की विद्यास्थली धारानगरी को छोडने का निर्णय करके नालछा (नलकच्छपुर) के लिए प्रस्थान करने का निर्णय आश्चर्य जनक प्रतीत होता है। इनकी प्रशस्ति से उपर्युक्त जिज्ञासा का समाधान हो जाता है। उन्होने स्वय लिखा हे कि जेन शासन की प्रभावना (धर्माराधना–पाठन–पाठन) के लिए उन्होने धारानगरी छोडी। नालछा उस समय जैन धर्म से सम्पन्न श्रावको से व्याप्त था। अर्जुन वर्मा का राज्य था। अत धारा से दस कोश की दूरी पर स्थित नालछा नगर को इन्होने पनी कर्मभूमि बनाया १६। वे नालछा मे लगभग ३५ वर्षो तक रहे। यहॉ के नेमिचैत्यालय मे जैन शास्त्रो का पठन–पाठन, साहित्य सृजना आदि करते हुए जैन धर्म की प्रभावना की।

७. **शिष्यसम्पदा-:** पडित आशाधर की शिष्य सम्पदा प्रचुर थी। उनके विद्याभ्यास समाप्त होते होते उनकी विद्वता की कीर्ति चतुर्दिक व्याप्त हो गई थी। उनकी अभूतपूर्व प्रतिभा ने श्रावको के अतिरिक्त अनेक मुनियो ओर जेनेतरो को आकर्षित किया था अपने शिष्यो को ऐसा ज्ञान कराया कि व्याकरण, काव्य, न्यायशास्त्र ओर धर्मशास्त्र मे उन्हे कोई विपक्षी जीत नही सकता था। प्रशस्ति मे उन्होने स्वय कहा हे "सुश्रुपा करने वाले शिष्यो मे ऐसे कौन हे जिन्हे आशाधर ने व्याकरण रूपी समुद्र के पार शीघ्र ही न पहुँचा दिया हो, ऐसे कौन है जिन्होने आशाधर के षटदर्शन रूपी परमशास्त्र को लेकर अपने प्रतिवादियो को न जीता हो, आशाधर से निर्मल जिनवाणी रूपी दीपक ग्रहण करके जो मोक्ष मार्ग मे प्रबुद्ध न हुए हो और ऐसा कौन है जिसने आशाधर से काव्यामृत का पान करके इसके पुरूषो मे प्रतिष्ठा न प्राप्त की हो १७?"

उपर्युक्त कथन से सिद्ध है कि उनके शिष्य उन्ही के समान अपने–अपने विषय के निष्णात विद्वान थे। उनके शिष्यो मे निम्नाकित शिष्य प्रमुख एव उल्लेखनीय हैं १८।

१ **पं. देवचन्द्र :** इन्हे आशाधर ने व्याकरण शास्त्र मे निण्णात विद्वान बनाया था।

२ **वादीन्द्र विशाल कीर्ति आदि :** इन्हे षडदर्शन एव न्याय शास्त्र पढाकर विपक्षियो को जीतने मे समर्थ ज्ञाता बनाया। चदुर्दिक के वादियो को जीत कर इन्होने महाप्रमाणिक चूडामणि की उपाधि प्राप्त की थी १६।

३ **भट्टारक देवचन्द्र, विनयचन्द्र आदि :** इन्हे प आशाधर ने धर्मशास्त्र (सिद्धान्त) का अध्ययन कराया था। इसी अध्ययन के प्रभाव से वे मोक्षमार्ग की ओर उन्मुख हुए थे २०।

४ **महाकवि मदनोपाध्याय आदि :** को काव्यशास्त्र का अध्ययन करा रसिक जनो से प्रतिष्ठा प्राप्त करने का अधिकारी बनाया था।

इसके अतिरिक्त मुनि उदयसेन कवि अर्हददास को इनका शिष्य होने का उल्लेख विद्वानो ने किया है।

(ग) पं. आशाधर का समय :

प. आशाधर का जन्मसमय विवादग्रस्त नहीं हैं। इसका कारण यह है कि उन्होने स्वयं अपनी रचनाओं की तिथियो का उल्लेख किया हैं।

प्रशस्तियों का आधार : पं. आशाधर के तीन ग्रन्थो में उनके द्वारा लिखी गई प्रशस्ति उपलब्ध हैं। जिन यज्ञकल्प प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ वि. सं. १२८५ में समाप्त हुआ था। इसमें जिन ग्रन्थों का उल्लेख हुआ है वे निश्चित रूप से वि. सं. १२८५ में रचे गए थे। अनगार धर्मामृत टीका वि. स १३०० में पूरी हुई थी २१। अत सिद्ध है कि इनका जन्म वि सं. १३०० के पहले अवश्य हुआ होगा। डा० नेमिचन्द्र शास्त्री का अनुमान है कि वि. सं. १३०० को उनकी आयु ६५–७० वर्ष रही होगी। इसीलिए इनका जन्म वि स. १२३०–३५ के लगभग हुआ होगा २२।

दूसरी बात है कि वि स. १२४८–४६ मे वे माण्डलगढ से मालवा की धारा नगरी मे आए थे। उस समय उनकी आयु २० वर्ष की थी। इससे सिद्ध होता है कि उनका जन्म वि. सं. १२२८–२६ में हुआ होगा २३। इस सम्बन्ध मे यह भी उल्लेखनीय है कि जब वे धारानगरी आए उस समय विन्ध्यवर्मा का राज्य था। विन्ध्यवर्मा का समय वि. स १२१७–१२३७ माना गया है २४। अतः सिद्ध है कि वि स. की तेरहवीं शताब्दी मे उनका जन्म हुआ होगा।

प नाथूराम प्रेमी ने लिखा हे कि प. आशाधर ३५ वर्षो तक नालछा मे रहे २५। २० वर्ष की अवस्था मे उन्होंने व्याकरण का अध्ययन किया होगा और इसके बाद वे नालछा मे आकर साहित्य सृजन करने लगे होंगे। अतः पहली रचना उन्होने २० वर्ष की अवस्था मे की होगी। अतः ३५+३०=६५ वर्ष उनकी आयु सिद्ध होती है। 'जिनयज्ञ कल्प' वि. स १२८५ मे से ६५ घटाने पर उनका जन्म वि स १२३० सिद्ध होता है २६।

२. पं. आशाधर ने उल्लेख किया है कि वे अर्जुन वर्मा देव के वि. स. १२६७ वि. स. १२७० ओर १२७२ के दानपात्र मिले हैं। इससे निष्कर्ष निकलता हे कि अर्जुनवर्मा देव वि. सं १२६५ मे अवश्य राजा हुए होगे। धारा मे प. आशाधर ने २५–२६ वर्ष की आयु में अध्ययन समाप्त किया होगा। अध्ययन समाप्त करके वे नालछा चले गए थे। अत. इनका जन्मकाल वि. सं. १२३०–१२२८ सिद्ध होता है।

३. वि० स० १३७६ मे रचित जिनेन्द्र कल्याणभ्युदय में कवि अम्भपार्य ने अन्य जैन आचार्यो के साथ प आशाधर का उल्लेख किया है २७। अत पं. आशाधर का जन्म विक्रम सम्वत् की १३वीं शती में हुआ होगा। मेरे इस कथन की पुष्टि प कैलाशचन्द्र शास्त्री, प नाथूराम प्रेमी, प जगन्मोहन लाल शास्त्री, शातिकुमार ठवली प्रभृति विद्वानो की मान्यता से होती हैं २८।

(घ) कृतियाँ

पं. आशाधर ने धारा नगरी छोडकर नालछा आने के पश्चात् साहित्य–सृजन कार्य आरम्भ किया। कृतियों की रचना, साहित्य सेवा और जिनवाणी की सेवा एवं उपासना का केन्द्र बनाया। आशाधर का अध्ययन अगाध और अभूतपूर्व था। यही कारण है कि उन्होने संस्कृत भाषा में न्याय, व्याकरण, काव्य, अलंकार, अध्यात्म, पुराण, शब्दकोष, धर्मशास्त्र, योगशास्त्र वैद्यक (आयुर्वेद) ज्योतिष आदि विषयों से सम्बंधित विपुल ग्रन्थों की रचना कर जेनवाङ्मय को समृद्ध करने में अभूतपूर्व योगदान किया। शांतिकुमार ठवली के अनुसार आशाधर ने १०८ ग्रन्थों की रचना की थी। वे लिखते है कि–

उनकी एक सौ आठ रचनाओं का पता चला है। और भी न मालूम कितनी रचनाएँ नष्ट व अज्ञात रही है। ज्ञात रचनाओं मे प्रथमानुयोग की ११, करणानुसयोग की चार, चरणानुयोग की ११, द्रव्यानुयोग की ८ विशेष है तथा पूजन, विधान, भक्ति, प्रतिष्ठा, टीका आदि ७० ग्रन्थ उपलब्ध है और अष्टांग हृदय संहिता, शब्द त्रिवेणी, जैनेन्द्र प्रवृति, काव्यालकार टीका आदि का उल्लेख तथा पता भी मिलता है २६।

लेकिन ठवली ने अपने कथन मे किसी प्रमाण का उल्लेख नहीं किया है। पं. आशाधर ने जिन यज्ञकल्प, सागार धर्मामृत टीका और अनागार धर्मामृत टीका की प्रशस्तियों में अपने ग्रन्थो का उल्लेख किया है तथानुसार उनके द्वारा रचित ग्रन्थ निम्नांकित हैं। :

(अ) जिनयज्ञकल्प की प्रशस्ति में उल्लिखित ग्रन्थ

जिनयज्ञकल्प ३० की प्रशस्ति के अनुसार यह ग्रन्थ विक्रम सं. १२८५ में पूरा हुआ था। इसमें इसके पूर्व मे लिखें गए ग्रन्थो का उल्लेख है कि जो निम्नाकित है–

(१) **प्रमेयरत्नाकर** . पं. आशाधर ने स्याद्वाद विद्या का विशद प्रसाद कहा है। यह तर्कशास्त्र विषयक ग्रन्थ है। इसकी रचना पद्यों में की गई थी। आशाधर ने कहा है कि इसमें निर्दोष विद्यामृत का प्रवाह बहता है। यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है। इसकी प्रति सोनागिरि में होने का उल्लेख विद्वानो मे किया है ३१।

(२) **भरतेश्वराभ्युदय काव्य** : इसे आशाधर ने सिध्यक भी कहा हैं क्योकि इसके प्रत्येक सर्ग के अन्तिमवृत मे 'सिद्धि' शब्द का प्रयोग हुआ हैं। इस सत्काव्य में भरत चक्रवर्ती के जीवनवृत्त विशेष कर मोक्ष प्राप्ति का वर्णन रहा होगा। क्योंकि यह काव्य अध्यात्मरस से युक्त था। प्रस्तावना से यह भी ज्ञात होता हे कि कवि ने इसकी रचना अपने कल्याण के लिए कीथी। इस पर उन्होंने टीका भी की थी। दुर्भाग्य से आज यह उपलब्ध नहीं हैं। इसकी पाण्डुलिपि सोनागिरी मे मौजूद हे।

(३) **धर्मामृत** : धर्मामृत की रचना अनगार और सागार इन दो भागो में हुई है। अनगार धर्मामृत मे मुनि धर्म का वर्णन करते हुए मुनियो के मूल और उत्तरगुणो का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया हैं। इसमे ६ अध्याय है। पहले अध्याय में ११४ श्लोको के द्वारा

धर्म के स्वरूप का वर्णन किया गया है दूसरे अध्याय मे ११४ श्लोको के द्वारा सम्यक्त्वोत्पादनादिक्रम का ज्ञानाराधना नामक तीसरे अध्याय २४ श्लोक चरित्राराधन का वर्णन चतुर्थ अध्याय मे १८३ श्लोको मे . पिण्डुशुद्धि नामक पॉचवे अध्याय मे ६६ श्लोको के द्वारा भोजन सम्बन्धी समस्त दोषो का विस्तार से निरूपण कर के साधु कानिर्दोष भोजन करने योग्य बतलाया गया है। छठे अध्याय मे एक सौ बारह श्लोक इसका नाम मार्ग महोयोग है। तपाराधना नामक सातवे अध्याय मे १०४ श्लोक द्वारा १२ तपो का वर्णन है। आठवे अध्याय का नाम आवश्यक निर्युक्ति है। इसमे१३४ श्लोको मे साधु के छह आवश्यक--सामायिक, स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग का वर्णन है। नौवे अध्याय मे नित्यनैमित्तिक क्रियाओ का वर्णन १०० श्लोको मे हुआ है। इस प्रकार इसमे कुल ६५४ श्लोक है। ज्ञानदीपिका उन्होने सस्कृत पञ्जिका भी स्वोपज्ञ लिखी थी।

सागार धर्मामृत ग्रहस्थधर्म का निरूपण आठ अध्यायो मे हुआ है। इसका विस्तृत विवेचन आगे करेंगे ३२।

(४) अष्टांग हृदयोद्योत : 'वाग्मटसहिता' अष्टाग हृदय नामक आयुर्वेद ग्रन्थ जिसकी रचना 'वाग्भट' ने की थी, को व्यक्त करने के लिए आशाधर ने अष्टाग हृदयोद्योत नामक टीका लिखी थी ३३। यह ग्रन्थ उपलब्ध नही है।

(५) मूलाराधना टीका : आचार्य शिवकोटि की कृति 'भगवती--आराधना' **नामक** ग्रन्थ पर आशाधर ने सस्कृत मे मूलाआराधना दर्पण नामक टीका लिखी थी ३४ इस टीका के अतिरिक्त एक टिप्पणी और प्राकृत टीका तथा प्राकृत पचसग्रह ग्रेन्थ भी लिखे थे।

(६) इष्टोपदेश टीका : पूज्यपादाचार्य द्वारा रचित इश्टोपदेश पर आशाधर ने सस्कृत मे टीका लिखी थी ३५। आशाधर ने विभिन्न ग्रन्थो से श्लोको को उद्घृत ग्रन्थ के हार्द समझाने का प्रयास किया हैं।

इसका पहलीवार प्रकाशन माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई से तत्वानुशासनादि सग्रह मे हुआ था। इसके बाद सन् १९५५ मे वीर सेवा मंदिर सोसाइटी दिल्ली से ग्रन्थाडक ११ के रूप मे हिन्दी टीका सहित हुआ। इसके सम्पादक जुगल किशोर मुख्तार है।

(७) अमरकोष टीका ३६ : यह अनुपलब्ध है।

(८) क्रिया कलाप इसकी हस्तलिखित पाण्डुलिपि पन्नालाल सरस्वती भवन बम्बई मे है।

(९) आराधनासार टीका ३७ : यह उत्कृष्ट कृति भी अप्राप्त है। जयपुर मे इसकी हस्तलिखित प्रति मौजूद है।

(१०) भूपाल चतुर्विशतिका टीका : यह अप्रकाशित है।

(११) काव्यालंङ.कार : रूद्रट के काव्यलकार पर आशाधर ने सस्कृत मे टीका लिखी की जो अनुपलब्ध है ३८।

(१२) जिनसहस्त्रनामस्तवन सटीक ३६ : इस ग्रन्थ पर श्रुतसागर सूरि ने टीका रची है। इसी टीका सहित यह ग्रन्थ भारतीय ज्ञान पीठ वाराणसी और माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला सोलापुर से प्रकाशित है।

(१३) नित्यमहोद्योत ४० : इसमे भगवान अर्हन्त के महाभिषेक से सम्बन्धित स्नान आदि का वर्णन हैं। इस पर श्रुतसागर सूरि की टीका भी है। इसका प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली से जिनसहस्त्र नाभ सटीक और बनजीलाल जैन ग्रन्थमाला से अभिषेक पाठ संग्रह मे श्रुतसागरी टीका सहित हो चुका है ४१।

(१४) रत्नत्रयविधान ४२ : यह अभी तक अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित पाण्डुलिपि बम्बई के सरस्वती भवन मे है। इसमे रत्नत्रय पूजा क माहात्म्य वणित है।

(१५) जिनयज्ञकल्प ४३ : प्रशस्ति मे बतलाया गया है कि नलकच्छपुर के निवासी खण्डेलवाल वश के भूषण अल्हण के पुत्र पापासाहु के आग्रह से वि स १२८५ मे आश्विन शुक्ला पूर्णिमा को प्रमारबश के भूषण देवपाल राजा के राज्य मे नलकच्छपुर मे नेमिनाथ जिनालय मे यह ग्रन्थ रचा गया था। यह युग अनुरूप प्रतिष्ठाशास्त्र था। इसका प्रकाशन जैन ग्रन्थ उद्धारक कार्यालय से स १६७४ मे 'प्रतिष्ठासारोद्धार के नाम से हुआ था। इसमे हिन्दी टीका भी है। इसके अन्त मे प्रशस्ति है, जिसमे वि स. १२८५ तक रचित उपर्युक्त ग्रन्थो का नामाकन हुआ है। इसमे छ अध्याय है।

(१६) जिनयज्ञकल्पदीपक सटीका ४४ : इसकी एक प्रति जयपुर मे होने का उल्लेख प. नाथूराम प्रेमी ने किया हैं ४५।

(१७) त्रिषष्टि स्मृति शास्त्र सटीक ४६ : इसके नाम से ही सिद्ध होता है कि इसमे त्रेसठ शलाका पुरूषो का वर्णन है। इसका प्रकाशन मराठी भाषा टीका सहिता सन् १६३७ मे माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला शोलापुर से ३७ वे पुष्प के रूप मे हो चुका है। आशाधर ने प्रशस्ति के भाष्य मे लिखा है। कि आर्षमहापुराणों के आधार पर शलाका पुरूषो का जीवन का वर्णन किया है उन्होने त्रिषष्टि स्मृतिशास्त्र पर स्वोपज्ञ टीका भी रची थी। वि. सं १२६२ मे नलकच्छपुर मेराजा देवपाल के पुत्र जैतुगिदेव के अवन्ती में राज्य करते समय रचा था ४७।

(१८) सागार धर्मामृत टीका ४८ : इस भव्यकुमुदचन्द्रिका नामक सागारधर्मामृत की टीका की रचना वि. स १२६६ मे पू. वदी सप्तमी के दिन नलकच्छपुर के नेमिनाथ चैत्यालय मे हुई थी ४६। इस ग्रन्थ के निर्माणकाल के समय प्रमारवश को बढाने वाले देवपाल राजा के पुत्र श्रीमत् जैतुगिदेव अवन्ति का मे राज्य करते थे ५०। प्रशस्ति से यह भी ज्ञात होता है कि पोरवाड्वश के समृद्ध सेठ (श्रेष्ठि) के पुत्र महीचन्दसाहू के अनुरोध किए जाने पर श्रावक धर्म के लिए दीपकरूप इस ग्रंथ की रचना की थी उन्ही मही चद साहू ने सर्वप्रथम इसकी प्रथम पुस्तक लिखी थी ५१। इसके अंत मे २४ श्लोको की प्रशस्ति भी उपलब्ध है। यह टीका विं. सं १६७२ मे माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई से दूसरे पुष्प के रूप मे प्रकाशित हुई थी। इसके पश्चात् जैन साहित्य प्रसार कार्यालय गिरगॉव बम्बई से वीर नि स २४५४, सन १६२८ मे, प्रकाशित हुई।

(स) अनागार धर्मामृत टीका में उल्लिखित ग्रन्थ

वि. सं. १३०० में सम्पन्न इस अनागार टीका मे उपर्युक्त ग्रन्थों के अलावा वि. सं. १२६६ में रचित ग्रन्थों का उल्लेख हुआ जो निम्नांकित हैं।

(१६) राजीमती विप्रलम्भ : यह ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं हैं। आशाधर ने लिखा है कि यह एक खण्डकाव्य है, जिसमें नेमिनाथ और राजुल के वैराग्य का वर्णन हुआ है। इसपर कवि ने स्वोपज्ञ टीका भी लिखी थी ५२। इसकी रचना वि.सं. १२६६–१३०० के बीच में कभी हई थी क्योंकि इसका उल्लेख इससे पूर्व में रचित प्रशस्ति मे नहीं हुआ हैं।

(२०) अध्यात्म रहस्य : पं. आशाधर ने अपने पिता के आदेश से इस प्रशस्त और गम्भीर ग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रन्थ योग का अभ्यास प्रारम्भ करने वालों के लिए बहुत प्रिय था ५३। इसका दूसरा नाम योगोद्दीपन–शास्त्र भी मिलता हैं ५४। यह ग्रन्थ वीर सेवा मदिर दिल्ली से वि.सं. २०१४ सन् १६५७ मे जुगल किसोर मुख्तार युगवीर का हिन्दी अनुवाद और व्याख्या सहित प्रकाशित हो चुका हैं। सि. प. केलाशचन्द्र शास्त्री ने भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली से सन् १६७७ मे प्रकाशित धर्मामृत (अनागार) की प्रस्तावना ५५ में अप्राप्त लिखा है इसी प्रकार बघेरवाल सन्देश ५६ की प्रस्तावना में डा. मानवल जैन ने भी इस ग्रन्थ को अप्राप्त लिखा है जो सत्य नही है।

इस ग्रन्थ में ७२ पद्य है। इसका विषय अध्यात्म (योग) से सम्बन्धित हैं आत्मा–परमात्मा के सम्बन्ध का मार्मिक विवेचन है।

(२१) अनागार धर्मामृत टीका : इस ग्रन्थ की रचना वि.स. १३०० मे नलकच्छ के नेमि जिनालय मे देवपाल राजा के पुत्र जैतुगिदेव अवन्ति (मालवा) के राजा के समय मे हुई थी ५७। अनुष्टुपछन्द में रचित ग्रन्थ कार्तिक सुदि पंचमी, सोमवार को पूरा हुआ था। इस ग्रन्थ का परिमाण १२२०० श्लोक के बराबर हैं ५८। यतिधर्म को प्रकाशित करने वाली और मुनियों को प्रिय इस ग्रन्थ की रचना आशाधर ने की थी ५६। इसकी प्रशस्ति मे कहा गया है कि खडिल्यन्वय के परोपकारी युगो से युक्त एवं पापों से रहित जिस पापा साहु के अनुरोध से जिनयज्ञकल्प की रचना हुई थी उसके बहुदेव और पमद्सिह नामक तीन पुत्रों में से हरदेव ने प्रार्थना की मुग्धबुद्धियो को समझाने के लिए महीचन्द्र साह के अनुरोध से आपने धर्मामृत कुशाग्र बुद्धि वालों के लिए भी अत्यन्त दुर्बोध है। अतः इसकी भी टीका रचने की कृपा करे तब आशाधर ने इसकी रचना की थी ६१।

उपर्युक्त ग्रन्थो के अलावा आशाधर ने अन्य किसी ग्रन्थ की रचना नहीं की। यदि उन्होने अन्य ग्रन्थों की रचना की होती तो वि.स १३०० मे रचित अनागार में अवश्य उल्लेख होता।

प. नाथूराम प्रेमी, प. कैलासचन्द शास्त्री, पं जुगलकिसोर मुख्तार प्रभृति विद्वानो ने भी आशाधर के उपर्युक्त ग्रन्थों के अलावा अन्य ग्रन्थो का उल्लेख किया है । किन्तु

डा. मानमल जैन सेठिया ने ६२ उपर्युक्त ग्रन्थों के अलावा निम्नांकित ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए उन्हे अप्रकाशित बतलाया हैं–

१. सिद्धपूजा : अभिनन्दन नाथ मन्दिर, बूँदी में इसकी हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हैं।
२. कल्याण मन्दिर स्तोत्र टीका जयपुर मे हस्तलिखित है।
३. सरस्वती स्तुति : सभवनाथ मन्दिर जयपुर मे
४. पूजा विधान हस्तलिखित, उपलब्ध है। अप्रकाशित
५ जिनेन्द्र कल्याणभ्युदय सरस्वती भवन उज्जैन मे हस्तलिखित मौजूद है।
६. गधकुटी पूजा सरस्वती भवन उज्जैन मे हस्तलिखित मौजूद है।
७. विमान शुद्धि विधान भट्टारकीय भण्डार सोनागिरि मे हस्तलिखितहै।
८. कर्मदहन व्रत विधान . दि जैन मन्दिर बन्दहाडपुर
९ स्वपनावली : मूडवद्री मे हस्तलिखित है।
१० सुप्रभात स्तोत्र मूडवद्री मे हस्तलिखित है।
११. चतुर्विशति जिन पूजा मूडवद्री मे हस्तलिखित है।
१२. सिद्धिप्रिय स्तोत्र टीका दीवान जी का मन्दिर, कामा मे हस्तलिखित प्रति मौजूद।
१३. रत्नत्रयव्रत कथा पटोदी मदिर जयपुर मे हस्तलिखित प्रति है।
१४. जिन महाभिषेक बोरसली मन्दिर कोटा मे हस्तलिखित प्रति है।
१५. महावीर पुराण जयपुर में हस्तलिखित प्रति है।
१६. शान्ति पुराण लश्कर दि जैन मंदिर जयपुर मे हस्तलिखित प्रति है।
१७. देवशास्त्र पूजा आमेर मे हस्तलिखित प्रति है।
१८ सोलह कारण पूजा चन्द्रनाथ मन्दिर देवलगॉव मे हस्तलिखित प्रति है।
१९ सरस्वति अष्टक · चन्द्रनाथ मन्दिर देवलगॉव मे हस्तलिखित प्रति है।
२०. पादूका अष्टक : चन्द्रनाथ मन्दिर देवलगॉव मे हस्तलिखित प्रति है।
२१. दशलाक्षणिक जयमाल . चन्द्रनाथ मन्दिर देवलगॉव मे हस्तलिखित प्रति है।
२२ व्रतारोपण . चन्द्रनाथ मन्दिर देवलगॉव मे हस्तलिखित प्रति है।
२३. महर्षि स्तवन . चन्द्रनाथ मन्दिर देवलगॉव मे हस्तलिखित प्रति है।

इनमे पूर्वाकित भारतेश्वराभ्युदय काव्य (स्वोपज्ञटीका, क्रियाकलाप, भूपाल चतुर्विशतिका टीका, प्रमेयरत्नाकर और आराधनासार टीका को मिला दिया जाय तो प. आशाधर के २८ ग्रन्थ अप्रकाशित है।

रचनाकाल- इस प्रकार स्पष्ट है कि प आशाधर ने धारा मे अध्ययन २५ वर्ष की अवस्था समाप्त करने के बाद नालक्षा मे जाकर साहित्य सृजन करना आरम्भ कर दिया होगा। अतः शातिकुमार ठवली का यह कथन यथार्थ है कि आशाधर ने वि.सं १२५० से १३०० तक (अर्धशतक) साहित्य रचना की थी। विद्वानो का मत है कि उनका

मुख्य रचनाकाल वि स १२८५ का है विक्रम की तेरहवी शती का उत्तरार्ध ही उनका रचना काल था। आशाधर के व्यक्तित्व और कर्तव्य के उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्ष निकलता है कि आशाधर ने राजस्थान मेवाड के माडलगढ को अपनी जन्मभूमि मध्यप्रदेश की धारा नगरी को विद्या भूमि और नालछा को अपनी कर्मभूमि बनायी थी। उन्होने अध्यापन, शास्त्रसभा नित्यस्वाध्याय साहित्यसृजन कर के केवल जैनधर्म और समाज को अपना योगदान दिया, बल्कि राष्ट्र का गौरव बढाया था। आशाधर मुनि या योगी नही थे लेकिन वे योगियो के मार्गदर्शक और उनके अध्याणक थे। आचार्य कुन्दकुन्द के समान आशाधर बहुश्रुत विद्वान थे। सस्कृत भाषा पर उनका पूरा अधिकार था, इसीलिए उन्होने सस्कृत भाषा मे ग्रन्थो की रचना की थी। प. कैलाशचन्द्र शास्त्री ने कहा भी है–"सस्कृत भाषा का शब्द भण्डार भी उनके पास अपरिमित है और वे उसका प्रयोग करने मे कुशल है। इसी से इनकी रचना क्लिष्ट हो गयी है। यदि उन्होंने उस पर टीका न रची होती तो उसको समझना सस्कृत के पण्डित के लिए भी कठिन हो जाता।

इनकी कृतियो की सबसे बडी बात दुरभिनिवेश का अभाव है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि पण्डित आशाधर वास्तव मे कलिकालिदास थे। उनहोने धार्मामृत जैसे महाकाव्यो का सृजन किया। इनकी ग्रन्थो की भाषा भी पौढ सस्कृत हैं ये कहना सच है कि यदि उन्होने अपनी ग्रन्थो की रचना न की होती तो उनको समझना कठिन हो जाता। विविध विषयो से सम्बधित १०८ ग्रन्थो की रचना कर उन्होने स्वयं अपने आप को कालिदास सिद्ध किया है।

सन्दर्भ

१ सिद्धान्ताचार्य पं कैलाशचन्द्र शास्त्री धर्मामृत (अनगार) भारतीय ज्ञान पीठ, दिल्ली, सन् १९६६ प्रस्तावना, पृ. ३८

२ द्रस्टव्य–बघेरवाल सन्देश (अखिल भारत वर्षीय दि जैन बघेरवाल सघ, कोटा, राजस्थान) वर्ष २८ अंक ५ मई १९९३ पृ० १४

३ इत्युपश्लोकितो विद्वद्विल्हणेन कवीशिना।
श्री विन्ध्यभूपति महासन्धि विग्रहिकेण य।।
आशाधरत्व मयि विद्धि सिद्ध निसर्ग सौदर्यमजर्यमार्य।
सरस्वती पुत्रतया यदेतदर्थे परं वाच्यमयं प्रपञ्च।।
प. आशाधर सागार धर्म (जैन साहित्य प्रसारक, कार्यालय, हीराबाग, गिरगॉव बम्बई वी नि स २४५४, सन् १९२८ ई०)

४ भव्य कुमुद चन्द्रका टीका, प्रशस्ति श्लोक ६ एवं ६४ प्रज्ञा पुञ्जोसीति च पांमिहितो मदन कीर्तिमति पतिना।
अनगार धर्मामृतम् (माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला १४ वॉ पुष्प स पं वंशीधर शास्त्री हीराबाग बम्बई वी नि सं २४४५, सन्, १९१९) प्रशस्ति श्लोक४।

५ नय विश्व चक्षुराशाधरो विजयता कलिकालिदास ।।
इत्युदससेनमुनिना कवि सुहृदा योभिनन्दित प्रीत्या।
(क) सागार धर्मामृत प्रशस्ति, श्लोक ३ एवं ४
(ख) अनागार धर्मामृत , श्लोक ३ एव ४

६ डा मानमल जैन (सेठिया) मुख्य सम्पादक बघेरवाल सन्देश वर्ष २८ अक ५, मई १९९३, प्रस्तावना, पृ (क)

७ अनागार धर्मामृत, अध्याय ८, श्लोक ६

८ श्री मानास्ति सपादलक्ष विषय शाकभरी भूषणरतत्र
श्री रतिधाम मण्डलकर नामास्ति दुर्ग महत्।
जिनयज्ञ कल्प (जैनग्रन्थ उद्धारक कार्यालय, वि स १९६८ सन् १९१६)

९ श्री रत्यामुदमादि तत्र विमल व्याघ्रेवालान्चयाक्षणतो जिनेन्द्र समय श्रद्धालु आशाधर ।।
सागार धर्मामृत भव्यकुमुदचन्द्रिका टीका, प्रशस्ति, १

१० व्याघ्रेरवाल वरवश सरोज हस काव्यामृतौ घरसपान सुप्रमात्र ।
सल्लक्षणस्य तनयो ।।
अनागार धर्मामृत, भव्यकुमुदचन्द्रिका टीका, प्रशस्ति, ३

११ सरस्वत्या मिवात्मानं सरस्वत्यामजीजनत्।
य पुत्र छाहड गुण्य रञ्जितार्जुन भूपतिम्।।
सागार धर्म, भव्यकुमुद चन्द्रिका टीका, प्रशस्ति

१२ बघेरवाल सन्देश, वर्ष २७ अक ५, मई १९९३ पृ १६

१३ वही, अभीक्षण ज्ञानोपयोगी प आशाधर जी, पृ ५६।

१४ म्लेच्छदेशेन सपादलक्षविषये व्याप्ते सुवृत क्षति
त्रासाद्विन्ध्यनरेन्द्रदो परिमल स्फूर्ज त्रिवर्गौजसि।
प्रापृा मालवमण्डले बहुपरिवार पुरीभावसन्
यो धारामपठज्जिन प्रमिति वाकशास्त्रे महावीरात सा ध टी प्र ५

१५ द्रष्टव्य जैन साहित्य एव इतिहास (हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई १९५६)

१६ श्री मदर्जुन भूपाल राज्ये श्रावक सकुले।
जिन धर्मोदयार्थ यो मलकच्छपुरे वसत्।।
अनागार धर्मामृत, भव्य चन्द्रिका टीका, प्रशस्ति, श्लोक७

१७ *यो द्रग्व्याकरणब्धि पारमनयच्छुश्रूय माणान्नकान्*
सत्तर्की परमास्त्रमाप्य न यत प्रत्यर्थिन के ऽक्षिपन्।
चारू के ऽस्खलित न येन जिन वाग्दीप पथि ग्रहिता
पीत्वा काव्य सुधा यतश्च रसिकेष्वापु प्रतिष्ठान के।।
सागार धर्म, प्रशस्ति ९१ और भी देखे अनगार धर्मामृत टीका प्रशस्ति ९१

१८ द्रष्टव्य प्रशस्ति श्लोक ९ का भाष्य।

१९ प नाथूराम जैन साहित्य एव इतिहास

२० के भट्टारकदेव विनय चन्द्रादरा जिनवाग अर्हतपवचनम मोक्षमार्गे स्वीकारिता प्रशस्ति ९ भाष्य

२१ नलकच्छपुरे श्री मन्नेमि चैत्यालये ऽसिधत्।
विक्रमाब्दशतेष्वेष त्रयोदशसु कार्तिके।।
अनागार धर्मामृत टीका प्रशस्ति श्लोक ३१

२२ डा नेमिचन्द्र शास्त्री तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा अखिल भारतवर्षीय दि जैन विद्वत्परिषद् सागर १६६४ भाग ४, पृ ४३

२३ डा नेमिचन्द्र शास्त्री तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा अखिल भारतवर्षीय दि जैन विद्वत्परिषद् सागर १६६४ भाग ४, पृ ४३

२४ प नाथूराम प्रज्ञापुज आशाधर बघेरवाल सदेश अक २८१५ पृ १६

२५ प नाथूराम प्रज्ञापुज आशाधर बघेरवाल सदेश अक २८१५ पृ १५।

२६ देखे तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग ४, पृ ४४

२७ वीराचार्य सुपूज्यपाद जिसेनाचार्य सभषितो य पूर्व गुणभद्रसूरि वसुनदीन्द्रादिनद्यूर्जित' तेभ्य स्वाहृतसारमध्य रचित स्याऽज्जैन पूजाक्रम।।
बघेरवाल सदेश २५५ मई १६६३, पृ ६

२८ प जगन्मोहन लाल जी शास्त्री श्री प आशाधर जी और उनका सागार धर्मामृत (व्याख्यान वाचस्पति देव की नन्दन जी सिद्धान्त शास्त्री ग्रन्थ, श्री महावीर ज्ञानोपासना समिति कारजा, पृ १८६)

२६ बघेरवाल सदेश, २८/५ ज्योतिर्द आशाधर पृ ५३

३० जैन ग्रन्थ उद्धारक कार्यालय स १६६४ मे हिन्दी टी के साथ प्रकाशित।

३१ (क) स्याद्वाद विद्या विशद प्रसाद प्रेमयरत्नाकरनाम धेय।
तर्क प्रबन्धो निखद्यविद्यापीयूष पूरो वहतिस्म यस्मात्।।
(ख) सिद्धयक भारतेश्वराम्युसत्काव्य निबन्धोज्जवल।
यस्त्रैविद्य कवीन्द्र मोहनमय स्वश्रेयसे ऽरीरचत्।
(ग) योऽर्हद्वाक्यरस निबन्धरूचिर शास्त्र च धर्मामृत
निर्माय न्यऽधान मुमु विदुषामानन्द सान्द्रे हृदि।।

३२ (क) माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई से भव्य कुमुद चन्द्रिका टीका सहित, वि स १६७६ सन् मे, प वशीधर शास्त्री द्वारा सपादित, प्रकाशित।
(ख) ज्ञानदीपिका सस्कृत पञ्जिका हिन्दी अनुवाद सहित मा ज्ञानपीठ नई दिल्ली से वि स २०३४ सन् १६७७ मे स एव अनुवादक सि प कैलाश चन्द्र शास्त्री, प्रकाशित।

३३ आयुर्वेदविदामिष्टज्ञ व्यक्त वाग्भट सहिताम्।
अष्टाउ हृदयोदद्योत निबन्धमसृजच्च य।।
सागारधर्म प्रशस्ति, श्लोक १२

३४ जीवराज ग्रन्थमाला, शोलापुर सन् १६३४ मे प्रकाशित।

३५ योमूलाराधनेष्टोपदेशदिषु निबन्धनम् प्रशस्ति श्लोक १३

३६ व्यघतामर कोशै च क्रिया कलापुमुज्जगौ।। प्रशस्ति श्लोक १३।

३७ आदि आराधनासार प्रशस्ति श्लोक १३।

३८ भूपाल चतुर्विंशतिस्तवनाद्यर्थ। उज्जगौ उत्कृष्ट कृतवान। प्रशस्ति श्लोक १३।

३९ रौद्रटस्य व्यघात् काव्यालडकारस्य निबन्धनम्। प्रशस्ति श्लोक १४।
४० सहस्रनामस्तवन सनिबन्ध च योर्हताम। प्रशस्ति श्लोक १४
४१ योर्हन्महाभिषेकार्चाविधि मोहतमोरविम्।
चक्रे नित्यमहोद द्योत स्नानशोस्त्र जिनेशिनाम्।।
प्रशस्ति श्लोक १६
४२ रत्नत्रय विघानस्य पूजामाहात्म्य वर्णनम्।
रत्नत्रय विघानाख्य शास्त्र वितनुतेस्म य ।।
वही श्लोक १७४२
४३ प कैलशचन्द्र शास्त्री अनागार धर्मामृत प्रस्तावना, पृ ४५
४४ सनिबन्ध यश्च जिनयज्ञ कल्पमरीरचत्।
सागार धर्म, प्रशस्ति १५
४५ जैन साहित्य एव इतिहास
४६ त्रिषष्टि स्मृति शास्त्र यो निबन्धालकृत व्यधात्।
सागार धर्म, प्रशस्ति श्लोक १५
४७ नलकच्छपुरे श्रीमन्नेमि चैत्यालये ऽसिघत्।
ग्रन्थोऽय द्विनवद्वयेक विक्रमार्कसमाप्ययत
त्रिषष्टिस्मृति शास्त्र प्रशस्ति श्लोक १३
४८ सोऽहमाशधरो रम्यामेता टीका व्यरीरचम्।
धर्मामृतोक्त सागार धर्माष्टा ध्याय गोचराम्।।
सागार धर्मामृत टीका प्रशस्ति श्लोक १८
४९ नलकच्छपुरे श्री मन्नेमिचैत्यालये सिधत्।
टीकेय भव्यकुमुद चन्द्रिकेत्युदिता बुधै ।।
षण्णवद्वयेक सख्यान विक्रमाड्कसमात्यये।
सपृम्यामसिते पौषे सिद्धेय नन्दताच्च चिरम्।।
वही श्लोक २०—२१
५० प्रमारवशवार्धीन्दु देवपाल नृपात्मजे।
श्री मज्जैसुगिदेवे ऽसिस्थेम्ना ऽवन्तीमवत्यलम्।।
वही श्लोक १६
५१ श्रीमान् श्रेष्ठि समुद्धरस्य तनय श्री पौरपाटान्वय
व्योमेन्दु सुकृतेन नन्दतु मही चन्द्रो यदभ्यर्थनात्।
चक्रे श्रावकधर्मदीपकमिम ग्रन्थ बुधाशाधरो
ग्रन्थस्यास्य चलेखितो मलभिदे मेनादिम पुस्तक ।।
वही श्लोक २२
५२ राजीमती विप्रलम्भ नाम नेमीश्वरानुगम्।
व्यधत खण्डकाव्य य स्वय कृतनिबन्धनम्।।
अनागार धर्मामृत भव्यकुमुदचन्द्रिका टीका पृ श्लोक १२
५३ आदेशात्पितुरध्यात्म रहस्य नाम यो व्यधात्।
शास्त्र प्रसन्नगम्भीर प्रियमारब्धयोगिनाम्।।
वही श्लोक १३

५४ इत्याशाधर विरचित—धर्मामृतनाम्नि सूक्ति—सग्रहे
योगो द्दीपनयो नामाष्टादशो ऽध्याय ।
अध्यात्मरहस्य, प्रस्तावन, पृ ६

५५ वर्ष २८, अक ५ मई १९९३, कोटा, राजस्थान।

५६ नलकच्छपुरे श्री मन्नेमि चैत्यालये ऽसिधत्।
विक्रमाब्दशतेष्वेषा त्रयोदशसु कार्तिके ।।
अनागार धर्मामृत टीका, श्लोक ३१

५७ प्रमारवशवार्द्योन्दु देवपाल नृपात्मजे।
श्री मज्जैतुगि देवरिस्थाम्ना ऽवन्तीन ऽवत्यलम् ।।
वही ३०

५८ अनुष्टुप छन्द सामास्या प्रमाण द्विशताधिकै
सहस्त्रैद्वादशमिते विज्ञेयमनु मानत वही ३२

५९ सोहमाशाधरोऽ कर्ष टीका मेता मुनि प्रियाम्।
स्वोपज्ञ धर्मामृतोक्तयति धर्म प्रकाशिनीम्।। वही २०

६० खडिल्यान्वयकल्याण माणिभ्य विनयादिमान्।
साधु पापाभिध श्रीमानासीत् पापपराङ मुख ।।
तत्पुत्रो बहुदेवाऽभूदाद्य पितृभरक्षम ।
द्वितीय पम्दसिहश्च पद्मालिगित विग्रह ।।
वही २३—२४

६१ बहुदेवात्मजाश्चासन् हर देव स्फुरदगुण ।
उदयी स्तम्भ देवश्च त्रयस्त्रैवर्गिकादादृता ।।
मन्दबुद्धि प्रबोधार्थ महिचन्देण साधुना।
धर्मामृतस्य सागार धर्म टीकास्ति कारिता।।
तस्यैव यतिधर्मस्य कुशाग्रीयधियामपि।
सुदुर्बोधस्य टीकायै प्रसाद क्रियतामिति।।
हरिदेवेन विज्ञप्तो धणचन्द्रो परोधत ।
पडिताशाधरश्चक्रे टीका क्षोदक्षमामिमाम्।
वही, २५—२८

६२ मुख्य सपादक बघेरवाल सन्देश (अ भा दि जैन बघेरवाल सघ
वर्ष २८ अक ५, मई १९९३) प्रस्तावना पृ ५३।

६३ ज्योतिर्विद आशाधर (बघेरवाल सदेश, २८/५, मई १९९३ पृ ५३

६४ (क) प कैलाशचन्द्र शास्त्री अनागार धर्मामृत, प्रस्तावना, पृ ४२
(ख) प नाथूराम प्रेमी जैनसाहित्य एव इतिहास
(ग) प जुगल किशोर मुख्तार आत्म रहस्य, प्रस्तावना, पृ ३२—३४

६५ अनागार धर्मामृत प्रस्तावना पृ ५२

"हवा को तरसता मानव"

हवा, पानी, प्रकृति की ऐसी अनुपम देन है जिसके बिना कोई प्राणी जीवित नही रह सकता।

आज हमने अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर दोनो को ही विकृत कर दिया। जिस देश मे गगा, जमुना नर्मदा जैसी पवित्र नदियॉ अमृत जल प्रदान करती थी उनको गदगी से भरे सरोवर व गदे नाले की स्थिति मे पहुँचा दिया। जो मद सुगन्धित बयार हमारे फेफडो को जीवन देती थी उसी हवा को प्राण–घातक गैसो से दुर्गन्धित कर दिया। जहॉ वन–उपवनो मे वृक्ष लहलहाते थे, पुष्प प्रफुल्लित होकर हर्षाते थे, पक्षी चहचहाते थे, वहॉ सूखे जगल बनादिए और अभी भी हमारी भोगो की तृष्णा शात नही हुई।

आज से ४८ साल पहले जब पराधीनता से जकडी भारत मॉ अग्रेजी शासन से मुक्त हुई, लोकमान्य तिलक, सरदार पटेल, महात्मा गॉधी जैसी महान् आत्माओ ने देश–हितार्थ स्वदेशी का नारा दिया, विदेशी का बहिष्कार किया। जीवनदायिनी गौ माता की रक्षा, शाति सुख के प्रतीक राम–राज्य की कल्पना दी। समस्त भारत मे चेतना आई, विदेशी सत्ता को भारत से भागना पडा। १५ अगस्त की वह शुभ घडी जब श्री सुभाष चन्द्र बोस का स्वप्न साकार हुआ, श्री जवाहर लाल नेहरू ने भारत की राजधानी देहली के लालकिले से स्वतन्त्रता का जयघोष किया, यूनियन जैक नीचे उतरा, जन–मन की आशाओ का प्रतीक तिरगा आकाश मे लहराया। सोचा था भारत सोने की चिडिया पुन प्रफुल्लित होगा, प्राणीमात्र को प्यार मिलेगा, भोजन मिलेगा, घर मिलेगा, खेत हरे–भरे, खलिहान अनाज से पूर्ण होगे, नदियो मेप्रासुक जल होगा, वृक्षो से सुशोभित गुरूकुलो मे विद्यार्थी विद्याध्ययन कर भावी भारत के कर्णधार होगे।

विश्व मे भारत अद्वितीय देश है जिसमे प्रकृति ने रामस्त प्रकार के अन्न स्वास्थ्यवर्धक फल–फूल मेवे स्वादिष्ट मिर्चमसाले, औषधियॉ, खनिज धातुऐ, सोना चॉदी, रत्न हीरे–जवाहरात सब प्राप्त है। ना कुछ बाहर से मॅगवाने की आवश्यकता ना बाहर भेजने की चिन्ता। महात्मा गॉधी जी ने विदेशी वस्त्रो की होली जलवा दी कहने लगे "ना होगा बॉस ना बजेगी बॉसुरी" विदेशी वस्त्रो की उपस्थिति मे उनसे मोह बना रहेगा, स्वदेशी नही अपनाऐगे जन–जन से चर्खा चलवा दिया, छोटे–बडे की भावना से दूर खद्दर से शरीर सजवा दिया।

नही पता था हमारे स्वप्न इस प्रकार चकना चूर हो जाऐगे। ४५ वर्ष मे तीन पीढी समाप्त हो गई, दर्द बढता गया ज्यो–ज्यो दवा की। उस समय का बालक वृद्ध हो गया नौजवान मृत्यु की गोद मे सो गया, भारतीयता की बजाय घर–घर मे विदेशी

वस्तुऐ पहुँच गई वह भी निरर्थक स्वास्थ्य घातक भोग विलास से भरपूर अभिमान प्रदाता भाईचारे से दूर। हमारी भोजन सामग्री, फल—फूल , सब्जी, मिर्चमसाले व औषधियॉ सब निर्यात हो रहे है बदले मे भोगो की सामग्री आ रही है, हम मँहगाई की मार से मर रहे है, सूखे उपवनो मे सगीत के फव्वारे लगाने की तैयारी है।"अरब—खरब की सपदा, उदय अस्त लौ राज धरम बिना सब विफल है, ज्यो पत्थर भरो जहाज"। भारतवासी भूखे—नगे हो गए बदले मे भोगविलास की सामग्री, विद्यार्थीयो को बरबाद करने वाले टेलिविजन, व चारित्र घातक चित्रपट प्राप्त हुए। नशाबदी के स्थान पर शराब के ठेके सरकारी आय के साधन बन गए। गॉधी जी ने कहा था शराब की आय से मेरे देश के विद्यार्थी पढे तो मै उन्हे अनपढ रखना पसन्द करूँगा शराबी नहीं बनाऊँगा विदेशी मुद्रा की ललक इतनी बढी की चमडे व मॉस का व्यापार भी निर्यात् हेतु प्रारम्भ हो गया। अलकबीर देबनार जैसे यात्रिक कत्लखाने खोले गए जहॉ पशुओ को भूखा—प्यासा, तडफा—तडफा कर मारा जाता है हमारी पूज्य गौ—मा का वश हाहाकार, चीत्कार करता हे और हम, हमारे राष्ट्रनायक विदेशी मुद्रा की ललक मे वातानुकूलित कमरो मे आराम करते है।

"मत सता गरीब को वाकी मोटी हाय
मुए चाम की धौकनी लोह भसम हो जाए"।

कही ऐसा ना हो कि हमे भी इसी प्रकार तडप—तडप कर प्राण देने पड जाऐ। जब प्रभु के सामने उपस्थित होगे क्या उत्तर होगा हमारे पास अपने कुकृत्यो का। प्रकृति का नियम है कि मेहनत करो भोजन पाओ, बिना मेहनत खाओगे तो मधुमेह, हार्टफेल जेसी व्याधियो के शिकार होकर पृथ्वी से सिधारोगे।

आज हर भारतीय परेशान है न भोजन न आवास न प्रेम न भाईचारा। सब अच्छी वस्तुऐ विदेश जा रही है। बरबादी के कारण, भोग—विलास की वस्तुऐं यहॉ आ रही है। परिणाम सामने है न स्वास्थ्यवर्धक भोजन न प्राकृतिक प्राणदाता जल, न जीवनरक्षक शुद्ध वायु प्राप्त है। सब तरफ चीत्कार, हाहाकार, आतकवाद भुखमरी एक दूसरे से ईर्ष्या, ऊँच—नीच की दीवारे आपस की फूट व कलह।

प्रभु हमे सन्मति दे हम भारत का गौरव प्रकृति की अनुपम देन को पहचाने बिना भेदभाव के, बिना जाति—पांति के झगडो से समस्त बन्धु भारत मॉ की गोद मे प्रकृति की अनुपम देन का लाभ ले। विद्यार्थीयो को सुसस्कृत विद्यादान मिले, भूखो को आहार प्राप्त हो, रोगियो की औषधियो से सेवा हो, हम अपने खर्चों को सीमित कर भगवान् महावीर के परिग्रह—परिमाण व्रत का आचरण करे। मधुमक्खियो की तरह सग्रह की प्रवृति अपनाकर विपदाऐ मोल न ले।

—प्रेमचन्द जैन
भगवान महावीर अहिंसा केन्द्र
अहिसा स्थल महरौली नई दिल्ली

जरा-सोचिए

पुनर्जागरण :

हमने पहिले लिखा था—हमारा अतरग कह रहा है कि स्वर्गो मे बैठे हमारे दिवंगत दिगम्बराचार्य उनकी व्याकरणातीत जनभाषा मे किए गए परिवर्तनो को बडे ध्यानपूर्वक देख रहे है और उन्हे सन्तोष है कि कोई उनकी ध्वनि—प्रतिकृतियो के सही रूप को बडी निष्ठा और लगन से निहार, उनकी सुरक्षा मे प्राण—पण से सलग्न है। भला, यह भी कहाँ तक उचित है कि शब्द—रूपो की बदल मे दिगम्बर—आगम—वचन तो गणधर और आचार्यो द्वारा परम्परित वाणी कहलाए जाते रहे और बदलाव—रहित दिगम्बरेतर आगमो के तद्रूप—वचन बाद के उद्‌भूत कहलाएँ? हमे भाषा की दृष्टि से इस बिन्दु को भी आगे लाकर विचारना होगा। भविष्य मे ऐसा न हो कि कभी दिगम्बर समाज को इस बदलाव का खमियाजा किसी बडी हानि के रूप मे भुगतना पड जाय? ऐसा खमियाजा क्या हो सकता है, यह श्रद्धालुओ को विचारना है—वैज्ञानिक पद्धति के हामी कुछ प्राकृतज्ञ तो सही बात कहकर भी किन्ही मजबूरियो मे विवश जैसे दिखते है। और वे आर्ष—भाषा से उत्पन्न उस व्याकरण के आधार पर विद्वान बने है, जो बहुत बाद का है। और शौरसेनी आदि जैसे नामकरण आदि भी बहुत बाद (व्याकरण निर्माण के समय) की उपज है। क्योकि जन—भाषा तो सदा ही सर्वांगीण रही है। जो प्राकृत मे डिगरीधारी नही है। और प्राकृत—भाषा के आगमो का चिरकाल से मन्थन करते रहे है—उन्हे भी इसे सोचना चाहिए—हमे अपनी कोई जिद नही। जैसा समझे लिख दिया—विचार देने का हमे अधिकार है। और आगम रक्षा धर्म भी। हमारी समझ से बदलाव के लिए जो व्यय अभी होगा, वह अत्यल्प होगा—उसका पूरा मूल्य तो भाषा—दृष्टि से आगम के अप्रमाणिक सिद्ध होने पर ही चुकता हो सकेगा।

और अब—

पाठको ने देखा—**कुंदकुंद साहित्य की वर्तमान भाषा को अत्यन्त भ्रष्ट और अशुद्ध घोषित करने वाले अपनी** उक्त गलत घोषणा को सही सिद्ध करने के लिए कैसी उठापटक मे लगे है—वे समाज का प्रभूत द्रव्य व्यय करा आधुनिक विद्वानो को इकट्ठा कर उनसे पक्ष मे हॉ कराने के प्रयत्न मे लगे है और इस अर्थयुग मे, जिन्हे प्राकृत का बोध भी नही ऐसे कतिपय कथित विद्वान भी बहती गगा मे हाथ धोने मे लगे है।

जो भी हो, हम अपनी बात पर दृढ है—हमारे आगमो की परम्परित मूल भाषा जैन शौरसेनी है और भाषा की अनेक रूपता के कारण, सभी प्राकृत—आगमो के सभी मूलशब्द सभी जगह प्रामाणिक है और भाषा मे एक रूपता नहीं है। यदि मूलभाषा बदली जाती है तो आगमो की प्रमाणिकता सदेह मे आने से दिगम्बरत्व की प्राचीनता भी सदेह के घेरे मे आने से अछूती नही बचेगी। क्योकि आगम की प्रामाणिकता से ही दिगम्बरत्व की प्रामाणिकता एव प्राचीनता सिद्ध है—जब मूल आगम ही अशुद्ध और बदलता रहा हो, तब दिगम्बरत्व और उसकी प्राचीनता ही कहाँ? स्मरण रहे—धर्म—पथ आगमाश्रित होता है। आगम बदला नही जाता। उदाहरणार्थ वेद हमारे समक्ष है—जिनमे किसी ने बदल का प्रयत्न नही किया और पाणिनीय को तदनुसार स्वर वैदिकी प्रक्रिया की अलग से रचना करनी पडी। **हमे संदेह है कि शिखर जी के झगडे की भांति इसी प्रसंग में आगम की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता का एक नया बखेड़ा और ना उठ खडा हो।** शौरसेनी मात्र को प्रश्रय देने से और भी बहुत से कटु—प्रसग उठ सकते है?

—सम्पादक

●●

Regd. with the Ragistrar of Newspaper at R. No. 10591/62

'अनेकान्त'

आजीवन सदस्यता शुल्क . १०१०० रू०

वार्षिक मूल्य ६ रू०, इस अक का मूल्य १ रुपया ५० पैसे

यह अक स्वाध्याय शालाओ एव मदिरो की माग पर नि.शुल्क

विद्वान लेखक अपने विचारों के लिए स्वतन्त्र होते है। यह आवश्यक नही कि सम्पादक–मण्डल लेखक के विचारो से सहमत हो। पत्र मे विज्ञापन एव समाचार प्राय. नही लिए जाते।

सपादन परामर्शदाता श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, सपादक श्री पद्मचन्द्र शास्त्री

प्रकाशक . श्री भारतभूषण जैन एडवोकेट, वीर सेवा मंदिर, नई दिल्ली–२

मुद्रक मास्टर प्रिटर्स नवीन शाहदरा, दिल्ली–३२

वीर सेवा मन्दिरका त्रैमासिक

(पत्र-प्रवर्तक : आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर')

वर्ष ४७ : कि० २ — अप्रैल-जून १९९४

इस अंक में—

प्रकाशक :

वीर सेवा मन्दिर, २१ दरियागंज, नई दिल्ली-२

छपते-छपते

पं० बलभद्र जी की सम्पादन शैली : आचार्यश्री के उद्‌गार

अप्रेल-जून ९४ का 'प्राकृत-विद्या' अङ्क अभी मिला। पू० आ० श्री विद्यानन्द जी महाराज का चिन्तन पढ़ा। उन्होंने पं० बलभद्र जी की संपादन-विधि के विषय में स्पष्ट किया कि—

'उन्होंने (संपादक जी ने) अनेक ताड़पत्रीय, हस्तलिखित और मुद्रित प्रतियों का तुलनात्मक अध्ययन करके अपने संपादन के कुछ सूत्र निर्धारित किए और उन सूत्रों के अनुसार प्रचलित परम्परा की लीक से कुछ हटकर छात्रोपयोगी संपादन किया।'

स्मरण रहे कि वीर सेवा मन्दिर प्रचलित परम्परा की लीक से न हटने की बात कर पाठान्तर देने की बात करता रहा है और मूल आगमों में गृहीत सभी शब्दरूपों को प्रामाणिक मानता रहा है। (देखें अनेकान्त विशेषांक मार्च ९४)। जब कि बलभद्र जी ने अपने संपादन में परंपरित लीक से हटकर बहुत से शब्दरूपों को आगम-भाषा से बाह्य घोषित कर उन्हें बदलकर एकरूपता दे दी और ताडपत्रीय प्रति को आदर्श प्रति होने की बात करते रहे।

वीर सेवा मन्दिर के दृष्टिकोण के समर्थन की दिशा में उक्त तथ्य उजागर करने के लिए आचार्य श्री की प्रामाणिकता श्रद्धास्पद एवं हृदयांकित रहेगी।

प्राकृत (आर्ष) में व्याकरण के प्रयुक्त होने की सिद्धि में मुनि श्री द्वारा 'वागरण' शब्द एवं प्रस्तुत अन्य प्रमाण चिन्तनीय हैं। इनके विषय में (यदि आवश्यक हुआ तो) किसी अन्य अङ्क में निवेदन किया जायगा। मुनिश्री को सादर नमोऽस्तु।

परमागमस्य बीजं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम् ।
सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् ।।

वर्ष ४७ किरण २ | वीर-सेवा मन्दिर, २१ दरियागंज, नई दिल्ली-२ | वीर-निर्वाण संवत् २५२०, वि० सं० २०५१ | अप्रैल-जून १९९४

सम्बोधन

कहा परदेसी को पतियारो ।
मन मानै तब चलै पंथ कों, साँझि गिनै न सकारो ।
सबै कुटुम्ब छाँड़ि इतही, पुनि त्यागि चलै तन प्यारो ।।१।।
दूर दिसावर चलत आपही, कोउ न राखन हारो ।
कोऊ प्रीति करो किन कोटिक, अन्त होयगो न्यारो ।।२।।
धन सौं रुचि धरम सौं भूलत, झूलत मोह मझारो ।
इहि विधि काल अनंत गमायो, पायो नहिं भव पारो ।।३।।
साँचे सुख सौं विमुख होत है, भ्रम मदिरा मतवारो ।
चेतहु चेत सुनहु रे 'भैया', आप ही आप संभारो ।।४।।
कहा परदेसी को पतियारो ।।

गरब नहिं कीजे रे ए नर निपट गँवार ।
झूंठी काया झूंठी माया, छाया ज्यों लखि लीजे रे ।
कै छिन साँझ सुहागरु जोबन, कै दिन जग में जीजे रे ।।
बेगहि चेत बिलम्ब तजो नर, बंध बढ़ै थिति कीजे रे ।
'भूधर' पल-पल हो है भारी, ज्यों-ज्यों कमरी भीजे रे ।।

श्री पार्श्वनाथाय नमः

सम्मेद शिखर जी (पारसनाथ पर्वत)

के सम्बन्ध में

बेबाक खुलासा

भ्रम निवारण :

सासदों, विधायकों एव गणमान्य नागरिको को सम्बोधित दिनांक ५ मई, ६४ के अपने पत्र मे श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समुदाय के श्री राजकुमार जैन ने बिहार के गिरीडीह जिले मे स्थित श्री सम्मेद शिखर जी (पारसनाथ पर्वत) से सम्बन्धित तथ्यों को गलत तरीके से तोड-मरोड़ कर प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त उलझन पूर्ण स्थिति पैदा कर दी है और इस प्रकार देश तथा समाज को गुमराह करने का प्रयत्न किया है। इसलिए पाठकों को वस्तुस्थिति से अवगत कराना आवश्यक हो गया है, ताकि किसी भी प्रकार के भ्रम की गुंजाइश न रहे।

तीर्थ सभी जैनों का :

श्री राजकुमार जैन ने अपने पत्र के प्रारम्भ मे स्वीकार किया है कि बिहार राज्य के गिरीडीह जिले मे स्थित श्री सम्मेद शिखर जिसे 'पारसनाथ पर्वत' के नाम से भी जाना जाता है और जहां चौबीस मे से बीस तीर्थंकरों ने निर्वाण प्राप्त किया है, जैनियों का पवित्रतम् तीर्थ है। उनके इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह तीर्थ जैनो के सभी समुदायो का समान रूप से वन्दनीय तीर्थ है चाहे वह दिगम्बर हो या स्थानकवासी अथवा तेरहपंथी या मूर्तिपूजक श्वेताम्बर। ऐसी स्थिति मे प्रश्न उठता है कि इसका प्रबन्ध केवल मूर्तिपूजक श्वेताम्बरों के हाथ मे ही क्यो हो ?

जाली सनद :

श्री राजकुमार जैन का यदि यह कथन सत्य है कि इस तीर्थ पर सदियो से श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज का स्वामित्व, अधिकार व प्रबन्ध रहा है, तब उन्हें सम्राट अकबर व अहमदशाह से सनद प्राप्त करने की आवश्यकता क्यों पड़ी ? वास्तविकता यह है कि उक्त सनद जाली थी जिसे 'प्रिवी काउंसिल' जैसे न्यायालय ने भी अमान्य करार दिया है। (वाद क्र. २८८/४ वर्ष १९१२ ए. आई. आर. १९३३ प्रिवी काउसिल-१९३)।

टोंक और चरण अति प्राचीन :

श्री सम्मेद शिखर पर बीस टोंकें तीर्थंकरो की व एक टोंक गौतम गणधर की अत्यन्त प्राचीन है (टोंक अर्थात् छोटा मंदिर)। टोंको में चरण चिह्न दिगम्बर आम्नाय के अनुसार प्रतिष्ठित है। इन टोंको को इसी रूप मे सभी जैनियों द्वारा पूजा जाता रहा है, इसलिए पूजा का अधिकार समान रूप से सभी जैनो का है (ए. आई. आर. १९२६ प्रिवी काउसिल-९३)।

चढ़ावे पर एकाधिकार की व्यापारिक दृष्टि :

वस्तुस्थिति यह है कि १७९० मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भूव्यवस्था मे यह पर्वत पालगंज की जमीदारी में शामिल कर दिया था, जिसके अनुसार पालगंज के राजा को पर्वत के मंदिरों का चढ़ावा भी मिलता था (ए. आई. आर. १९२६ प्रिवी काउंसिल-९३)। सन् १८७२ में मूर्तिपूजक श्वेताम्बर समाज के ट्रस्ट ने राजा से ५०० रुपया वार्षिक देकर पर्वत के चढ़ावे का अधिकार प्राप्त कर लिया। यह कदम उनके ट्रस्ट के व्यवसायिक दृष्टिकोण को उजागर करता है। १५०० रुपये के एवज लाखों का चढ़ावा प्राप्त करना व्यवसायिक नही तो और क्या है।

सीढ़ियों के निर्माण में बाधा :

दिगम्बर जैन समाज ने सन् १८९८ में यात्रियों की सुविधा के लिए पहाड़ के रास्ते मे ७०५ सीढ़ियों का

निर्माण राजा पालगंज की सहमति से किया था, जिसमें २०५ सीढ़ियां श्वेताम्बर मूर्तिपूजकों द्वारा तोड़ दी गयीं; शेष ५०० सीढ़ियां वहां आज भी मौजूद हैं। इस पर दिगम्बरों ने मुकदमा चलाया। (वाद नं. १ सन् १९०० ई०) विद्वान सब जज हजारीबाग ने अपना निर्णय ९-९-१९०१ को इस प्रकार दिया —

"यह पहाड़ राजा पालगंज के स्वामित्व का है और इस पर जैनों के दोनों सम्प्रदायो का समान रूप से पूजने का हक है तथा पहाड़ की सभी टोंके दोनों सम्प्रदायों द्वारा पूजी जाती हैं। दोनो सम्प्रदायो को मार्ग के उपयोग और उसकी मरम्मत का समान अधिकार है। दिगम्बरों द्वारा निर्मित सीढ़ियों को तोडने का कार्य अपकृत्य था। श्वेताम्बरो को आज्ञा दी जाती है कि वे भविष्य मे इस तरह का कृत्य फिर न करें।"

उक्त फैसले के विरुद्ध मूर्तिपूजक श्वेताम्बरो ने जो अपील की वह खारिज हो गयी।

पर्वत की खरीद : एक सामन्तवादी कदम :

८-३-१९१८ का मूर्तिपूजक श्वेम्ताबर समाज ने ट्रस्ट के नाम से भारी रकम अदा करके जमीदारी हक पालगंज के राजा से क्रय कर लिया। **श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज का यह कदम सामन्तवादी था। यदि वे सदियों से तीर्थ के स्वामी थे और सम्राट अकबर आदि से प्राप्त सनद इनके पास थी, तब पालगंज के राजा को भारी रकम देकर इसे खरीदने की आवश्यकता क्यों पड़ी ?**

जमींदारी उन्मूलन :

जमीदारी उन्मूलन अधिनियम के अन्तर्गत १९५३ में यह पहाड़ बिहार सरकार की मिल्कियत मे आ गया। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज ने उसे चुनौती देते हुए मामला सुप्रीम कोर्ट मे प्रस्तुत किया (वाद नं० १० वर्ष १९६७ एव वाद २३ वर्ष १९६८)। उच्चतम न्यायालय ने उनका यह दावा रद्द कर दिया।

ट्रस्ट कितना लोकतांत्रिक :

श्री राजकुमार जैन का यह कथन कि कल्याणजी आनन्दजी (मूर्तिपूजक श्वेताम्बर) ट्रस्ट लोकतांत्रिक है, सर्वथा भ्रामक है। समस्त जैन समाज के प्राण और श्रमण संस्कृति की धरोहर श्री सम्मेद शिखर जी पर्वत की व्यवस्था मनमाने ढंग से केवल एकाधिकार में संचालित हो, इससे अधिक अलोकतांत्रिक कदम और क्या हो सकता है ? व्यवस्था के नाम पर ट्रस्ट का कार्य शून्य है। पहाड की अव्यवस्था को भुक्तभोगी यात्री ही जानते है। आखिर पर्वत की आय की जनहित में व्यय करने की बजाय किसी एक तिजोरी मे समेट कर रख लेना कहां तक उचित है ?

बिहार सरकार पर प्रभाव :

श्री राजकुमार जैन द्वारा साहू अशोक जैन व उनके सहयोगियों पर यह आरोप लगाना नितांत दुर्भावना पूर्ण, बेहूदा और बचकाना है कि उन्होंने अपने प्रभाव से बिहार के मुख्यमंत्री श्री लालूप्रसाद यादव से यह अध्यादेश जारी कराया है। कोई भी सरकार आनन फानन में अथवा किसी व्यक्ति विशेष के प्रभाव मे आकर अध्यादेश जारी नहीं करती। वास्तविकता यह है कि श्री लालूप्रसाद जी ने स्वय शिखर जी जाकर तीर्थ की कुव्यवस्था का निरीक्षण किया और द्रवित होकर निरीक्षण के समय अपने उद्गार प्रकट किए। उन्होंने दिगम्बरो और श्वेताम्बरो दोनो की अलग-अलग बैठकें की और स्पष्ट किया कि या तो जैन समाज मिलकर पर्वत की व्यवस्था करे, अन्यथा सरकार पर्वत के प्रबन्ध की दुर्दशा सहन नही करेगी। श्वेताम्बरो ने मुख्यमंत्री के सुझाव की उपेक्षा की। फलस्वरूप सरकार ने अध्यादेश जारी किया।

सरकार का लोकतांत्रिक कदम :

बिहार सरकार का अध्यादेश पूर्ण रूप से लोकतान्त्रिक है। अध्यादेश के अनुसार जैन समाज के सभी घटकों को श्री सम्मेद शिखर पर्वत की व्यवस्था मे समान भागीदारी प्रदान ही नहीं की गयी है; बल्कि सरकार द्वारा अपने मालिकाना हक भी जैन समाज को दिये गये हैं। **यदि अध्यादेश में श्वेताम्बर समाज को समान हक न दिया गया होता, तब वह इसे अलोकतांत्रिक कह सकते थे।**

दुष्प्रचार का आधार :

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक 'सेठ कल्याणजी आनन्दजी ट्रस्ट' इस भ्रामक दुष्प्रचार में लगा है कि बिहार सरकार ने

इस अध्यादेश से जैनियो से पहाड छीन लिया है और भविष्य में बिहार सरकार पहाड़ की मालिक होगी, जबकि वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। सरकार ने अध्यादेश के अनुसार पहाड की व्यवस्था और मालिकाना हक समस्त जैन समाज को सौप दिया है। समस्त जैन समाज इस अध्यादेश के प्रति बिहार सरकार का ऋणी रहेगा। इस अध्यादेश से पर्वत के विकास का मार्ग प्रशस्त हो गया है।

सामन्तवादी व्यवस्था का अन्त होगा :

बिहार सरकार का यह लोकतान्त्रिक अध्यादेश 'मूर्तिपूजक श्वेताम्बर ट्रस्ट-समाज' की सामन्तवादी व्यवस्था पर अवश्य ही कुठाराघात है। आज समूचे देश में लोकतांत्रिक प्रणाली है, इसलिए सामन्तवादी व्यवस्था आज के युग में जीवित नही रह सकती। समाज को उसका प्रजातांत्रिक हक देना ही होगा। ६ मई १९९४ को शिखरजी मुक्ति अभियान मे जो रैली दिल्ली मे आयोजित हुई थी, उसमे मूर्तिपूजक श्वेताम्बरो के अतिरिक्त देश का समस्त जैन समाज सम्मिलित हुआ। लाखों महिलाओं, बच्चो, युवको और वृद्धो ने तेज धूप की परवाह न करते हुए, साहू अशोक जैन के नेतृत्व मे अहिंसा सिद्धान के अनुरूप मौन जलूस निकाल कर बिहार सरकार के अध्यादेश द्वारा उठाये गये लोकतांत्रिक कदम का समर्थन किया। इतिहास साक्षी है कि पाण्डवों को सूई बराबर हक न देने के कारण महाभारत हुआ था। मूर्तिपूजक श्वेताम्बर समाज अथवा ट्रस्ट के अधिकारी इस प्रसंग से अवश्य ही सीख लेंगे, हम ऐसी आशा करते है।

जैन संख्या का अनुपात :

पत्र के प्रेषक श्री राजकुमार जैन ने साधुओ की संख्या यात्रियो की संख्या मे मिलाकर साहू श्री अशोक जैन द्वारा उठाये गये अपने मुद्दे 'श्री सम्मेद शिखर जी की यात्रा करने वाले तीर्थयात्रियो में ८५ प्रतिशत दिगंबर जैन होते हैं" को गौण करने का असफल प्रयास किया है। वास्तविकता यह है कि श्री सम्मेद शिखर जी जैन समाज का पूज्य तीर्थ है और इसी श्रद्धावश जैन तीर्थयात्री रात एक बजे स्नान आदि से निवृत्त होकर, शुद्ध वस्त्र धारण कर वन्दना के लिए नंगे पांव जाते हैं और पहाड़ पर सभी मंदिरो के दर्शनो के पश्चात् ही वापस आकर जल-पान ग्रहण करते हैं। २७ किलोमीटर की यह यात्रा दोपहर तीन-चार बजे तक समाप्त होती है। इसके विपरीत श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जूते पहनकर खाते-पीते हुए जल-मन्दिर तक जाकर वापस आ जाते हैं। वे कभी भी सभी मन्दिरों, टोंकों की वन्दना नहीं करते। तीर्थयात्रियो मे केवल १० प्रतिशत मूर्तिपूजक श्वेताम्बरी तथा ९० प्रतिशत अन्य जैन यात्री होते हैं। अधिक संख्या दिगम्बरों की ही होती है।

सामन्तवादियों द्वारा शोषण :

यह अकल्पनीय है कि रात के समय अंधेरे में लालटेन के सहारे कंकरीले मार्ग पर यात्रियों को किन-किन असुविधाओं का सामना करना पड़ता है? पहाड पर बिजली नहीं है। वर्षा मे कही सिर छिपाने का स्थान नही है। तिस पर असामाजिक तत्वो द्वारा लूटपाट भी की जाती है। ऐसी कोई भी दुर्घटना हो जाए तो उसकी सूचना तलहटी तक पहुचाने का कोई साधन नहीं है। पहाड पर पीने के जल की कोई व्यवस्था नही है। मल-मूत्र त्यागने का कोई प्रसाधन-कक्ष नही है। यह सब इन तथाकथित प्रबन्धकर्ता सामन्तवादियो की व्यवस्था के प्रति अमानवीय उपेक्षा नही तो और क्या है?

साधुओं का अनुपात :

तथ्यों से ध्यान हटाने के लिए उपरोक्त पत्र में साधुओं की गिनती में ६५२६ श्वेताम्बर मूर्तिपूजक और ४७५ दिगम्बर साधु दर्शाये हैं। पत्र में तथ्यों को जानबूझकर छिपाया गया है। दिगम्बर आम्नाय में साधुओं की कई श्रेणियां हैं, जैसे नग्न मुनि, ऐल्लक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी आदि। ये श्रेणियां उनके परिग्रह परिमाण (वस्त्र आदि की सीमा) के अनुरूप हैं। मुनि नग्न रूप हैं, ऐल्लक एक लगोटी रखते है और क्षुल्लक एक लंगोटी व चादर और ब्रह्मचारी कुछ और अधिक सामग्री रख सकते हैं। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक साधु (जिनके प्रति हमारे मन मे पूर्ण आदर है) दिगम्बर आम्नाय के ब्रह्मचारी की तरह ही वस्त्र धारण करते है। इस प्रकार के त्यागियों की संख्या दिगम्बरों में कई हजारों मे है जो श्वेताम्बर मूर्ति-

पूजक साधुओं से नि.संदेह कई गुनी है। हां, सभी प्रकार के परिग्रह त्यागी नग्न दिगम्बर मुनि ४७५ हैं। कठिन तपस्या का तो गिने-चुने लोग ही पालन कर सकते हैं। वैसे यहां यह बताना आवश्यक है कि जिस बिहार प्रदेश मे यह तीर्थ है, वहां श्वेताम्बर मूर्तिपूजकों की संख्या वहां के समूचे जैन समाज की संख्या के मुकाबले एक प्रतिशत भी नहीं है। अतः यह आश्चर्य की बात है कि बिहार से बाहर अहमदाबाद के कुछ सेठ-सामन्तों ने इस क्षेत्र पर कब्जा कर रखा है।

विकास के नाम पर :

इनका यह आरोप भी निराधार है कि कल्याणजी आनन्दजी ट्रस्ट को साहू अशोक जैन 'स्टे आर्डर' लेकर विकास कार्य से रोकते रहे हैं। वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। सारा चढ़ावा यह ट्रस्ट लेता है जबकि इस ट्रस्ट ने आज तक कोई विकास कार्य पहाड़ पर नही किया इसके विपरीत सम्मेदाचल विकास समिति द्वारा किये जा रहे विकास कार्य को जबरन रोका और अदालत से स्टे आर्डर लिए हैं। पर्वत पर बिजली नही लगने दी। पेयजल योजना का तीव्र विरोध कर उसे रुकवा दिया।

प्राचीन चरण बदलने का दुष्कृत्य :

पहाड़ पर बीस मंदिरो (टोंकों) मे पुरातन श्रमण परम्परा के अनुरूप तीर्थंकरों के चरणचिन्ह दिगम्बर आम्नाय के अनुसार स्थापित हैं, जिन्हें जैन समाज सदियो से पूजता रहा है। इस ट्रस्ट ने विकास के नाम पर चार टोंको पर जब पुराने चरण उखाड़ कर नये स्थापित कर दिये और आगे भी विकास के नाम पर अन्य टोंकों के चरण बदलने जा रहे थे, तब दिगम्बर समाज ने मुकदमा करके इस कुकृत्य को रोका था। 'प्रिवी काउंसिल' ने सब जज रांची के आदेश को बरकरार रखा, जिसमें जज महोदय ने बदले गये चरणों के स्थान पर पुनः पुराने चरण स्थापित करने के आदेश दिए थे। पूरे कार्यकाल में विकास कार्य के नाम पर यही उलटफेर श्वेताम्बर मूर्ति-पूजकों के ट्रस्ट ने अंजाम दिया है।

आय कहां जाती है ?

जमीदारी उन्मूलन नियम के अनुसार १९५३ मे बिहार सरकार इस पहाड़ की स्वामी हो गयी। चूंकि इस ट्रस्ट का अनधिकृत कब्जा था, अतः ट्रस्ट ने मुकदमा हारने के बाद भी बड़ी चालाकी से अन्य जैनो को अंधेरे मे रखकर १९६५-६६ मे सरकार से अनुबंध कर लिया कि यह ट्रस्ट सरकार से ६० प्रतिशत पहाड़ की आय लेगा। इससे ट्रस्ट को करोडों रुपये की आय हुई। किन्तु पहाड़ के विकास के नाम पर एक पैसा भी खर्च नही किया गया। अतः यह सार्वजनिक धन पर्वत के विकास पर न लगकर व्यक्तिगत तिजोरियों में जाता रहा है।

जैन समाज जाग चुका है :

उपरोक्त तथ्यो से यह स्पष्ट है कि समस्त जैन समाज की इस परम पावन धरोहर श्री सम्मेदशिखर जी पर श्वेताम्बर मूर्तिपूजकों का कब्जा अलोकतांत्रिक है। अब समस्त जैन समाज जाग चुका है, जिसका प्रमाण दिल्ली रैली है। अतः सामन्तवादियो के मनसूबों को अब और सहन नही किया जा सकेगा। बिहार सरकार का अध्यादेश लोकतांत्रिक, वैधानिक और न्याय पर आधारित है। इस अध्यादेश के लागू होने पर समस्त जैन समाज को इस पवित्र तीर्थ के विकास, संचालन एवं व्यवस्था मे समान रूप से भागीदारी के अलावा मालिकाना हक भी प्राप्त होंगे। इससे अल्पसंख्यक जैन समाज में एकता बढ़ेगी और यात्रियो को सुविधाएं मिलेंगी।

गांधी जी का स्वप्न साकार होगा :

सम्मेदशिखर पर्वत के विकास के साथ-साथ इस आदिवासी बहुल अंचल का भी विकास होगा। वहाँ रह रहे पिछड़ी जाति के नागरिकों को विशेषकर भील जाति के लोगों को रोजगार के अधिक अवसर चिकित्सा-सुविधाएं तथा शिक्षा के साधन प्राप्त होंगे। यह सर्वविदित है कि सदियों से इस अंचल के नागरिकों का शोषण होता रहा है और कल्याण कार्यों की दृष्टि से आज भी इसकी उपेक्षा हो रही है। यदि यहां वास्तविक कल्याण-कार्य किये जा सके तो आजाद भारत में निर्बलों के उद्धार का महात्मा गांधी का स्वप्न सचमुच साकार हो सकेगा।

हमारी अपील :

हमे पूर्ण आशा और विश्वास है कि श्री सम्मेदशिखर जी पर्वत की मुक्ति के लिए भारत सरकार, सम्बन्धित मंत्रीगण, सांसद, विधायक, अधिकारी, गणमान्य नागरिक

(शेष पृ० ६ पर)

उत्थू(च्छ)णक के ऋषभ जिनालय के निर्माता
"श्री भूषण साहु"

ले० कुन्दनलाल जैन रिटायर्ड प्रिन्सिपल

उत्थूणक नगर संवत् ११६६ के आसपास राजस्थान का एक विख्यात व्यापारिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र था, जो तलपाटक जनपद के नाम से विख्यात था। उत्थूणक बागड़ देशीय परमारों की प्रसिद्ध राजधानी केन्द्र था। परमार शासकों की कई शाखाएं भारतीय इतिहास में विख्यात हैं जैसे मालवा के परमार, लाट के परमार, आबू के परमार, बागड के परमार, चन्द्रावती के परमार, किराडू के परमार, अर्बुद के परमार आदि आदि।

उत्थूण शब्द काल परिवर्तन के कारण उत्थूणक हुआ, फिर अत्थूण बना आगे अत्थूण से अर्थूणक हुआ और अब अर्थूणा के नाम से प्रसिद्ध है। आजकल यह राजस्थान के बांसवाडा शहर से पश्चिम की ओर लगभग ४०-४५ कि मी० दूर एक छोटा-सा ग्राम है, पास ही डूंगरपुर शहर भी है। बांसवाड़ा के पूर्वोत्तर में प्रतापगढ़ नगर भी है। अनुमान है प्राचीन काल में यह सम्पूर्ण क्षेत्र तलपाटक पत्तन के नाम से विख्यात था। आजकल इसकी सीमा मध्यप्रदेश के मंदसौर जिले की सीमाओं से मिली जुली है।

प्रतापगढ आज भी हूम्बड़ जैनों का प्रमुख केन्द्र है, पूर्वकाल में यह सम्पूर्ण क्षेत्र तलपाटक पत्तन के नाम से विख्यात जैन धर्मावलम्बियों का प्रमुख धार्मिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र रहा होगा। अर्थूणा ग्राम से दो विस्तृत जैन शिलालेख प्राप्त हुए हैं जिनमें से पहला सं० ११५९ का है जो बिल्कुल ही जीर्ण शीर्ण दशा में है, इसमें केवल उत्थूणक के शासक विजयराज परमार के पिता श्री चामुण्डराज के बारे में थोड़ी-सी सामग्री प्राप्त होती है, पर दूसरा शिलालेख जो संवत् ११६६ का है बिल्कुल साफ और स्पष्ट है। इस शिलालेख से यहां के राजश्रेष्ठी श्री भूषण साहु द्वारा निर्मित ऋषभ जिनालय का तथा श्री भूषण साहु के पारिवारिक जनों का भी विस्तृत परिचय मिलता है साथ ही माथुरान्वयी आचार्य छत्रसेन का भी उल्लेख मिलता है जो शोध की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अब तक माथुरान्वय से सम्बंधित किसी छत्रसेन आचार्य का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है।

यह संवत् ११६६ का शिलालेख संस्कृत भाषा में उत्कीर्णित है, इसके श्लोकों की संख्या कुल तीस है। इन श्लोकों की भाषा उच्च कोटि की अलंकारिक है तथा सुपुष्ट संस्कृतमय है। यह शिलालेख अर्थूणा के जैन मंदिर के ध्वंसावशेषों से प्राप्त हुआ है और अब यह अजमेर के म्यूजियम में सुरक्षित है। इस शिलालेख को विज्ञानिक सूमाक नामक शिल्पी ने उकेरा था। इस शिलालेख के पहले तथा चौथे से बीसवें छंदों तक की रचना कटु नामक विद्वान् ने की थी बाकी छंदों की रचना माइल्ल वंशी साबड़ ब्राह्मण के पुत्र श्री भादुक विप्र ने की थी। इन

(पृ० ५ का शेषांश)

तथा भारत की जनता हमें न्याय दिलायेगी। सभी न्यायशील बुद्धिजीवी मूर्तिपूजक श्वेताम्बर समाज अथवा उनके ट्रस्ट द्वारा किये जा रहे दुष्प्रचार में न आकर वास्तविकता को समझेंगे और बिहार सरकार के लोकतांत्रिक अध्यादेश को पारित करायेंगे। हमारी श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज व उनके ट्रस्ट से भी यह अपेक्षा है कि वह भगवान महावीर के सिद्धांत अहिंसा, अपरिग्रह व 'जीओ और जीने दो' के अनुरूप, सामन्तवादी दृष्टिकोण के बजाय समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाकर, जैन समाज की एकता में योगदान देकर अपने विशाल हृदय का परिचय देंगे।

सुभाष जैन, संयोजक
श्रमण संस्कृति रक्षा समिति

शिला लेख की रजिस्ट्री बाह्मण वंशी राजपाल कायस्थ के पुत्र सन्धिविग्रहिक मंत्री वासव ने की थी। आजकल के रजिस्ट्रेशन की भांति प्राचीन काल मे भी ऐसे लेखो की प्रामाणिकता के लिए शासकीय अधिकारियो द्वारा लिपिबद्ध कराया जाता था। इससे ज्ञात होता है कि श्री वासव तत्कालीन प्रतिष्ठित पुरुष थे और कायस्थ होते हुए भी जैनधर्म के प्रति विशिष्ट अनुरागी थे। वैशाख शुक्ला तृतीया सोमवार संवत् ११६६ को राजश्रेष्ठी श्री भूषण साहु द्वारा निर्मित इस विशाल जिनालय मे भगवान ऋषभदेव के जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा कराई थी। इस समय उत्थू(च्छू)णक पुर मे परमार वंशी महाराज विजयराज का राज्य था जो चामुण्डराज के पुत्र तथा माण्डलीक के प्रपौत्र थे। अब हम पूरे शिलालेख का हिन्दी रूपान्तरण प्रत्येक श्लोक क्रमसे प्रस्तुत कर रहे हैं:—

सर्व प्रथम 'ॐ नमो वीतरागाय' अर्थात् वीतराग प्रभु को नमस्कार के बाद प्रथम श्लोक मे जिनेन्द्र प्रभु की वंदना की गई है। वे जिन प्रभु जयवंत हों जो भव्य जन रूपी कमलराशि के लिए सूर्य तुल्य हैं, जिन्होने लोगों को ज्ञान का प्रकाश देकर उन्हे पूर्ण विकसित कर दिया है, जिनके समक्ष परवादी रूपी अंधकार क्षणभर को भी नही टिक पाता है, तथा चचल कुवादी रूपी जुगनू क्षणभर मे विलीन हो जाते है ऐसे जिनेन्द्र भगवान जयवत हो ॥१॥ यहा उच्छू(त्थू)णक पुर मे परमार वशी राजा श्री मंडलीक नाम से विख्यात थे जिन्होने कन्ह और सिन्धराज जैसे सेनापतियो का विनाश किया था, इनके पुत्र चामुण्डराय ने यहा अपनी कीर्तिपताका लहराई थी तथा इस स्थली देश (राजस्थान) मे अवन्ति (उज्जयनी) प्रभु के सभी साधनो को नष्ट कर विनाश किया था इनके पुत्र विजयराज जयवत हो, जिन्होने अपना यश ससार मे प्रसारित किया था, वे सौभाग्यशाली थे, उन्होंने शत्रु समूह को जीत लिया था, वे गुणरूपी रत्नो को सागर की भांति धारण किया करते थे तथा वे शूरवीर और बलशाली थे ॥२-३॥

इस स्थली (राजस्थान) देश मे तलपाटक नाम का एक श्रेष्ठ नगर था, जिसकी ललनाओ ने देवांगनाओ के सौन्दर्य से भी अधिक सुन्दरता पाई थी। यहां एक विशाल सुन्दर जिनालय था जिसकी ध्वजाओं के विस्तार ने सूर्य भगवान की किरणो के प्रसार को भी रोक लिया था ॥४॥

इस तलपाटक नगर मे नागर वंश के मूर्धन्य, समस्त शास्त्र ज्ञान के सागर तथा जिनकी अस्थि मज्जा जिनागम की अभिलाषा रूपी रसामृत से परिपूर्ण थी ऐसे अम्बर नाम के श्रेष्ठतम वैद्यराज थे, जिन्होने सद्गृहस्थ होते हुए भी इन्द्रियो पर पूर्ण नियन्त्रण कर रखा था, पापो से रहित पूर्ण सयमी तथा गृहस्थ के बारह व्रतो (देश व्रत, अणुव्रत, शिक्षा व्रतादि) से अलकृत थे। जो षट आवश्यक कर्मों का निष्ठा पूर्वक पालन करते थे, उन्होंने एकान्त वन प्रान्त मे अन्तेवासि (शिष्य) की भांति अन्तर्निबद्ध होकर चक्रेश्वरी देवी की उपासना की तथा योगी की भांति अनन्य भाव से देवी की सेवा की। अत: उनकी इस असाधारण भक्ति और श्रेष्ठ गुणो के कारण चक्रेश्वरी देवी की उन पर कृपा हुई और उन्होने देवी की सिद्धि प्राप्त की ॥५-६॥

इन अम्बर वैद्यराज के पापाक नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ जो भव्य पुरुषो को अनेक आनन्द का दाता था, जो निर्मल बुद्धि का धारक था, सम्पूर्ण शास्त्र ज्ञान का पारदर्शी था, सम्पूर्ण आयुर्वेद का ज्ञाता था तथा दयालुता पूर्वक सभी रोगो से आक्रान्त लोगो का निदान जान उन्हे नीरोग करता था ऐसे पापाक वैद्य के आलोक, साहस और लल्लुक नाम के तीन पुत्र उत्पन्न हुए जो सम्पूर्ण शास्त्रो के पारगत एव पारखी थे ॥७-८॥

इनमे से ज्येष्ठ पुत्र आलोक सहज रूप से विशुद्ध एव विशद बुद्धि से सुशोभित था, जिसने अपनी आन्तरिक दृष्टि से सम्पूर्ण इतिहास और तत्वज्ञान के सार को स्फुरित किया था, तथा संवेगादि गुणो से अपने सम्यक् प्रभाव को व्यक्त करने वाला था, तथा अपने धन का सत्पात्रो को दानादि प्रवृत्तियो मे उपयोग किया करता था, तथा अपनी कुल परम्परा के अनुसार समस्त साधुवर्ग की सेवा मे तल्लीन रहता था, तथा समस्त जनता को आल्हाद करने वाले उत्तम शील स्वभाव को धारण करने वाला था तथा यतियो, धैर्यवानो, विद्वानों आदि के भार को आनन्द पूर्वक धारण करते हुए वह आलोक साहु योगी और भोगी के स्वरूप को एक साथ ही धारण करने वाला

था अर्थात् घर गृहस्थी का भोग करते हुए भी योगी की तरह जीवन यापन करता था।।६-१०।।

यह आलोक साहु छत्रसेन नामक श्रेष्ठ गुरु स्वरूप मुनि (आचार्य) की अनन्य मन से सेवा में तत्पर रहता था।ये छत्रसेन आचार्य माथुरान्वय रूपी विशाल आकाश के प्रखर सूर्य तुल्य थे। वे अपनी वक्तृत्वकला से समस्त सभाजनों का मन ज्ञान से अनुरंजित कर देते थे। इन आलोक साहु की श्रेष्ठ धर्मपत्नी का नाम हेना था जो समस्त निर्मल गुणों से युक्त अति शीलवती थी, जिससे इनके तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जो नय नीति के ज्ञाता विवेकवन्त और पृथ्वी पर रत्न रूप से विभूषित थे।।११-१२।।

इनमे से ज्येष्ठ पुत्र का नाम पाहुक था जो निर्मल ज्ञान वाला था, गुरुजनों की भक्ति मे सदैव तत्पर रहता था, सुतीक्ष्ण बुद्धि से युक्त था जिसके जिनागम सबधी ज्ञान के प्रश्नों से गणधर जैसे विशेषज्ञ भी विमुग्ध हो जाते थे फिर किसी और की बात ही क्या कहना? श्री श्री पाहुक श्रेष्ठी करणानुयोग और चरणानुयोग रूपी शास्त्रों मे अत्यधिक प्रवीण था, इन्द्रिय जनित विषय भोगों से विमुख रहता था, आहार, औषधि, अभय, शास्त्रादि दान तीर्थ का प्रवर्तक था, समता भाव से अपने चित्त को नियंत्रित रखता था, मन वैराग्य भाव से ओत प्रोत रहता था, सांसारिक पापो से विमुक्त हो धर्म की उपासना करते हुए व्रतों का आचरण किया करता था।।१३-१४।।

पाहुक मे छोटा भूषण साहु था जो ससार मे भली भांति विख्यात था तथा कुल परम्परा से प्राप्त लक्ष्मी का पात्र था, सरस्वती का भण्डार और निर्मल ज्ञान का रसिक था, तथा क्षमा रूपी लता से युक्त अत्यधिक कृपालु था। यह भूषण श्रेष्ठी सुन्दरता मे कामदेव तुल्य सौभाग्यशाली, बलिष्ठ तथा नेतृत्व गुण से सम्पन्न, धन मे कुबेर तुल्य अत्यधिक विवेकपूर्ण बुद्धि वाला, उन्नति मे सुमेरु तुल्य तथा मानसिक गम्भीरता मे अगाध जलनिधि तुल्य तथा चातुर्य मे विद्याधर की भांति ऊंचा था। जिन शासनरूपी सरोवर मे राजहस की भांति कल्लोल करने वाला, मुनी जनों के चरणकमलो में भ्रमर तुल्य सम्पूर्ण शास्त्र समूह रूपी सागर में मकर की भांति, तथा महिलाओं के नयन कमलों के लिए सुन्दर चन्द्रमा की भांति आनन्ददायक था। विचक्षण जनों का प्रिय, सुन्दर सरस व्यक्तित्व वाला उदार चित्त, बुद्धिमान, सुभगता और सौम्यता की मूर्ति था। प्रासाद गुण से युक्त था, महान विपदा रूपी गड्ढों के समूह को सरलता से पाटने वाला, स्थिर बुद्धि से अपने कुल परम्परा रूपी रथ को उन्नति के चरम शिखर पहुंचाने वाला, ऐसे अनेकों सद्गुणों का भण्डार श्री भूषण साहु था।।१५-१६।।

इन भूषण श्रेष्ठी की लक्ष्मी और सीली नामक की दो पत्नियां थीं, जो पतिव्रत धर्म और चरित्र गुणसे सयुक्त थी। उन गुरु और देव भक्त भूषण श्रेष्ठी से सीली के आलोक, साधारण और शांति नाम के तीन पुत्र उत्पन्न हुए जो अपने बन्धु-बान्धवोके चित्त रूपी कमलो को विकसित करने के लिए सूर्य तुल्य थे और सर्वगुण सम्पन्न थे एवं योग्य थे।।२०-२१।।

एक दिन भूषण श्रेष्ठी ने सोचा कि यह नश्वर आयु तो तप्त पर्वत पर गिरे पड़े थोड़े से जल बिन्दु की भांति नश्वर है और लक्ष्मी हाथी के कानो की भांति चंचल और अस्थिर है तथा अपने शास्त्र ज्ञान से उसने निश्चय किया कि स्व पर कल्याण के लिए तथा स्थायी यश के लिए कोई मङ्गल कार्य करना चाहिए अतः भूषण श्रेष्ठी ने यहां एक जिनालय का निर्माण कराया। श्री भूषण श्रेष्ठी का छोटा भाई श्री लल्लाक वहां बहुत अधिक विख्यात था, वह नित्य प्रति जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता था तथा अपने बड़े भाई भूषण की आज्ञाओं का सविनय पालन करता था।।२२-२३।।

श्री भूषण श्रेष्ठी के ज्येष्ठ भ्राता जिनका १३वें श्लोक मे पाहुक लिखा है लिपिकार ने उसे इस छद मे बाहुक नाम से उत्कीर्ण किया है। सम्भवतः "प" व "बा" के पढ़ने में भी शिलालेख के पाठकों को भ्रम हो गया हो अस्तु। इस श्लोक के बाहुक और १३वें श्लोक के पाहुक दोनों एक ही व्यक्ति हैं। अतः हम पिछला पाहुक नाम ही प्रयोग करेंगे। इस तरह भूषण श्रेष्ठी के अग्रज पाहुक श्रेष्ठी की धर्मपत्नी का नाम सीडी था और उससे अनेक शुभ लक्षणो से सयुक्त अम्बर नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ था।२४ विक्रम सवत् ११७७ मे स्थली (राजस्थान) देश मे महाराज विजयराज

के शासन काल मे बैशाख शुक्ला तृतीया सोमवार अक्षय तृतीया के दिन श्री भूषण श्रेष्ठी ने वृषभनाथ के जिनालय में भगवान ऋषभदेव के जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा कराई थी। यह ऋषभ नाथ का जिनालय स्थली देश के उच्छ(च्छ)णक नगर में था ॥२५-२६॥

इस शिलालेख के प्रथम तथा चौथे से अठारहवें श्लोक तक के कुल सोलह श्लोक श्री कटुक नामक विद्वान् ने रचे थे। शेष १४ छंद भाइल वशी श्री सावड ब्राह्मण के पुत्र श्री भादुक ने रचे थे ॥२७-२८॥

उस समय यहां बालम वशी राजपाल कायस्थ के पुत्र श्री वासव उस राज्य सधि विग्रहक अधिकारी थे। उन्होंने उस शिलालेख को अधिकारिक रूप से लिखा था अर्थात् रजिस्टर्ड किया था ॥२९॥

आशीर्वचन—जब तक पृथ्वी पर राम रावण का चरित्र लोग बखान करते रहेंगे, जब तक गङ्गा (विष्णुपदी) मे जल बहता रहेगा, आकाश मे चन्द्रमा विद्यमान रहेगा तथा श्रमणों द्वारा उपदिष्ट अरहन्त के वाक्यो को श्रुत (शास्त्र आगम) के रूप मे लोग सुनते रहेंगे तब तक श्री भूषण श्रेष्ठी की यह यशोगाथा पृथ्वी तल पर चिरकाल तक गाई जाती रहेगी।३०॥

विज्ञानिक सूमाक ने इस प्रशस्ति को शिलापट्ट पर उत्कीर्ण किया। मगल हो, महा श्री :

नोट :—प्राय: आशीर्वचनो मे लिखा जाता रहा है कि "यावद्गङ्गा च गोदा च" "यावच्चन्द्र दिवाकरौ" आदि आदि पर इस प्रशस्ति के आशीर्वचनात्मक पद मे जो विशेषण प्रयुक्त हुए हैं वे अपने आप में अनूठे हैं तथा कहीं पढ़े सुने भी नही गये। इस सम्पूर्ण प्रशस्ति मे स्थली (राजस्थान) तथा विष्णुपदी (गङ्गा) शब्द ऐसे अप्रचलित संस्कृत शब्द है जिनका प्रयोग सामान्यत: अन्यत्र कम उपलब्ध होता है।

श्रुत कुटीर, ६८, विश्वास नगर
शाहदरा दिल्ली-३२

भावेण होइ णग्गो बाहिर लिंगेण किं च णग्गेण।
कम्मपयडीण णियरं णासइ भावेण ॥
णग्गत्तणं अकज्जं भावणरहियं जिणेहिं पण्णत्तं।
इय णाऊण य णिच्चं भाविज्जहि अप्पयं धीर ॥

—भाव पाहुड ५४-५५

भाव से नग्न होता है, केवल बाहिरी नग्न वेष से क्या लाभ है? भाव सहित द्रव्यलिंग होने पर कर्मप्रकृति के समूह का नाश होता है, मात्र द्रव्य के होने पर नहीं। भावरहित नग्नपना कार्यकारी नहीं है, ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है। ऐसा जानकर हे धीर, सदा आत्मा का चिन्तन कर।

आधुनिक संदर्भ में आचरण की शुद्धता

□ आचार्य राजकुमार जैन

समाज और देश के विकास, प्रगति और समृद्धि के लिए इकाई के रूप मे जनसामान्य की भागीदारी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उसकी मनोवृत्ति, आचरण और नैतिकता समाज के निर्माण को जो दिशा प्रदान करती है उसी मे उसका स्वरूप और ढांचा स्थिर होता है। आज देश मे समाज की जो स्थिति है उसे उत्साहजनक नही माना जा सकता। गत कुछ वर्षों की तुलना मे समाज के स्वरूप मे जो बदलाव आया है उसे भले ही आधुनिकतावादी सुसस्कृत और प्रगतिशील मानें किन्तु देश के लिए किसी भी रूप मे उसकी प्रासंगिकता तब तक रेखांकित नही की जा सकती जब तक देश के सर्वांगीण विकास मे उसका पूर्ण योगदान न हो।

आज समाज का जो स्वरूप हमारे सम्मुख है वह पूर्णत: स्वस्थ नही कहा जा सकता। आधुनिकता का आचरण जिस प्रकार उसे घेरता जा रहा उससे उसम फैशनपरस्ती, कृत्रिमता (बनावटीपन), दिखावा और आडम्बर की प्रवृत्ति को विशेष रूप से प्रोत्साहन मिला है। परिणामत: उसकी परम्पराओं संस्कृति और सभ्यता मे पर्याप्त बदलाव आया है। लोगों मे दूसरो की परवाह न कर आगे बढ़ने की प्रतिद्वन्द्वता तेजी से पनप रही है। अपने यहा विलासिता के आधुनिकतम साधन अधिक-से-अधिक एकत्र करने मे लोग किसी से पीछे नही रहना चाहते। उसके लिए चाहे उन्हें कोई भी उल्टे सीधे तरीके क्यो न अपनाने पड़ें। यही वजह है कि आज लोग भावनात्मक रूप से समाज से उस प्रकार नही जुड़े है जिस प्रकार जुड़े रहना चाहिए था या पहले जुड़े रहते थे। इसका एक परिणाम यह हुआ कि लोगों मे धार्मिक भावना का शनै. शनै. लोप होता जा रहा है। धर्म भी आजकल भावना और मन से जुड़ा हुआ नही लगता है, उसे भी आडम्बर और दिखावा का माध्यम बनाकर अपनी स्वार्थ पूर्ति का साधन बनाया जा रहा है। जो धर्म अन्त:करण और भावना से जुड़ा रहना चाहिए उसे आज वहां से निकालकर बाह्याडम्बर के आवरण मे लपेट कर प्रस्तुत किया जा रहा है। धर्म के नाम पर आजकल जो कुछ भी किया जा रहा है वह धर्माचरण नही, धर्माचरण के विरुद्ध है।

समाज मे एक ऐसा वर्ग भी आजकल पनप रहा है जो धर्म की आड लेकर समाज मे नफरत और वैमनस्य के बीज पैदा कर रहा है। लोगो मे धार्मिक भावनाए भड़का कर अपनी स्वार्थ पूर्ति करना ही उनका मुख्य उद्देश्य है। ऐसे मुट्ठी भर लोग समाज के सम्पूर्ण वातावरण को न केवल अशान्त कर रहे है, वरन उसमे अराजकता की स्थिति पैदा कर रहे है। सम्भवत: यही कारण है कि सहिष्णु समाज धीरे-धीरे असहिष्णु होता जा रहा है। एक ही समाज अब धर्म के आधार पर विभाजित हो रहा है और उसमे सौमनस्य एवं भावनात्मक एकता के स्थान पर साम्प्रदायिकता की भावना पनप रही है। उदारतावादी दृष्टिकोण धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा है। अनैतिक और अलगाववादी तत्वो के द्वारा जब भड़काने वाली स्थिति उत्पन्न की जाती है तो लोगो मे विरोध और ईर्ष्या की आग को फैलाने के लिए वातावरण तैयार किया जाता है और उनकी धार्मिक भावनाओ को उकसा कर उनसे खिलवाड़ किया जाता है। अन्तत: समाज के निरीह और बेकसूर लोगों को उसका शिकार होना पड़ता है। धर्म के नाम पर की जाने वाली आडम्बरपूर्ण प्रवृत्तियो की परिणति अन्तत: विद्वेष, ईर्ष्या और हिंसा मे होती है जिसका परिणाम निरपराध लोगो को भुगतना पड़ता है।

प्रगतिशील कहे जाने वाले वर्तमान वैज्ञानिक एव भौतिकवादी युग में आज मनुष्य की प्रवृत्तियां अन्तर्मुखी न

होकर बहुर्मुखी अधिक हैं। इसी प्रकार मनुष्य की समस्त प्रवृत्तियों का आकर्षण केन्द्र वर्तमान में जितना अधिक भौतिकवाद है उतना आध्यात्मवाद नही। यही कारण है कि आज का मनुष्य भौतिक नश्वर सुखों में ही यथार्थ सुख की अनुभूति करता है, जिसमे अन्तिम परिणाम विनाश के अतिरिक्त कुछ नही है। वर्तमान मे किया जा रहा सतत चिन्तन, अनुभूति का धरातल, अनुशीलन की परम्परा और तीव्रगामी विचार प्रवाह सब मिलकर भौतिकवाद के विशाल समुद्र मे इस प्रकार विलीन हो गए हैं कि जिसके अन्तर्जगत की समस्त प्रवृतियां अवरुद्ध हो गई हैं। इसका एक यह परिणाम अवश्य हुआ है कि वर्तमान मनुष्य समाज को अनेक वैज्ञानिक उपलब्धिया प्राप्त हुई है, जिससे सम्पूर्ण विश्व मे एक अभूतपूर्व भौतिकतावादी वैज्ञानिक क्राति का प्रसार लक्षित हो रहा है। यह क्राति आज वैज्ञानिक क्रांति के नाम से कही जाती है और इससे होने वाली उपलब्धिया वैज्ञानिक उपलब्धिया कहलाती है। आधुनिक विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र मे ये वैज्ञानिक उपलब्धिया हुई है, और हो रही है। इस वैज्ञानिक क्राति ने जहां धर्म और समाज को प्रभावित किया है, वहा मनुष्य जीवन का कोई भी अश उसके प्रभाव से अछूता नही रहा है। यही कारण है कि मनुष्य के आचार, विचार एव आहार-विहार मे आज अपेक्षाकृत अधिक परिवर्तन दिखलाई पड़ रहा है। आज मनुष्य पुरातन परम्पराओं का पालन करते हुए स्वय रूढिवादी कहलाना पसन्द नही करता है, क्योकि हमारी प्राचीन परम्पराए आज रूढिवादिता का पर्याय बन चुकी है। इस परिस्थिति ने हमारे आहार-विहार तथा आचार-विचार को भी अछूता नही रखा। इसी सदर्भ मे हम अपने वर्तमान खान-पान एव आचरण को देखना परखना चाहिये। भारतीय सस्कृति मे मनुष्य के आचरण की शुद्धता को विशेष महत्व दिया गया है। जब तक मनुष्य अपने आचरण को शुद्ध नही बनाता, तब तक उसका शारीरिक विकास महत्वहीन एव अनुपयोगी है। मनुष्य के आचरण का पर्याप्त प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर पड़ता है। विपरीत आचरण या अशुद्ध आचरण मानव स्वास्थ्य को उसी प्रकार प्रभावित करता है जिस प्रकार उसका आहार विहार। आचरण से अभिप्राय यहाँ दोनों प्रकार के आचरण से है—शारीरिक और मानसिक। शारीरिक आचरण शरीर को और मानसिक आचरण मन को तो प्रभावित करता ही है साथ में शारीरिक आचरण मन को और मानसिक आचरण शरीर को भी प्रभावित करता है। इन दोनो आचरण से मनुष्य की आत्मशक्ति भी निश्चित रूप से प्रभावित होती है। क्योकि आचरण की शुद्धता आत्मशक्ति को बढाने वाली और आचरण की अशुद्धता आत्मशक्ति का ह्रास करने वाली होती है। इसका स्पष्ट प्रभाव मुनिजन, योगी, उत्तम साधु और सन्यासियो मे देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त ऐसे गृहस्थ श्रावको मे भी आत्मशक्ति की वृद्धि का प्रभाव दृष्टिगत हुआ है जिन्होने अपने जीवन मे आचरण की शुद्धता को विशेष महत्व दिया।

यद्यपि भारतवर्ष आरम्भ से ही धर्मप्रधान और धार्मिक वृत्ति वाला देश रहा है और देशवासियोकी प्रत्येक गतिविधि एव आचरण धार्मिकता और आध्यात्मिकता से अनुप्राणित रहा है, तथापि आज जनसाधारण धर्म और सम्प्रदाय में स्पष्ट भेद नही कर पा रहा है। इतना ही नही, अपितु जनसाधारण सम्प्रदाय को ही धर्म मान कर तद्वत् आचरण कर रहा है। यद्यपि देश का प्रबुद्ध वर्ग एव विद्वान जन धर्म और सम्प्रदाय मे स्पष्ट भेद करने और उसे समझने मे समर्थ है, किन्तु दुराग्रही विचारणा के कारण यह सम्भव नही हो पा रहा है। वास्तव मे धर्म और सम्प्रदाय मे बहुत बड़ा अतर है। धर्म उदार, विशाल और सहिष्णु दृष्टिकोण अपनाता है जबकि सम्प्रदाय सकुचित दृष्टिकोण को जन्म देता है। अत. धर्म को व्यापक दृष्टिकोण के रूप मे देखना और समझना चाहिए। इस यथार्थ के साथ यदि देशवासी अपनी मानसिकता, दृष्टिकोण और वैज्ञानिक अवधारणा को अपनाते है तो देश मे कही भी कभी भी धार्मिक उन्माद की परिणति दगा-फसाद, हिसा या रक्तपात के रूप मे नही हो सकती है। किन्तु स्थिति आज ऐसी नहीं है। सम्पूर्ण देश आज साम्प्रदायिक उन्माद की गहरी गिरफ्त मे है, जो धर्मान्धता, धार्मिक कट्टरता, पारस्परिक विद्वेष और

नफरत के कारण उत्पन्न हुआ है तथा धर्म निरपेक्षता की आड़ में पनप रहा है।

एक समय था जब समग्र भारतीय जनजीवन आध्यात्मिकता से अनुप्राणित था जिससे प्रत्येक देशवासी चाहे वह सत्तासीन हो या साधारण नागरिक हो, नैतिकता के सामान्य नियमों से बंधा हुआ था। समाज और राष्ट्र के प्रति वह अपने कर्तव्यबोध से युक्त और उसके निर्वाह के लिए जागरूक एवं तत्पर था। किन्तु आज भारतीय जनमानस से आध्यात्मिकता का भाव तिरोहित हो गया है और भौतिकवादी विचारधारा के बीज तीव्रगति से अंकुरित होकर सम्पूर्ण जीवन शैली में इस प्रकार व्याप्त हो गए हैं कि उन्होंने सभी जीवन मूल्यों का ह्रास कर उन्हें बदल दिया है। भारतीय जन जीवन में आध्यात्मिकता के स्थान पर भौतिकवादी विचारों का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है। इसके साथ ही देश की वर्तमान धर्म निरपेक्ष नीति को जो राजनैतिक रंग दिया गया है उसके कारण उत्पन्न भ्रान्त धारणा ने केवल ४५ वर्ष के अल्पकाल में ही भारतीय जनजीवन में नैतिकता और सदाचार का जो अवमूल्यन किया है आज वह हमारे समक्ष विचारणीय है।

आधुनिक विलासितापूर्ण भौतिक वातावरण ने भारतीय समाज को जिस प्रकार आक्रान्त कर उसे दूषित और आडम्बरपूर्ण बनाया है, वह सुविदित है। इस प्रगतिशील कहे जाने वाले आधुनिक वातावरण ने भारतीय संस्कृति की गौरवमयी परम्परा को जिस प्रकार छिन्न-भिन्न कर भारतीय जनजीवन से उसे पृथक् करने का प्रयास किया है, वह भी आज हमारे सम्मुख बिल्कुल स्पष्ट है। आधुनिकता के नाम पर आज समाज में जो मीठा जहर घोला जा रहा है, उससे भला आज कौनसा परिवार अछूता है। आधुनिकता का विष भारतीय समाज में इस द्रुतगति से फैला है कि अत्यल्प समय में ही उसने अपना प्रभाव दिखाना प्रारम्भ कर दिया है। आधुनिकता की आड़ में हमारे समाज में एक ऐसी सभ्यता ने जन्म लिया है, जो यथार्थ के धरातल से हटकर कृत्रिमता, आडम्बर दिखावे की तिपाई पर टिकी हुई है। ये तीनों तत्व तथाकथित आधुनिक सभ्यता के अंग हैं। आधुनिक सभ्यता में से यदि ये तीनों तत्व निकाल दिये जावें तो न तो आधुनिकता रहेगी और न ही उस आधुनिकता के परिवेश में लिपटी हुई तथाकथित सभ्यता रहेगी।

यह एक सुज्ञात तथ्य है कि जहां भौतिकता का साम्राज्य है, वहाँ आध्यात्मिकता का टिकना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि भारतीय जनजीवन में शनैः शनैः आध्यात्मिकता का ह्रास होता जा रहा है। इस स्थिति में मानवीय आचरण को प्रभावित कर उसे इतना हीन-स्तरीय बना दिया है कि उच्चतम आदर्शों एवं मूल्यों की कल्पना मात्र स्वप्न बनकर रह गई है। आधुनिक मानव समाज अपने आपको अधिक सुसंस्कृत और सभ्य मानता है, क्योंकि उसके रहन-सहन और आचरण में व्यापक परिवर्तन आ गया है। वह अपने रहन-सहन और आचरण को अधिक उन्नत अनुभव करता है। उसके आहार और व्यवहार में होते जा रहे परिवर्तनों ने शुद्धता और अशुद्धता के विवेक को एक ओर रख दिया है और शिथिलाचार को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया है। मनुष्य के आचरण, आहार और व्यवहार में आए शिथिलाचार ने एक ओर तो उसके नैतिक मूल्यों का ह्रास किया है, साथ ही, दूसरी आडम्बरपूर्ण दिखावटी सभ्यता को जन्म देकर स्वयं को सभ्य एवं सुसंस्कृत कहलाने का प्रयत्न किया है। आज सम्पूर्ण समाज में इसी दिखावटी, आडंबर पूर्ण एवं कृत्रिम सभ्यता का प्रसार एवं प्रचार व्यापक रूप से है।

वस्तुतः आधुनिकता सर्पनिर्मोक की भांति एक आवरण है, जिसमें आज सम्पूर्ण विश्व आवेष्ठित है। यह एक ऐसा आवरण है, जिसने हमारे सभ्यता, संस्कृति, रीति-रिवाज, सामाजिक स्थिति, धार्मिक संस्कार, रहन-सहन, खान-पान आदि को बुरी तरह अपने शिकंजे में जकड़ रखा है। कोई गलत काम हो, कोई बुरी आदत हो, कोई बुरा पहनावा हो, किसी भी तरह की कोई बुराई हो, आधुनिकता के आवरण में सब आकर्षक और सह्य मानी जाती है। आधुनिकता की इस व्यापकता से जहां जीवन का कोई पहलू अछूता नहीं रहा है, वहाँ भला

धर्म और उसके साधन की विधियां प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकती हैं ?

मानव जीवन में आचरण की शुद्धता को विशेष महत्व दिया गया है। सांसारिक बधनो के अधीन गृहस्थाश्रम में रहते हुए मनुष्य के लिए हिताहित विवेक एव हेयोपादेय की बुद्धि परम आवश्यक है। उसी के आधार पर वह अपने आचरण की शुद्धता पर अपेक्षित ध्यान केन्द्रित कर सकता है। आचरण की शुद्धता मनुष्य को सभी बुराइयो एव मिथ्याचरण से बचाती है, उसे अहिंसक एवं सात्विक वृत्ति की प्रेरणा देती है तथा स्वभाव को सरल एवं विनय सम्पन्न बनाती है। यहाँ आचरण से तीनो प्रकार का आचरण अभिप्रेत है—कायिक आचरण, वाचिक आचरण एवं मानसिक आचरण। इनमें भी मानसिक आचरण की शुद्धता पर विशेष बल दिया गया है। शुभ या अशुभ, अच्छे या बुरे मनोभाव ही मनुष्य के शारीरिक एव वाचिक आचरण को प्रभावित करते है। यदि मनुष्य की भावनाए शुद्ध एव सात्विक है तो उसे अच्छा बोलने और अच्छा आचरण करने की प्रेरणा मिलेगी। मनुष्य का अपना आचरण उसके अपने वैयक्तिक जीवन को तो प्रभावित करता ही है, उसके सम्पर्क मे आने वाले अन्य लोगों एवं समाज को भी अपेक्षित रूप से प्रभावित करता है।

भारतीय धर्म और सस्कृति मे मनुष्य के लिए आचरणीय जिस प्रकार का आधार प्रतिपादित है, वह आधुनिक वातावरण के सन्दर्भ मे विशेष उपयोगी है। पथभ्रष्ट एवं विवेकशून्य मनुष्य और समाज आज जिस प्रकार दिशाहीन होकर अभक्ष्य भक्षण एव विभिन्न कुप्रवृत्तियो मे सलग्न है, उसे समुचित मार्गदर्शन एव दिशानिर्देश मात्र आचार शास्त्र द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। आचार शास्त्र मे कही भी रंचमात्र भी ढोंग, आडबर, कृत्रिमता एवं दिखावा के लिए कोई स्थान नही है। जिस आचरण के द्वारा मनुष्य के हृदय मे शुद्धता एव सात्विक भाव का उदय नही होता है, वह मात्र ढोंग एव आडम्बर है। जैन धर्म मे इस प्रकार का आचरण सदैव गर्हित किया गया है, वह कदापि उपादेय नही है।

तथाकथित आधुनिक सुसस्कृत समाज के सदर्भ मे आचरण की शुद्धता कितनी उपयोगी, श्रेयस्करी एव उपादेय हो सकती है—इसकी प्रामाणिकता केवल कथन मे नही, प्रयोग और आचरण की कसौटी पर ही कसी जा सकती है। हमारी सस्कृति मे प्रतिपादित सिद्धात एव आचार मीमासा समग्र विश्व एव सम्पूर्ण प्राणी समाज के लिए ऐसा अनुपम वरदान है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। उसका अनुकरण पारिवारिक विवाद एव द्वेष भाव को निर्मूल कर सौहार्द भाव एव स्वस्थ वातावरण का निर्माण कर समाज मे सुख और शान्ति का प्रादुर्भाव कर सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि उसे पूर्वाग्रह से मुक्त होकर देखा और परखा जाय। सात्विक आचरण की सार्थकता उनके अनुकरण, अनुपालन एव आचरण मे निहित है, न कि आडम्बर और दिखावा मे। वस्तुतः यदि देखा जाये तो आधुनिकता के नाम पर हम जहर को अमृत मानकर पी रहे है और अमृत को पुरानी बातें कहकर तिरस्कृत कर रहे है। यह एक विडम्बना है कि जो आचरणीय एव जीवन मे उतारने योग्य सर्वथा व्यवहारिक है, उसे तिलाजलि दी है और अनुपादेय एव हेय को अपनाकर आचारित किया जा रहा है। युगों से चली आ रही मूढ बनाने वाली मूलतः परम्पराए एव सामाजिक बेड़ियाँ तोड़कर वर्तमान प्रगतिशील समय मे अमूढ-दृष्टि बनाना तो प्रशसनीय है, किन्तु जीवन के शाश्वत नैतिक मूल्यों को 'पुराना" कह कर अवमानना या तिरस्कार करना कदापि उचित नही माना जा सकता। जीवन के शाश्वत नैतिक मूल्यो को अपने आचरण मे उतारकर विस्तार देना ही रचनात्मक आधुनिकता एव प्रगतिशीलता है।

१-ई/६ स्वामी रामतीर्थ नगर, नई दिल्ली-५५

जिज्ञासा एवं समाधान

लेखक - जवाहर लाल जैन, भीण्डर, (राजस्थान)

श्री शान्तिलाल कागजी की जिज्ञासा :

अनादि मिथ्यादृष्टि जीव जब प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख होता है या सम्यक्त्व को प्राप्त करता है तब उसके परिणामो की क्या स्थिति होती है? और उसे किस-किस प्रक्रिया से गुजरना होता है और वर्तमान में उसे प्राप्त करने के लिए किन-किन परिणामो की आवश्यकता है उस जीव की जिज्ञासा किस प्रकार की होगी? सांसारिक कार्य में लिप्त रहने के क्षण में भी सम्यक्त्व रत्न प्राप्त कर सकता है? कैसे? विस्तृत समझाइए।

समाधान—सम्यक्त्व सम्मुख जीव तथा तत्काल प्राप्त सम्यक्त्व जीव अतिशय निर्मल होता है। इसी कारण करण लब्धि मे स्थित जीव अपूर्वकरण मे गुजरता हुआ गुणश्रेणि निर्जरा यानी अविपाक निर्जरा करता है। जबकि वह अब भी मिथ्यादृष्टि ही है। [पं० रतनचन्द मुख्तार व्यक्तित्व एव कृतित्व पृ० ११०८, १११३]

फिर सम्यग्दृष्टि होकर भी वह अन्तर्मुहूर्त तक अति-विशुद्ध परिणामों वाला होने से गुणश्रेणि निर्जरा यानी अविपाक निर्जरा को करता है। [वही ग्रन्थ पृ० ११०६ तथा जयधवला जी १२/२८४]

क्योंकि प्रथम अन्तर्मुहूर्त मे वह सम्यग्दृष्टि जीव एकान्तानुवृद्धि परिणामो से परिणत रहता है। [ज० ध० १२/२८४]

फिर लब्ध सम्यक्त्व जीव एक अन्तर्मुहूर्त बाद सम्यग्-दर्शन के साथ सामान्य परिणामयुक्त ही हो जाता है। फलस्वरूप अविपाक निर्जरा उसके नही होती। [ज० ध० १२/२८४ चरम पेरा]

उसके बाद के सामान्य सम्यक्त्व काल मे तो उसके निर्जरा से बन्ध अधिक होता है। [प० रतनचन्द मुख्तार व्यक्तित्व कृतित्व पृ० ११०६ : मूलाचार समयसाराधिकार ४६]

जो मिथ्यादृष्टि सम्यक्त्व प्राप्त करता है उसे मिथ्यात्व अवस्था मे ही पापकर्मों का हीन-हीन रूपेण उदित होना, पुण्य प्रकृतियों का ही प्राय: बन्ध होना, अशुभ (पाप) परिणामों की निवृत्ति होना, तथा ऐसी ही स्थिति मे तत्वो का उपदेश देने वाले सत्पुरुषो की या शास्त्रों की प्राप्ति हो जाना।

उसके बाद उसी तत्वज्ञान (मै आत्मा हू ज्ञायक ज्ञायक बस; ज्ञायक। शरीर पड़ोसी है, पर पुद्गलद्रव्य है, अजीवतत्त्व है स्व नही। अतः उपादेय नहीं। उपादेय तत्त्वों मे एक मात्र आत्मा ही है।) [नियमसार ता०वृ० ३८ परमात्मप्रकाश १/७ निजपरमात्मानम् अतरेण न किंचिद् उपादेयमस्ति]।

इससे कर्मों की स्थिति तथा रस (अनुभाग) शिथिल होते जाते है। यहाँ (इस स्टेज पर स्थित) मनुष्य ८ वर्ष आयु वाला तो हो ही जाता है। वह ज्ञानोपयोगयुक्त होता है, सोया हुआ नही होता, जागता हुआ होता है, शुभ लेश्या परिणाम की ओर गमन करता हुआ होता है, मनुष्य के अशुभ लेश्या नही होती। [ल० सा० पृ० ८५ शिव-सागर ग्रथमाला] कषायें घटती हुई होती है [ज० ध० १२/२०२-२०३] ऐसा मनुष्य चाहे द्रव्य व भाव मे नपुसक भी भले होवे। [ज० ध० १२/२०६]

इस स्टेज को प्राप्त वह मिथ्यादृष्टि मनुष्य (जो अभी ज्ञान मे आत्मवस्तु को विषय भी नही बना पाया है, पर सत्पुरुषो से उपदेश लाभ प्राप्त कर चुका है, इसलिए कर्मो को शिथिल कर रहा है. ऐसी स्टेज पर—) बहु-आरम्भ बहुपरिग्रह से उदासीन हो जाता है ताकि नरकायु बन्ध नष्ट हो। मायाचार छूट जाता है ताकि तिर्यंचायु बन्ध नष्ट हो। अल्पारंभ परिग्रह परिणाम भी उसके उस समय नष्ट हो जाते हैं। दयादान परोपकार आदि से मिल रहा जो अल्पारभ तथा अल्पपरिग्रह है ऐसा मनुष्यायु का

बाधक परिणाम भी उसके छूट जाता है। [श० वा० ६/५१८ ल० सा० पृ० ११]

योगो की कुटिलता तथा धोखा देने रूप परिणाम उसके नष्ट भये, क्योकि अब वह अशुभ नाम कर्म का बन्ध प्रायोग्य लब्धि मे नही करता। सन्मार्ग प्रवर्तक दूसरे जीव को अपनी विपरीत कायिक मानसिक वाचिक चेष्टाओ से वह मिथ्यादृष्टि अन्य जीव को धोखा नही देता है तथा अपने आप अपनी आत्मा मे भी कुटिलता नही बरतता, तथैव पिशुनता, डाँवाडोल स्वभाव, झूठे बाट नाप बनाना, कृत्रिम सोना, मणिरत्न बनाना, झूठे गवाही देना, यत्र पिंजरा आदि का निर्माण करना, इट पकाना, कोयला बनाने का व्यापार करना आदि कार्य वह नही करता। क्योकि इनसे उसके अशुभ नाम कर्म का आस्रव होगा। [श० वा० भाग ६ पृ० ५२४] जिनका कि उसके निरोध हो चुका, मिथ्यात्व अवस्था मे ही। यही अशुभ नाम की व्युच्छित्ति रूप प्रायोग्य लब्धि है।

पर की निन्दा तथा अपनी प्रशसा (अहभाव Ego) भाव तो उसके ऐसे नष्ट हो चुके कि कभी नही आवेगे। क्योकि सासादन सम्यग्दृष्टि तक ऐसे भाव होते हैं या फिर प्रायोग्य लब्धि से पूर्व समयवर्ती मिथ्यात्वी के ऐसे भाव होते है। दूसरो के गुणों से ईर्ष्या तथा स्व के नही गुण हैं तो भी गुण बनाकर कहना यह कार्य वह नहीं करता। दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध, दयनीय रोना, इत्यादि न करता है, न कराता है। अरे! यह स्टेज तो मुनियों को भी दुर्लभ है। अर्थात् मुनियों का भी जो प्रकृतिया बधती हैं ऐसी अस्थिर, अशुभ, असाता, अयश. कीर्ति, अरति, शोक नामक ६ प्रकृति इस मिथ्यादृष्टि के बंधनी समाप्त हो जाती है। (यही प्रायोग्य लब्धि का अन्तिम ३४वा बन्धापसरण है।) [धवल ६/१३८-१३९]

अतः इन ६ के बाधने का परिणाम सामान्य मुनिराज के तो होते हैं, परन्तु सम्यक्त्व सन्मुख मिथ्यात्वी के नहीं होते। अत अहो, वह जीव तो मुनि से भी उत्तम परिणाम वाला हो जाता है। यही प्रायोग्य लब्धि है। तब फिर वही जीव करण लब्धि को प्राप्त होता है तथा अविपाक निर्जरा भी उसके (अपूर्वकरण मे) प्रारम्भ होती है। ऐसे मे वह श्रेष्ठतम (अनिवृत्ति करण) परिणामो मे पहुंच कर "ऐगो मे सासदो; मेरा तो एक आत्मा ही है"। उस आत्मा को अपने मतिश्रुत ज्ञान का विषय बनाता है। अपनी ज्ञान पर्याय मे अरूपी निज आत्मा का स्वानुभव रूप ज्ञान कर लेना उस समय उसके होता है। यह क्षण अनिवृत्ति करण के चरम समय के बाद वाला यानी सम्यक्त्व का प्रथम समय होता है। (पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य तथा) पंचाध्यायीकार कहते है कि स्वानुभूति स्वानुभूत्यावरण नामक मतिज्ञानावरण के अवान्तर भेद के क्षयोपशम से होने वाला क्षायोपशमिक ज्ञान है जो सम्यग्दर्शन के साथ नियमसे होता है। [पंचाध्यायी उत्तरार्ध तथा सम्यक्त्व चिन्तामणि प्रस्ता० पृ० ३२ युगवीर समत भद्र ग्रन्थमाला]

स्वानुभूति = स्व का ज्ञान; ऐसा अर्थ यहा विवक्षित है। परन्तु आत्मा अमूर्त होने से छद्मस्थ का ज्ञान उसे प्रत्यक्ष नही देख पाता। आत्मा का आकार तथा प्रदेशादिक उसे साक्षात् नही दिखते। कहा भी है—"आत्मा का प्रत्यक्ष जानना तो केवली ही के होय है।" (रहस्यपूर्ण चिट्ठी) परन्तु अन्धा व्यक्ति जैसे मिश्री की डली को नहीं देख पाता, आकार, रग, रूप नही जान पाता; तथापि रसास्वादन तो कर लेता है। तथैव यह गृहस्थ भी आत्मा का जानना, जानना, अनुभव यानी 'उसे विषय करना' तो कर सकता है। यही स्वानुभव (स्वज्ञान) या स्वानुभव प्रत्यक्ष है। स्वानुभव-प्रत्यक्ष रूप स्थिति चौथे मे सम्भव है। (रहस्यपूर्ण चिट्ठी का सार)

परन्तु सासारिक कार्यों मे लिप्त होने के क्षण मे वह मिथ्यादृष्टि गृहस्थ सम्यक्त्वरत्न को प्राप्त नही कर सकता। सर्वविशुद्ध (धवल ६/२०६) अर्थात् त्रिकरण=करण लब्धि(धवल ६/२१४)मे स्थित सातिशय मिथ्यात्वी तो किसी अपेक्षा मुनि से भी विशुद्ध होता है। मुनि तो अस्थिर अशुभ असाता आदि ६ प्रकृतियों का बन्ध करता है, पर वह करणलब्धिस्थ मिथ्यादृष्टि इन प्रकृतियो का बन्ध नही करता। (यही तो अन्तिम बन्धापसरण है) क्षायिक सम्यक्त्वी तथा तीर्थंकर प्रकृति के बन्धक प्रथम पृथ्वीस्थ श्रेणिक आदि या यहा के क्षायिक सम्यक्त्वी अपनी गृहस्थी विदेह क्षेत्रीय भव्य गृहस्थों से भी वह

मिथ्यात्वी विशुद्ध हो जाता है, करण लब्धि के क्षणो मे। क्योंकि उसके तो अविपाक निर्जरा-गुणश्रेणिनिर्जरा हो रही है करण लब्धि मे। (मुख्तार ग्रथ ११०८) पर इस चतुर्थ गुणस्थानवर्ती क्षायिक सम्यक्त्वी के गुणश्रेणि निर्जरा नही हो रही है। [प० टोडरमल जी मो० मा० प्र० सस्ती० ३०८, ३४१, ३६४]

बताओ, उस करण लब्धि मे विराजमान सर्वविशुद्ध सत्पुरुष सातिशय मिथ्यात्वी के ऐसे क्षण में सांसारिक कार्यों में लीन रहना सम्भव है? कदापि नही। उस क्षण वह घर मे विराजमान हो सकता है। पर सांसारिक-गार्हस्थिक कार्यों से उस समय वह निश्चित ही विरत हो जाता है। उस समय वह ब्रह्म=आत्मा को अपने ज्ञान का विषय बनाता है उस क्षण उस पर चेतन अचेतनकृत उपसर्ग युगपत-अनेक भी आ जावें तो भी उसमे वह पूर्णरूप से अप्रभावित रहता है। कहा भी है—दर्शन मोह के उपशामक सर्व ही जीव निर्व्याघात अर्थात् उपसर्गादिक के आने पर भी विच्छेद तथा मरण से रहित होते है। [धवल ६/२३९ तथा जयध० १२ पृ० ३०२-३०३]

उस समय उसका विषय एक मात्र आत्मा=ब्रह्म=ज्ञानप्रकाश=ज्ञायक ही रह जाता है। [उसकी कारणानुयोगिक विशेषताए धवल ६/२३८ से २४२ तक की भी देखनी चाहिए]

सम्यग्दृष्टि के प्रतिशोध के भाव समाप्त हो जाते हैं। बुरे का जवाब बुरे से नही देता। [पचाध्यायी २/४२७ सद्य कृतापराधेषु—]

वह खाने-पीने की इच्छा अवश्य करता है, पर आसक्ति नही, उनमे आसक्त नही होता। आपने आज सर्वाधिक मोटा आम खाया और बारह मास बाद भी उस आम की स्वाद की याद आती रहे तथा वैसा आम खाने की इच्छा (लोभ) बनी रहे तो समझलो कि आप मिथ्यादृष्टि हो। किसी ने आपको गाली दी हो या थप्पड मारी हो तो ८-१०-१२ माम बाद उसे देखते ही उस पर द्वेष, क्रूरता, क्रोध जाग्रत हो जाता है कि यह वही है जिसने मुझे गाली दी अर्थात् उस पर या उसके प्रति वैर-भाव नष्ट नही हुआ तो आप मिथ्यादृष्टि है (क्रोध)। स्वय के देह गृह परिजन आदि को लेकर भी मद उत्पन्न हो जाता है वह छह मास बाद भी यदि नहीं विनशता तो समझ लेना चाहिए कि आप मिथ्यादृष्टि हैं तथा जो शुरू मे मद उपजा था वह भी मिथ्यात्व सहित था।

सम्यक्त्वी के क्रोध मान माया तथा लोभ के संस्कार ६ मास से अधिक नही रहते। यह आगम है उसे इष्ट अनिष्ट तो परपदार्थों के प्रति भासित होता है। पर वह पर पदार्थों के प्रति इष्टानिष्ट रूप अवभासना आसक्ति सहित नही होती। इसीलिए तो इष्ट वियोग तथा अनिष्ट सयोग आर्तध्यान छठे गुणस्थान तक कहे है।

सम्यग्दृष्टि की एकान्त दृष्टि समाप्त हो जाती है। वह "आत्मा कथंचित् द्रव्यकर्मों के परतन्त्र हैं, कथचित् स्वतन्त्र है", (धवल १२) इत्यादि स्याद्वाद के वाक्यों को हृदय मे अपने ज्ञान मे सोल्लास स्वीकार करता है। तो उसी क्षण अपनी श्रद्धा में शुद्धात्मा के प्रति ही लक्ष्य तथा उपादेयता रूप बुद्धि धारण किए रहता है। दृष्टि व ध्यान मे शुद्धात्मा ही अभीष्ट होती है उसे। पर उसके ज्ञान मे द्वादशाग के एक वाक्य के प्रति भी अपलाप नही रहता जो एक भी जिन वचन को नही मानता वह मिथ्यादृष्टि है। [भगवती आराधना ३९]

वह साधु मे यथार्थ मे कोई दोष हो तो उसे सबके सामने नही कहता, ढांकता है। अन्य कहता हो तो उसे भी रोकता है। [पद्मपुराण १०६/२३२]

ऐसा सकल भूषण केवली ने कहा था (वही प्रमाण) दूसरो की परीक्षा हेतु ऊट-पटांग प्रश्न पूछकर उसे नीचा दिखाना नही चाहता। [नाटक समयसार साधक साध्य० २९] बनारसीदास आदि निश्चित ही सम्यग्दृष्टि रहे थे, ऐसा भासित होता है। (श्रीमद् राजचन्द्र) जिसके भोगाभिलाषा भाव है वह मिथ्यादृष्टि है। [प० ध्या० सुबोधिनी पृ० ४१४, ४२०]

कदाचित् वह राम व युधिष्ठिर की तरह आत्मरक्षा हेतु युद्धादि भी मजबूरी वश करता है। वह मिथ्यात्व, अन्याय तथा अभक्ष्य का त्यागी हो जाता है। [सम्यक्त्व चिन्तामणि प्रस्ता० पृ० ३८]

वह परिस्थितिवश श्रेणिक की तरह आत्मघात या सीता प्रतीन्द्र की तरह मोह (चारित्र मोह) वश राम मुनि का ध्यान से डिगाने का भी यत्न करता है। [महा धवल प्रस्ता० ८३ पृ० १] वस्तुत: उसके ज्ञान चेतना ही

नही, कर्म तथा कर्मफल चेतना भी होती है।

इस जगत् मे ७०० करोड अव्रती सम्यक्त्वी मनुष्य हैं। जबकि कुल मनुष्य पांचवे वर्गस्थान बादाल के घन प्रमाण हैं। [षट्ख पृ० ६४, ब्रह्मविलास पृ० ११०, धवल ३/२५२]

(सकल मनुष्यो की सख्या २२ अंक प्रमाण भी मानी जाए तो भी १३ अक सख्या पर यानी औसतन १० खरब मनुष्यों पर एक सम्यक्त्वी गृहस्थ प्राप्त होता है।) सारत: औसत की दृष्टि से इस सकल ६ अरब सख्या वाले इस आधुनिक विश्व मे तो एक भी सम्यग्दृष्टि प्राप्त नही होता। स्मरण रहे कि यह औसत की अपेक्षा कथन किया है। फिर हम मुण्डे-मुण्डे मनो मन सम्यग्दृष्टि बनते हैं। यह हास्यास्पद बात है। सम्यग्दृष्टि अव्रती की दशा भी बडी अलौकिक हो जाती है। दौलतराम जी ने ठीक ही कहा है —

गेही पै घर मे न रचै, ज्यो जल ते भिन्न कमल है।
नगर नारी को प्यार यथा, कादे मे हेम अमल है॥

जिसे संसार से रोना आ जाए, ससार वास न सुहाए उसे यत्न करने पर आत्म-बोध हो सकता है। सम्यग्दृष्टि तथा मिथ्यादृष्टि के परिणामों मे अन्तर का परिज्ञान करने के लिए तथा सम्यक्त्वी परिणामों का बोध कराने लिए नीचे मैं डा० मूलचन्द जी सनावद द्वारा सकलित पद्यो को उद्धृत करता हू—

सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि

सम्यग्दृष्टि सोचता है :

जोई दिन कटै, सोई आयु मे अवश्य घटै।
बूंद-बूंद बीते जैसे अंजुरी का जल है॥
देह नित क्षीन होत, नैन तेज हीन होत।
यौवन मलीन होत, क्षीण होत बल है॥
आवै जरानेरी, तकै अंतक अहेरी आय।
परभौ नजीक आय नरभौ निफल है॥
मिलकै मिलापी जन पूछत कुशल मेरी।
ऐसी दशा माँहि मित्र, काहे की कुशल है?

मिथ्यादृष्टि सोचता है :

चाहत हो, धन होय किंचि.
तो सब काज सरै जियराजी।
गेह चिनाय करू गहना कछु,
ब्याह सुता सुत बांटिये भाजी॥
चिंतत यो दिन जाहि चले
जम आन अचानक देत दगाजी।
खेलत खेल खिलारी गये,
रहजाय रूपी शतरंज की बाजी॥

सम्यग्दृष्टि सोचता है :

दुखमय जगत के विभाव की चाह नहीं,
चाह नहीं नाथ मुझे पदाधीश कर दे।
पराधीन रोगमय भोगों की न चाह मुझे,
चाह नहीं बड़े-बड़े महलो मे घर दे॥
मोहकारी पुत्र पौत्र मित्रो की न चाह मुझे,
चाह नही स्वर्णमयी जेवर और जर दे।
छोड जग राह नाथ चाह एक चाहता हू,
भक्त मणि मानस मे भक्तिभाव भर दे॥

मिथ्यादृष्टि सोचता है :

रागउदै भोगभाव लागत सुहावने से,
बिनाराग ऐसे लागै जैसे नाग कारे हैं।
राग ही सो पाग रहै तन मे सदैव जीव,
राग मिटै सूझत असार खेल सारे हैं।
रागी बिन रागी के विचार मे बडो ही भेद
जैसे भटा पथ्य काहू काहू को बयारे हैं॥

सम्यग्दृष्टि :

भेद विज्ञान जग्यो जिनके घट,
शीतल चित्त भयो जिमिचदन।
केलिकरै शिव मारग में,
जगमाँहि जिनेश्वर के लघु नदन॥
शान्तस्वरूप दशा तिनकी,
प्रगटी अवदात मिथ्यात्व निकंदन।
शान्त दशा तिनकी पहचान,
करैं कर जोड बनारसि वदन॥

मिथ्यादृष्टि :

धरम न जानत बखानत भरम रूप,
ठौर ठौर ठानत लड़ाई पक्षपात की ।।
फिरै डावाडोल सो करम की कलोलन मे,
है रही अवस्था ज्यो बभूला कैसे पातकी ।।
जाकी छाती ताती कारी, कुटिल कुवाती भारी ।
ऐसो ब्रह्मघाती है मिथ्यात्वी महापातकी ।।

सम्यग्दृष्टि :

बाहर नारक कृत दुख भोगत अन्तर सगरसगटागटी ।
रमत अनेक सुरनि सग पै तिस परनति तें नित हटाहटी

मिथ्यादृष्टि :

शास्त्र पढ़े मालाए फेरी, प्रतिदिन रहा पुजारी ।
किन्तु रहा कोरा का कोरा, मन न हुआ अविकारी ।।
साठ बरस की उमर हो चला, फिर भी ज्ञान न जागा ।
सच तो यह कहना ही होगा, जीवन रहा अभागा ।।

सम्यग्दृष्टि :

कवगृहवाससो उदास होय वन सेऊं ।
वेऊं निजरूप गतिरोकू मन करीकी ।।
रहिहो अडोल एक आसन अचल अग ।
सहिहौं परीषह शीतघाम मेघ झरीकी ।।
ए... बिहारी यथाजात लिंग धारी कब ।
होहुं इच्छाचारी बलिहारी हूवा घरी की ।।

मिथ्यादृष्टि :

अनर विषय वासना बरतै, बाहर लोकलाज भयभारी ।
ताते कठिन दिगबर दीक्षा' धरनहिं सकें दीन संसारी ।।

सम्यग्दृष्टि :

श्री राम ने राजा दशरथ के विरुद्ध भड़काये जाने पर भी कहा था—राजा में दण्डकारण्ये राज्य दत्त शुभेखिलम् ।।

मिथ्यादृष्टि :

आसिधारी देवमाने लोभी गुरु चित्त आने ।
हिंसा मे धरम माने दूर रहे धरम सों ।।
माटी जल आगि पौन वृक्षपशुपक्षी जोन ।
इन्हे आदि सेवै छूटै ते करम सो ।।

सम्यग्दृष्टि :

विकार हेतौ सति विक्रियन्ते येषा न चेतांसि त एव धीराः ।

विकार का कारण पैदा हो जाने पर भी जिनके चित्त मे विकार पैदा नही होता वे धीर है, वीर है सम्यग्दृष्टि है ।

मिथ्यादृष्टि :

परचाह दाह दलो सदा कबहू न साम्य सुधाचख्यो ।

सम्यग्दृष्टि :

तोते को सोने के पिंजडे मे रखो । पिश्ता, बदाम खिलाओ तो भी वह इस ताक में रहता है कि कब बंधन मुक्त होऊ । यही सम्यग्दृष्टि का विचार रहता है ।

मिथ्यादृष्टि :

पालतू कबूतर को पिंजडे से बाहर निकालकर उड़ा दो फिर भी वह वापिस पिंजडे मे आता है ।

सम्यग्दृष्टि :

एकाकी निःस्पृहोशान्तः पाणिपात्रोदिगबर
कदाऽह सभविष्यामि, कर्मनिर्मूलनक्षमः ।।

सम्यग्दृष्टि के विचार स्वपर कल्याण के लिए होते हैं । मिथ्यादृष्टि-स्वपर कल्याणके विचारो से रहित होता है

सम्यग्दृष्टि सोचता है :

एगामे सासदो आदाणाण दसण लक्खणो ।
सेसा मे बाहिराभावाः सब्बे सजोग लक्खणा ।।
न मे मृत्यु कुतो भीतिः न मे व्याधि कुतो व्यथा ।
नाहं वालोनवृद्धोऽहं न युवैतानि पुद्गले ।।
अहं न नारको नाम न तिर्यग्नापि मानुष ।
न देवः किन्तु सिद्धात्मा सर्वोऽय कर्म विक्रम. ।।

मिथ्यादृष्टि :

एक बूढ़े सेठ को उसी के लडको ने मारा । बूढा सेठ साधु के पास आकर बोला, महाराज ! आप बहुत सुखी हैं । साधु ने कहा तो तू भी साधु हो जा, तू भी सुखी हो जायेगा ।

सुनकर सेठ बोला—महाराज गृहस्थी मे ऐसा चलता है आखिर बच्चे ही तो है, सब कुछ सहन करना पड़ता है। ऐसा कहकर झट बदल गया।

(जैन गजट ६-१-६४, पृ० ६)

सम्यग्दृष्टि जीव एकान्तवादी नहीं होता

शास्त्रो ने जहा-जहा निश्चय नय का कथन किया हो उसी उसी को प्रमाण करना, उसी उसी को सत्य मानना यह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। टोडरमल जी कहते है कि 'यह अपने अभिप्रायतै निश्चनय की मुख्यता करि जो कथन किया होय ताही को ग्रहिकरि मिथ्यादृष्टि को धारै है।" [मो० मा० प्र० पृ० २७१]

यही बात श्रीमद् राजचन्द्र भी (भाग १/६८८ मे) कहते हैं। सम्यक्त्वी तो ऐसा होता है कि "निश्चय तथा व्यवहार के वास्तविक स्वरूप को समझ कर दोनों नयो के विषय मे मध्यस्थता को ग्रहण करने वाला मनुष्य ही जिनागम मे प्रतिपादित वस्तुस्वरूप को अच्छी तरह समझ सकता है।" इस अमृतचन्द्राचार्य के [पु० सि० उ० व्यवहार निश्चयौ य: ····] मे उसे प्रगाढ श्रद्धा होती है। व्यवहार नय भी झूठ नही होता है। [ण च ववहारणओ चप्पलओ जयधवला जी १/७] इस वाक्य पर उसे ही श्रद्धा हो सकती है जिसका होनहार उत्तम है, अथवा जो निकट भव्य है।

सम्यक्त्व उपाय :—

सर्वप्रथम श्रुतज्ञान द्वारा तत्त्व स्वरूप आत्म स्वरूप को समझना चाहिए। "मैं ज्ञानप्रकाश मात्र हू" यही स्व है। शेष सब पर है—द्रव्य कर्म, शरीर, रागादि भाव ये भी पर है। फिर पाँच इन्द्रिय व मन द्वारा पर द्रव्यो को जानने वाले ज्ञान को, वहाँ से तोड कर उसी अपने मतिज्ञान को आत्मा की ओर करते है। यानी मतिज्ञान को पर ज्ञेयो से हटाकर आत्मा रूप ज्ञेय मे लगाते है। तो स्वानुभव होगा। श्रुतज्ञान भी समस्त नय विकल्पो स छूट कर आत्मस्वरूप [=ज्ञान प्रकाश मात्र] मे एकाग्र हो तभी आत्मानुभव होगा। सम्यग्दर्शन होगा। अपनी मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान की पर्याय जो पर पदार्थों की ओर झुकी हुई हैं जिससे हमे पर पदार्थ ही ज्ञात हो रहे हैं। इन्ही मति श्रुतज्ञानो को स्वसन्मूख करने पर—अन्त: स्वभाव की ओर करने पर मति श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा ज्ञात होगा। यही सम्यग्दर्शन है। जब मति श्रुतज्ञान की पर्याय में अन्य ज्ञेय नहीं रहे तथा अपना निज ज्ञायक ही ज्ञेयपने को प्राप्त होता है तो उस समय आत्म साक्षात्कार हुआ कहलाता है। वही सम्यक्त्व हुआ कहना चाहिए।

इस आत्मा की ओर आने के लिए निम्न विचार करणीय हैं—

(१) पर वस्तु मे शरण ढूढना, विश्राम करना भव वर्धक है।

(२) अभ्यास करे, गहराई मे जाए तथा तल मे जाकर पहिचाने तथा वहाँ स्थिर हो तो तत्त्व (आत्मा) प्राप्त होता हैं।

(३) बधन को तो मूर्ख भी नही चाह करता। फिर मैं शरीरादि का बधन, उसी मे जुडान+ तथा उसी का रख रखाव आदि करता आया हू, अर्थात् अभी तक तो मैं बहिरात्मा ही बना रहा हू।

(४) हे भाग्यशाली! ध्येय तो एक "ज्ञानप्रकाश" ज्ञानप्रकाश बस, ज्ञान प्रकाश का ही रख।

(५) इस जीव को आत्मा पर प्रेम है ही कहाँ अन्यथा पुरुषार्थ करे ही करे।

(६) हे भव्य! इस नर देह को पाकर एक पल भी व्यर्थ न गँवा।

(७) हे मुमुक्षो! एकान्त मे जितना समार घटता है उसका शताश भी घररूप काजल की कोठरी मे नही घटता।

(८) इस जीव ने जितना श्रम आजीविका के लिए किया उतनाही श्रम यह चेतनाके लिए करे तो सुलट जाए।

(९) यह मिथ्यात्वी जीव पुद्गल मे ही रचा पचा है। इसे तो शरीर का सुख भी चाहिए तथा आत्मिक सुख भी। ऐसा कैसे हो सकता है?

(१०) जिस होनहार पुरुष को ऐसा लगता हो कि पौद्गलिक सुख मिथ्या है, सच्चा सुख इससे भिन्न ही कोई होना चाहिए तो उसे पुरुषार्थ करन की चटापटी भी होवे।

(११) समस्त विकारो से रहित अनन्त गुणमय अभेद आत्मा मे दृष्टि करो, समकित मिलेगा।

(१२) "ज्ञान प्रकाश का पुञ्ज" यही आत्मा है। बस, इसी का अनुभव करना। यही करने योग्य है।

(१३) विभाव तथा सयोगो की समीपता छोड़कर आत्मा की समीपता करना। इसी का ज्ञान करना समकित है।

(१४) हे मानव ! मतिश्रुत का व्यापार स्वसन्मुख करो और समकित पाओ।

(१५) सर्व प्रथम जीव सात तत्त्व का स्वरूप समझे फिर विशेषरूप से द्रव्यगुण पर्याय को पहिचाने। फिर आत्मद्रव्य के सामान्य स्वभाव को जानकर, उस पर दृष्टि करके, उसका अभ्यास करते-२ उसी मे स्थिर हो जाए।

(१६) सब प्रथम चेतन का ज्ञान करना। फिर उसी मे विश्वास करना, फिर उसी मे स्थिर होना, सम्यक्त्वोपाय है।

(१७) इसके लिए निरन्तर ज्ञायक का ही अभ्यास, ज्ञायक का ही मन्थन : इसी का चिन्तन हो तो समकित प्रकट हो।

नौ तत्त्वो मे मात्र जीव तत्त्व ही उपादेय है। उनमे मैं स्वय एक ही जीव निज के लिए उपादेय हू। शेष जीव तत्त्व तथा अन्य सर्व अजीवादिक तत्त्व उपादेय नही। सवर निर्जरा तथा मोक्ष तो पर्याये हैं। ये भी दृष्टि के विषय नही (भले ही कथचित् उपादेय हो) मेरी दृष्टि का विषय तो ध्रुवतत्त्व "मेरा आत्मा" ज्ञायक, ज्ञायक बस ज्ञायक ही हो।

जब वह मतिश्रुत ज्ञान का विषय बन जाए तो सम्यक्त्व हो।

आश्चर्य की बात है कि यह आत्मा स्वय अपने ही अस्तित्व पर शंका करता है अथवा उसे मानने से इन्कार करता है।

हे भद्र ! किसी पर पदार्थ पर मोह दृष्टि न रख, उस पर आसक्त न हो।

यदि यह उपयोग बन जाए कि मेरा प्रभु मैं ही हू। मैं जगत के सब पदार्थों से न्यारा हू। यदि ऐसा उपयोग बन जाएगा तो तेरा उत्थान होगा।

हे आत्मन् ! पर मे दृष्टि न रख, पर मे दृष्टि रखने से तुझे दुःख होगे।

आत्मा की पहिचान ज्ञान-लक्षण से होती है और ज्ञान लक्षण का कोई आकार नही है। ज्ञान ही ज्ञान का आकार है और ज्ञान ही आत्मा का लक्षण है। इसलिए आत्मा निराकार है। यह तो केवल "ज्ञान ज्योति" है। यही ब्रह्म है आत्मा की पहिचान ज्ञान भाव से है यह एक भाव बैठ जाए कि मैं ज्ञान स्वरूप हू, जानन स्वरूप हूं। जानन स्वरूप क्या है ? शुद्ध जानना ही जान स्वरूप है। इस ही लक्ष्य मे लग जाएं और जानकर केवल अपनी आत्मा मे, जिसे कहते हैं 'ज्ञान ज्योति', उसमे ही लग जाएं तो ज्ञानानुभव [=सम्यक्त्व] होता है।

रे ! बाह्यवस्तु को सुखकारी मानते हो, कल्याणकारी मानते हो; असल मे देखो तो वही निमित रूप से दुःख का कारण बन रहा है।

जितना राग बुरा नही, उतना मोह बुरा है। जा बाह्य वस्तुएँ सुहा जाए यह राग है। बाह्य वस्तु को मेरी समझना मोह है। बाह्य वस्तु मे ममत्व मान लेना ही मोह है तथा बाह्य वस्तुएँ सुहा जाने का नाम राग है। मोह अर्थात् राग मे राग। पर वस्तु मे राग हो गया। यह राग मै हू। राग से ही मेरा कल्याण है, मेरी भलाई है। यह हुआ राग का राग। राग मे राग हो जाने का नाम ही मोह या मिथ्यात्व है।

मैं तो केवल एक ज्ञानमात्र, जो पकडा नही जा सकता, छेदा नही जा सकता, घेरा नही जा सकता, आंखो से देखा नही जा सकता; ऐसा ही मै एक चैतन्य वस्तु हू। मेरा किसी से कोई सम्बन्ध नही है। मैं पृथक् हू, सबसे न्यारा हू। जिसकी इस प्रकार की दृष्टि होगी उसको शान्ति प्राप्त हो सकती है।

जगत् के सभी समागमो से हट कर मैं उपयोग को अपने ज्ञानमात्र, ज्ञायक स्वरूप मे लाऊँ; यही विवेक है। मैं निज जानन मे हो रमू, यही प्रभु का दर्शन है। सत्य का प्राग्रह हो तो सत्य का दर्शन होगा ही।

मेरी जाननमात्र ही चेष्टा हो, बाकी सब काम नही हो बाहर मे दृष्टि गई तो वहाँ शान्ति नही मिलेगी। शान्ति तो वहाँ है जहाँ बाहर मे दृष्टि न हो। कुछ मत सोचो, कुछ मत बोलो, कुछ मत करो। कल्पना जल्पना चलपना क्या है ? कल्पना का सम्बन्ध मन से है। जल्पना का सम्बन्ध वचनो से होता है। चलपना उठकर चल देना है। जहाँ न कल्पना हो, न जल्पना हो न चलपना हो; केवल स्वरूप का ही परिग्रह हो तो तत्त्वज्ञान की प्रवृत्ति बढ़े, वहाँ शान्ति मिलती है। जिसने अपने स्वरूप को लक्ष्य मे

न लिया, अपने को ही पर का उपादान रूप कर्ता-धर्ता माना तो समझो कि वह दूसरी दुनिया मे चला गया, अपने स्वरूप से हट गया। यदि जीव अपने स्वरूप से हट गया तो समझो कि दुःखो की परम्परा आ गई। क्योकि अपने स्वरूप को भूलकर कही भी लगो, सर्वत्र क्लेश ही क्लेश है।

अपने आप मे ऐसा अनुभव बन बन जाए कि बाह्य पदार्थ उपयोग मे नही है केवल 'ज्ञानरस" का अनुभव होता रहता है, ज्ञान दृष्टि होती रहती है तो उसे सम्यक्त्व निश्चित हुआ जानो। अपने आपकी सहज चैतन्य के रूप मे पहिचान होगी तब सम्यक्त्व होगा। स्वभाव दर्शन (सम्यग्दर्शन) क्या है ? जैसा खुद का स्वरूप है तैसा ही उपयोग बन गया, यही स्वभावदर्शन है। मुझे करना केवल एक ज्ञानानुभव ही है। ज्ञान मे ज्ञान का अनुभव करके मैं अपने मे अपने आप आनन्द स्वरूप होऊँ।

तू अपने को यह समझ कि मै ज्ञानमात्र हू। इसके आगे मे कुछ नही हू। इस ज्ञान मे ही सब कुछ आ गया। इस कला से तू जगत् के अन्य प्राणियो से भिन्न हो जाएगा।

मेरे मे क्या है ? मेरे मे सब कुछ है। मेरे मे ज्ञान है, वह ज्ञान ही सब कुछ है। ज्ञान की कला से तो देखो, यह राग है, मोह है, ज्ञान का अधेरा है, ज्ञान का ही उजेरा है। ये सब ज्ञान के ऊपर ही निर्भर है। बडी-२ विपदाओ के सामने यदि ज्ञान से काम ले तो विपदाएँ दूर हो सकती है। ज्ञान के बिना आकुलताएँ—व्याकुलताएँ दूर नही हो सकती हैं। कहा भी है :—

भिन्नदर्शी भवेद्भिन्न. सकरेर्षी च शकर.।
तत्त्वत: सर्वत: प्रत्यक् स्याम् स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥

हे आत्मन् ! तुझे जगत् से न्यारा बनना है या जगत् से मिला हुआ बनना है ? पहले इसका निर्णय कर। जगत् से न्यारा रहने की स्थिति कैसी होगी ? तो देखो, वहां न कुटुम्ब है, न समागम है, न शरीर है, न कर्म है, न क्रोध है, न मान है, न माया है ' '। जाननमात्र शान्त सामान्य स्वरूप तेरी स्थिति होगी। यदि तुझे जगत् से भिन्न रहना है तो अपने को जगत से भिन्न देख। और यदि जगत् से अपने को मिला हुआ रखना है तो अपने को जगत मे मिला हुआ देख। जो अपने को जगत से भिन्न देखता है वह भिन्न हो जाता है और जो जगत से शकर यानी मिला हुआ अपने को देखता है वह शंकर यानी जगत् से मिला हुआ (ससारी) ही रह जाता है।

सम्यक्त्व पाने के लिए शान्ति के मार्ग मे बढने के लिए सबसे पहला कदम है इन्द्रिय विजय। अर्थात् इन्द्रियो के विषयो पर विजय प्राप्त करना। इन विषयो से पृथक्, विषयो के ग्रहण की साधनभूत द्रव्येन्द्रियो से पृथक्, और विषयग्रहण के विकल्प भाव रूप भावेन्द्रिय से पृथक् ज्ञान मात्र अपने आत्मतत्त्व का अनुभव करूँ। इसके लिए हम सीधा इतना ही करे कि विषयो के निमित्तो को दूर करें। तथा विषयो के कारणभूत इस शरीर को आत्मा से अलग समझे। फिर इन विकल्पो के दूर होने पर आत्मा मे परम विश्राम होगा। जिससे शान्ति के स्वरूप और शान्ति के मार्ग का साक्षात्कार होगा। सुख इसी विधि से है। अन्यत्र विषयो मे सुख खोजना महामूढता है।

सम्यक्त्व उपाय :—

यह आत्मा क्या है ? अरे आत्मा मे अनन्त शक्ति है और उस शक्ति के प्रतिसमय परिणमन चलते रहते हैं। अनादि से परिणमन चला आया और अनन्त काल तक परिणमन चलेगा। परिणमन तो होगा, परन्तु परिणमन या शक्तिभेद (गुणभेद) की दृष्टि से परिचय नही होगा। आत्मा का अनुभव नही होगा। यह ऐसा पकड़ मे नही आ सकता जिससे स्पष्ट पहिचान मे आवे। अरे, यह है आत्मा। जैसे हाथ मे रखी स्वर्ण की डली है। वह पहिचान मे आ जाती है कि यह है। एक ज्ञान-दृष्टि से आत्मा को सोचो कि यह ज्ञानस्वरूप आत्मा है जो जानन का ही काम करता है वही आत्मा है। इतना ही नही, जानने की जो शक्ति है, त्रैकालिक जो ज्ञान स्वभाव वह आत्मा है। इस तरह केवल ज्ञानस्वरूप को ही लक्ष्य मे रखो तो ज्ञान स्वरूप ही लक्ष्य मे रहते-२ यह लक्ष्य भी छूट कर ज्ञान-आत्मा की ओर अनुभव हो जाता है। यह चीज प्रयोग की है। भीतर मे उपयोग बने कि मैं ज्ञानमात्र हू और जानन (ज्ञान) का जो स्वरूप है उसे ही लक्ष्य मे लेवे; "इतना मात्र ही मैं हू", ऐसा रहे तो आत्मा का परिचय

मिलता है; आत्मा की पकड़ होती है। [आत्मपरिचयन का सार]।

सम्यक्त्व उपाय :—

तत्त्व निर्णय करने विषैं उपयोग लगावने का अभ्यास राखै, तिनिकै विशुद्धता बधै, ताकरि कर्मनि की शक्तिहीन होय। कितैक काल विषैं आपै आप दर्शनमोह का उपशम होय तब याकै तत्त्वनिकी यथावत् प्रतीति आवै। सो याका कर्तव्य तो तत्त्वनिर्णय का अभ्यास ही है। इसहोतें दर्शन-मोह का उपशम तो स्वयमेव हो होय। यामैं जीव का कर्तव्य किछु नाहीं। बहुरि ताको होतें जीव के स्वयमेव सम्यग्दर्शन होय। बहुरि सम्यग्दर्शन होते श्रद्धान तो यह भया—मैं आत्मा हूं। मुझको रागादि न करने। परन्तु चारित्र मोह के उदय तैं रागादि हो है। [मा० मा० प्र० ६/४६० सस्ती ग्रन्थमाला] हे भव्य! पर वस्तु से मोह न करो, तो क्या जीव मिट जाएगा? पर माने कौन? [प० प्र० २/५४२ रामगंज मण्डी] जीव के मरण का भय मिथ्यात्व है। [प० प्र० १/४३] सर्व पदार्थों को हम कहाँ तक हटाएं? एक अपने आपके स्वरूप के ग्रहण करने मे सबका त्याग हो जाता है। कोई द्रव्य किसी दूसरे द्रव्य को अपना परिणमन नही देता।

मेरा काम केवल जानन [ज्ञान करना] आनन्द ये दो ही काम हैं। (प० प्र० १/१६४)।

राग का राग करने से राग हरा रहता है।

सब पदार्थ न्यारे-२ अचने लगना; यही धर्म है। यह ज्ञात हो जाए कि सब पदार्थ मुझसे न्यारे हैं यही अन्तस्तत्व है। अशुद्ध रहते हुए भी शुद्धता को देखें तो कभी अशुद्धता मिट जाएगी। अशुद्ध अवस्था मे भी शुद्ध (शक्तितः) देखा जा सकता है। [प० प्र० ३/१०; ७/४६४ भानपुरा प्रकाशन] ये मोही जन परिवार के दो तीन जीवों को अपना मान रहे हैं। ये दो-तीन जीव भी तो एक दिन विदा हो जाएंगे। यह मानने वाला भी तो नही रहेगा, यह भी विदा हो जाएगा। सारा स्वप्न का तो काम है (अर्थात् ये सब परिजन दिन का स्वप्न है)। अहो! इस मोह की नीन्द के स्वप्न मे कितनी लोटापाई की जा रही है? हे कल्याणार्थियो! देह के मोह को छोडो। हे योगी पुरुष! कर्मकृत भावों को और अन्य चेतन अचेतन द्रव्यों को भिन्न समझो। अहो! सम्यक्त्वी तो पिण्ड छुड़ाने के लिए भोग भोगता है और मिथ्यात्वी भोगो को चाहकर भोगता है। जो कुछ-कुछ जान रहा है उसके ही जानने मे लग जाए यही दुखों से मुक्त होने का उपाय है।

"जो जानने वाला है उसको जानो" केवल जानन का ही सदा पुरुषार्थ करना चाहिए। ज्ञान से बढ़कर तप क्या हो सकता है? (कुछ नहीं)।

हे आत्मन्! गृहस्थ तो उसका नाम है जिसके यह भावना रहती हो कि मैं कब मुनि बनू?

"जो जानन (ज्ञान) का ही जानन कर लेता है" उसको सम्यग्दृष्टि कहते हैं। [प्र० प्र० ४/५७ भानपुरा प्रकाशन]

चाहे मर जाओ पर परद्रव्य मे आत्मबुद्धि न करो। "मैं" मे सबका अनुभव चलता है। मैं कर रहा हू, मैं जा रहा हू आदि कथनों मे जिसके लिए "मैं" कहा जाता है वही तो मैं आत्मा हूं। [प० प्र०प्रवचन ४/११६ भानपुरा प्रकाशन]

इस प्रकार सम्यक्त्व का सक्रम/अक्रम उपाय कहा गया।

इस प्रकार यह जीव स्याद्वाद को ज्ञान मे पूरी तौर पर सोल्लास स्वीकार करता हुआ; श्रद्धा दृष्टि मे शुद्धात्मा के प्रति लक्ष्य रखता हुआ उसी को उपादेय मानता हुआ, चारित्र पथ मे स्वयं अचारित्री होता हुआ भी जिनमुद्रा-धारी का अनपमान करता हुआ यह जीव आत्मानुभव) (आत्मज्ञान) से सम्यग्दृष्टि हो सकता है; अन्य प्रकार से कभी नही। सम्यग्दर्शन कहो या आत्मश्रद्धा कहो, या आत्मरुचि कहो, या आत्मस्पर्श कहो या आत्मप्रत्यय (आत्मप्रतीति) कहो; से सब एकार्थ वाचक नाम है। [महापुराण ६/१२३]

सपादकीय—लेखक विद्वान् ने बड़ा श्रम कर पाठको को अमूल्य निधि दी है, और इस लम्बी निधि को हमने एक ही अक मे पाठको के लाभार्थ सजोयी है। पाठक लाभ ले।

दिगम्बरत्व और दिगम्बर-मुनि

□ पद्मचन्द्र शास्त्री 'सम्पादक'

श्वेताम्बर आगम 'स्थानांगसूत्र' मे सात निन्हव बतलाए हैं और उनके नामों, आचार्यों के नामो तथा उत्पत्ति स्थानों को बतलाया गया है और कथन का उपसहार करते हुए भी सात का ही निर्देश किया गया है। पर, विशेषावश्यक भाष्यकार श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने अपने भाष्य मे 'वोटिक' नाम का आठवां निन्हव और गढ़ दिया और उसकी कथा भी गढ़ दी—जो दिगम्बर मत की उत्पत्ति को पश्चाद्वर्ती सिद्ध करने के लिए गढी गई है। पर वह कथा स्वय ही दिगम्बरो की प्राचीनता को सिद्ध करती है। पाठकों की जानकारी के लिए हम सभी विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं और उन्ही के आगमो से कर रहे हैं। तथाहि—

समणस्स ण भगवओ महावीरस्स तित्थसि सत्त पवयण णिण्हगा पण्णता। तं जहा—बहुरया, जीवपएसिया, अवत्तिया, सामुच्छेइया, दो किरिया, तेरासिया, अबद्धिया। ए एसि ण सत्तण्हं पवयणं णिण्हगाण सत्त धम्मायरिया होत्था—जमाली, तिस्सगुत्ते, आसाढे आसमित्ते, गगे, छलुए, गोट्ठामाहिल्ले। एएसि ण सत्तण्ह पवयण णिण्हगाण सत्त उप्पत्तिनगरे होत्था। त जहा—सावत्थी, उसभपुर, सेयविया, मिहिल, उल्लुगातीर पुरिमंतरंजि, दसपुर णिण्हग उप्पत्ति नगराई।।—स्थानागसूत्र 'अमोलक ऋषि सूत्र ८८ पृ० ७०८)।

श्रावस्ती नगरी में जामाली ने बहुरमत, रिषभपुर मे तिष्यगुप्त ने जीवपएसियामत, आसाढाचार्य ने सेतविका मे अव्वत्तिया मत, गांगेय ने मिथिला मे सामुच्छेइया मत, प्रासमित्र ने उल्लकातीर में दो किरियामत, बहुलूक ने पुरमताल में त्रैराशिक मत और गोष्ठमाहिल्ल ने दशपुर मे अबद्धिया मत थापा।

इन श्रीजिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने ही उपसहार करते हुए सात ही संख्या निर्दिष्ट की है। तथाहि—

'एव एए कहिआ ओसप्पिणीए उ निण्हया सत्त।
वीरवरस्स पवयणे सेसाण पवयणे नत्थि।।
—विशेषाव० ३०६३

फिर भी उक्त आचार्य ने स्वय की ओर से 'वोटिक निन्हव' नाम का आठवा निन्हव गढ दिया। और उसकी पुष्टि मे रथवीपुर के शिवभूति नामक व्यक्ति की कथा गढ दी—कि वह गुरु के मना करने पर भी नग्न हो गया और तब से दिगम्बर मत का प्रचलन वीर निर्वाण के ६०९ वर्ष बाद से हुआ। पर, वे स्वय यह भूल गए कि शिवभूति को सबोधन करते हुए उसके गुरु ने उसे यह स्पष्ट कर दिया था कि—सप्रति दुखमा काल मे जिनकल्प व्युच्छिन्न हो गया है यह सत्य है—'सप्रति दु षमाकाले व्युच्छिन्नो जिनकल्प इति सत्यमेतत्'—(देखें टीका ३०७५) इसके आगे यह भी कहा है कि जम्बू स्वामी के बाद निम्न बातें भी व्युच्छिन्न हो गईं :—

'मण परमोहि पुलाए आहारगखवग उवसमे कप्पे।
सजमतिय केवलिसिज्झणा य जंबुम्मि वोच्छिण्णा।।
—विशेषा० ३०७६

मन पर्ययज्ञान, परमावधिरुत्कृष्टमवधिज्ञानम्, पुलाकलब्धि:, आहारकशरीरकलब्धि:, क्षयोपशमश्रेणिद्वयम्-कल्पग्रहणाज्जिनकल्प, सयमत्रिक—परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराय-यथाख्यातानि, केवलज्ञान, सिद्धगमनं च। एतेऽर्था जम्बुनाम्नि सुधर्मगणधरशिष्ये व्युच्छिन्ना—तस्मिन् सति अनुवृत्ता: तस्मिन्निर्वाणे व्युच्छिन्ना इति।'—(वही टीका)।

उक्त संदर्भ मे स्पष्ट स्वीकार किया गया है कि जंबू स्वामी के बाद 'जिनकल्प' व्युच्छिन्न हो गया। ऐसी अवस्था मे यह तो स्वयं ही सिद्ध है कि 'जिनकल्प' पहिले से रहा। भले ही श्वेताम्बरों की यह मान्यता रहे कि दिगम्बरत्व बाद का है। पर, इस सचाई पर कोई परदा

नही डाल सकता कि लोप अस्तित्व का ही होता है, यदि 'जिनकल्प' पहिले नही था तो लोप किसका और कैसे माना जायगा?

वस्तु स्थिति ऐसी है कि श्वेताम्बर यह स्वीकार करते हैं कि आदि के और अन्त के दो तीर्थंकर अचेल (निर्वस्त्र) रहे—नग्न रहे। उनके ऊपर दीक्षा के समय इन्द्र द्वारा दिया देवदूष्य, सदाकाल नही रहा और इसमे कोई प्रमाण भी नही है। महावीर का देवदूष्य तो ब्राह्मण के पास या काटो मे चला गया—ऐसा कथन श्वेताम्बरो के 'कल्पसूत्र' मे है। फिर कही ऐसा उल्लेख भी नही कि महावीर को किसी ने पुन वस्त्र दिया हो। फलत:—दिगम्बरत्व की सत्यता और प्राचीनता स्वय सिद्ध है। इस विषय मे हमने सन् १९८७ के अनेकान्त किरण ३ मे काफी प्रकाश पहिले ही डाल दिया है—वहा देखे।

श्वेताम्बर साधु भोजन के लिए पात्र और शरीर पर वस्त्र धारण करते है और दिगम्बर साधु 'पाणिपात्र भोजी' थे। इससे भी यह सिद्ध है कि ऋषभदेव स्वय दिगम्बर थे। तथाहि—

'प्रभुरप्यजलुकृत्य पाणिपात्रमधारयत्।'—२९२

'भूयानपिरस: पाणिपात्रे भगवो पपौ।'—२९३

—त्रिषष्ठिश पु च. (आदीश्वर चरित्र, पर्व १, सर्ग ३ श्लोक २९२, २९३

श्वेताम्बर प्राकृत कोश अभिधान राजेन्द्र मे यह सकेत भी स्पष्ट है कि ऋषभदेव नग्न थे। तथाहि—

'भगव अरहा उसभे कोसलिए सवच्छर साहिय चीवरधारी होत्था।'—'उसहेण अरहा कोसलिए संवच्छर साहिय चीवरधारी होत्था तेण पर अचेलए।'

अभि. रा पृ. ११३२

भगवान अरहत ऋषभदेव कौशल मे मास अधिक एक वर्ष (मात्र) वस्त्रधारी थे और वह देवदूष्य वस्त्र दीक्षा के समय इन्द्र ने दिया था।

हेमचन्द्र के त्रिषष्ठि शलाका पुरुषचरित आदीश्वर चरित्र पर्व १ सर्ग ३ श्लोक ३१३ मे राजा श्रेयांस द्वारा ऋषभ की प्रशसा मे लोगो से कहा गया है कि - जो भोगो का इच्छुक होता है वह स्नान, राग और वस्त्रो को स्वीकारता है। प्रभु ऋषभ तो भोगो मे विरक्त हैं—वे वस्त्रादि क्यो रखे?

'स्नान राग नेपथ्य वस्त्राणि स्वीकारोतिस।

यो भोगेच्छु: स्वामिनस्तु तद्विरक्तस्य कि हिते।'

इससे स्पष्ट ही सिद्ध है कि ऋषभदेव नग्न (निर्वस्त्र) थे।

पाणिपात्र के विषय मे विशेषावश्यक भाष्य मे लिखा है—

'निरुवम धिमघयणा चउनाणाइ सयसत्त सपण्णा।
अच्छिद्दपाणिपत्ता जिणा जिय परीसहा सव्वे॥'
—गाथा ३०८३

जिना हि सर्वे निरुपमधृतयो वज्रकटकसमान परिणामा भवन्ति, तथा चतुर्ज्ञानिनश्छद्मस्था: सत्त्वोऽतिशयवन्तश्च, तथा अच्छिद्रपाण्यादय जित परीषहा।'

—गाथा ३०८३ टीका

दिगम्बरत्व का उक्त रूप अतीत सभी चौबीसियो मे विद्यमान रहा है और दिगम्बर साधु सदा ही अट्ठाईस मूलगुणधारी रहे है। वे ५ महाव्रत ५ समिति, पचेन्द्रिय-दमन, षट् आवश्यको का पालन करते रहे हैं। केशलोच, खडे होकर आहार लेना, एक बार नवधा भक्तिपूर्वक आहार दातुन स्नान त्याग, भू-शयन, नग्न रहना—इन अट्ठाईस मूलगुणो का निरतिचार पालन करने मे सावधान रहते रहे है। बाईस परीषहो मे समागत परीषहो को सहन करते रहे है - दिगम्बर साधु के विषय मे लिखा है कि—

'सुण्णहरे तरुहिट्ठे उज्जाणे तह मसाणवासे वा।
गिरिगुह गिरिसिहरे वा भीमवणे अहव वसिमे वा॥
सवसासत्त तित्थ वच चइदालत्तय च वुत्तेहिं (?)
जिणभवण अहवेज्झ जिणमग्गे जिणवरा विति॥
पचमहव्वय जुत्ता पंचिदियसजया णिरावेक्खा।
सज्झायझाणजुत्ता मुणिवरवसहा णिइच्छति॥'
—बोधप्राभृत ४२-४४

मुनियो को शून्य घर मे, अथवा वृक्ष के नीचे अथवा उद्यान मे, अथवा स्मशान भूमि मे अथवा पर्वतो की गुफा मे, अथवा पर्वत के शिखर पर, अथवा भयंकर वन मे, अथवा वसतिका मे रहना चाहिए। ये सभी स्थान स्वाधीन है। अपने अधीन हो, ऐसे तीर्थ, चैत्यालय और उक्त स्थानो के साथ-साथ जिनभवन को जिनेन्द्रदेव जैनमार्ग मे पवित्र

(शेष पृ० २५ पर)

जैन-संस्कृति-साहित्य की रक्षा : एक चिंतन

— डा० राजेन्द्र कुमार बंसल

आत्म-धर्म अनादि और शाश्वत है जो जीव और जड के सम्बन्धों की व्याख्या करता हुआ शुद्धता का मार्ग बताता है। श्रमण-संस्कृति का मूल आधार है वीतरागी देव, वीतरागी गुरु और वीतरागता-पोषक शास्त्र। वीतरागता के तत्व के कारण यह तीनो त्रिकाल, पूज्य और वंदनीय हैं। यदि कोई देव, गुरु या शास्त्र समग्र रूप से वीतरागता का पोषण या प्रतिनिधित्व नही करते तो वे वंदनीय होने की पात्रता खो देते है। वदना पात्र की नही, गुणों की होती है। इसी दृष्टि से जैन समाज सदैव से इस ओर सजग रहा है कि उसके इस विश्वास मे कही स्खलन न हो और कहीं कोई ऐसा कार्य जाने-अनजाने में न हो जाये जो वीतरागता एव वीतराग-मार्ग के विपरीत हो। इस सम्बन्ध मे जैन सस्कृति की परम्परावद्ध सुनिश्चित धारणायें एव व्यवस्था है जो उसके मूलस्वरूप के अस्तित्व को बनाये रखे है, यद्यपि समय-समय पर आततायियों एवं शिथलाचारियो के कारण उसमे स्खलन हुआ है, फिर भी वह दीर्घकालिक सिद्ध नही हुआ।

हाल ही मे कुछ नया कर गुजरने की भावना के कारण कुछ सस्कृति विरोधी प्रवृत्तियां पनपी हैं जिन पर यदि तत्काल नियत्रण नही किया गया तो उसके फलित दुष्परिणाम घातक सिद्ध होगे। व्यक्ति का व्यक्तित्व तो उम्र समाप्ति पर विस्मृति के गर्त मे चला जाता है किन्तु उसके इतिहास एव सस्कृति-विरोधी कृत्य समूची मानवता को प्रभावित करते रहते है। प्राचीन आचार्यों द्वारा लिखित आर्ष-ग्रन्थो मे सशोधन, खडित मूर्तियों को पुन: उकेर कर पुन: प्रतिष्ठापित करना, मूर्ति-तस्करी, एव साहित्य मे वर्णित भावो के विपरीत भावो का प्रकाशन, कुछ साधुओं द्वारा प्रकट मे गृहस्थोचित कार्य कर २८ मूल गुणो की खुली विराधना करना, रागात्मक साहित्य का प्रकाशन, अनेक गजरथों का चलवाना आदि कुछ ऐसी प्रवृत्तिया है जो जैन-सस्कृति को चुनौती बन गयी हैं। यदि यह कार्य इतर-धार्मिको द्वारा किए जाते तब बात उतनी भयावह एव नाजुक नही होती जितनी अभी है क्योकि यह कार्य उन व्यक्तियो एव संस्थाओ द्वारा किये जा रहे है जो जैन-सस्कृति के कथित रक्षक/पोषक हैं और जिन्हे किसी साधु का आशीर्वाद प्राप्त है। बड़ी विचित्र बात है, समुद्र मे आग लगी है, बुझावे कौन और कैसे ?

आर्ष-ग्रंथों में संशोधन/परिवर्तन

प्राचीन आचार्यो ने तत्कालीन प्रचलित जन-भाषा में साहित्य का निर्माण किया। यह जन-भाषा प्राकृत, जैन-शौरसेनी आदि के नाम से चिह्नित की गयी। तत्कालीन भावलिंगी सतो ने, साहित्य रचना के समय भावानुकूल प्रचलित शब्दो का गाथाओ मे उपयोग किया। अध्यात्म-काव्य-रचना करते समय आचार्यों को व्याकरण, जो प्राय: बाद मे बनता है, की शुद्धता-अशुद्धता ध्यान मे रखकर काव्य रचना करना इष्ट नही था। उन्होने तो लोक-भाषा मे रचनायें लिख दी। यही कारण है कि एक ही रचनाकार ने सुविधानुसार एक ही ग्रन्थ मे एक ही भाव

(पृ० २४ का शेषाश)

मानते हैं। पाच महाव्रतो के धारक, पाचो इन्द्रियो को जीतने वाले, भोगो की इच्छा से रहित और स्वाध्याय तथा ध्यान मे लगे रहने वाले श्रेष्ठ मुनिवर उक्त स्थानो को ही पसन्द करते हैं।

इसके अतिरिक्त वेदो आदि हिन्दु ग्रथो व बौद्धग्रन्थो मे ऐसे अनेक प्रमाण हैं जो दिगम्बर मत की तत्कालीन प्राचीनता को सिद्ध करते है कि दिगम्बर मुनि ऋषभदेव के समय से निरन्तर विद्यमान रहे हैं और दिगम्बर मान्यतानुसार इस काल के अन्त तक किसी न किसी रूप मे विद्यमान रहेगे। यह दिगम्बर मुनियो का आगमोक्त प्राचीन रूप रहा है।

बोधक अनेक शब्दों का प्रयोग किया जैसे होदि, होइ, हवइ, हवदि, हवेई आदि। यह शब्द आद्य आध्यात्मिक कवि एवं आचार्य कुन्दकुन्द की रचनाओं में प्रयोग किए गये हैं। हाल ही में कुन्दकुन्द भारती दिल्ली द्वारा आचार्य कुन्दकुन्द की रचनाओं का प्रकाशन किया गया है जिसमें सम्पादन एवं व्याकरण की शुद्धि के नाम पर मूल गाथाओं में संशोधन/परिवर्तन किया है। यह कार्य किसी भी दृष्टि-कोण से उचित नहीं है। प्राच्य साहित्य एवं इतिहास की दृष्टि से यह कार्य अपराध ही कहा जावेगा।

भगवान महावीर ने कोई धर्मग्रन्थ नहीं लिखा/लिखवाया। गणधर, आचार्य परम्परा से हमें धर्म साहित्य विरासत में मिला है जिसे यथावत शुद्ध बनाए रखना जैन समाज और भारतीय नागरिकों का कर्तव्य है।

कुरान शरीफ इस्लाम धर्म का मूलधर्म ग्रन्थ है। इसकी आयतें अरबी भाषा में हजरत मोहम्मद साहब के माध्यम से उतरी थीं जिसका अनुवाद उर्दू एवं अन्य भाषाओं में किया गया। चौदह सौ वर्ष की लम्बी यात्रा में अभी तक कुरान शरीफ में एक नुक्ते का भी हेरफेर नहीं हुआ। कुरान शरीफ व्याकरण की दृष्टि से परिपूर्ण रचना है या नहीं, यह प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है। प्रश्न धर्मग्रन्थ की पवित्रता के विश्वास का है जो विशाल मुस्लिम समाज के हृदयों में विद्यमान है। हम गौतम गणधर से लेकर आगामी आचार्य परम्परा की प्रमाणिकता की चर्चा करते नहीं थकते किन्तु उनके द्वारा रचित धर्म-ग्रन्थों का साहित्यिक/भाषिक छिद्रान्वेषण करने में भी नहीं चूकते। क्या यह उचित है कि हम अपने को आचार्यों से अधिक श्रेष्ठ/विद्वान सिद्ध करने हेतु उनकी प्राचीन रचनाओं में व्याकरण की शुद्धि के नाम पर परिवर्तन/संशोधन मर्यादा के बाहर जाकर कर रहे हैं। साहित्य शुद्धिकरण के ऐसे प्रयोग किसी भी क्षेत्र में नहीं किए गये। अखिल भारतवर्षीय विद्वत परिषद का ध्यान इस महत्वपूर्ण प्रकरण की ओर गया और उसने अपने खुरई अधिवेशन में दिनांक २८-६-९३ को निम्न प्रस्ताव स्वीकृत कर प्रकाशकों एवं लेखकों से अनुरोध किया है कि वे आर्ष-ग्रन्थों में संशोधन करने से विरत रहें। प्रस्ताव निम्न प्रकार है। विश्वास है कि जैन समाज के विद्वान, सम्पादकगण एवं संस्थायें विद्वत परिषद की भावनाओं का महत्व समझकर आगम/आर्ष-ग्रन्थों को विकृत होने से बचाने में सहयोग देंगे।

"वर्तमान काल में मूल आगम ग्रन्थों के सम्पादन एवं प्रकाशन के नाम पर ग्रन्थकारों की मूल गाथाओं में परि-वर्तन एवं संशोधन किया जा रहा है जो आगम की प्रमाणिकता, मौलिकता एवं प्राचीनता को नष्ट करता है। विश्वमान्य प्रकाशन संहिता में व्याकरण या अन्य किसी आधार पर मात्रा, अक्षर आदि के परिवर्तन को भी मूल का घात माना जाता है। इस प्रकार के प्रयासों से ग्रन्थकार द्वारा उपयोग की गयी भाषा की प्राचीनता का लोप होकर भाषा के ऐतिहासिक चिह्न लुप्त होते हैं। अतएव आगम/आर्ष ग्रन्थों की मौलिकता बनाये रखने के उद्देश्य से अ० भा० दि० जैन विद्वत परिषद विद्वानों, सम्पादकों, प्रकाशकों एवं उनके ज्ञात-अज्ञात सहयोगियों से साग्रह अनुरोध करती है कि वे आचार्यकृत मूलग्रन्थों में भाषा, भाव एवं अर्थ-सुधार के नाम पर किसी भी प्रकार का फेरबदल न करें। यदि कोई संशोधन/परिवर्तन आव-श्यक समझा जाये तो उसे पाद-टिप्पण के रूप में ही दर्शाया जाय ताकि आदर्श मौलिक कृति की गाथायें यथावत ही बनी रहें और किसी महानुभाव को यह कहने का अवसर न मिले कि भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के २५०० वर्ष उपरान्त उत्पन्न जागरूकता के बाद भी मूल आगमों में संशोधन किया गया है।"

प्राचीन मूर्तियों का जीर्णोद्धार एवं गजरथ महोत्सव :

देवदर्शन श्रावकों की दैनिक आवश्यकता है। इस उद्देश्य हेतु जिन-मन्दिरों का निर्माण किया गया/किया जाता है। मंदिर निर्माण के साथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा समारोह भी होता है। हाल ही एक दशक से त्यागी वर्ग के कुछ महानुभावों को ऐसी धुन सवार हो गयी है कि वे जीर्णोद्धार के नाम पर अतिप्राचीन कलात्मक मूर्तियों को छैनी-हथौड़े से तराश कर विकृत/बेमेल बनाकर उनकी प्रतिष्ठा करवा रहे हैं। यवनों के विनाश से जो कुछ बचा था, उसका विनाश अब हमारे ही हाथों हो रहा है। भोली-भाली जनता इन सब बारीकियों एवं उनके महत्व को नहीं समझ पाती। त्यागियों को प्रमाणिक मानकर

उनके आदेशानुसार अपनी अर्जित धनराशि धार्मिक कार्य के नाम पर दान मे दे देती हैं। धर्म-प्रभावना का क्षेत्र भी मर्यादित है। देवगढ, सेरोनजी, चन्देरी आदि के प्राचीन कलात्मक क्षेत्र इस कृत्य के शिकार हो गये। इस प्रवृत्ति को रोकने हेतु अखिल भारतीय जैन विद्वत परिषद ने सूरई अधिवेशन में निम्न प्रस्ताव पारित किया जो अनुकरणीय है—

"वर्तमान काल मे जैन समाज मे कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ हो गयी है जिनमे प्राचीन कलाकृतियो, मूर्तियो और पुरातन शिल्पावशेषो को जीर्णोद्धार कर पुन प्रतिष्ठित करने के नाम पर मनमाने ढग से काटा-छाटा जा रहा है जो उनकी ऐतिहासिकता व उनके मूल स्वरूप पर आघात है। देवगढ, सेरोन एवं चन्देरी आदि स्थानो पर इसी प्रकार के आगमविरुद्ध कार्य किए गये है जिसमे कला कृतियों पर अंकित चिह्नो के स्थान पर नये चिह्न अंकित किए गये हैं। कही-कही तो इस प्रकार के कार्यों मे त्यागी वर्ग की प्रेरणा एव सक्रिय सहयोग भी लक्षित होता है। इस प्रकार के आगम-विरुद्ध कार्यों से हमारी सस्कृति और कला की जो हानि हो रही है वह अक्षम्य है। अतः विद्वत परिषदका सभी त्यागियो व श्रावको से यह सविनम्र अनुरोध है कि इन प्राचीन कला-कृतियो व पुरातन शिल्पावशेषो के सरक्षण मे सजग सहयोग प्रदान करे।"

पचकल्याणको के साथ गजरथ चलवाकर 'सिंघई", "सवाई-सिंघई" की पदवी देने की प्रथा चन्देरी मे चली थी। गजरथ चलवाना कोई धार्मिक-क्रिया का अग नही है यह तो मात्र धन-प्रदर्शन का तरीका था जिसे धार्मिक-क्रिया से जोड़ दिया था। पहले गजरथ महोत्सव यदा कदा ही हुआ करते थे और वह भी किसी परिवार विशेष द्वारा चलाये जाते थे, अब इनका स्वरूप शुद्ध व्यवसायिक एव वैभव प्रदर्शन का हो गया है। पहले एक पचकल्याणक के साथ एक गजरथ चलता था, अब एक पचकल्याणक के साथ अनेकों गजरथ चलाए जाने लगे है। गृहस्थ जन होड़ लगाकर सामूहिक रथ से एक गजरथ के स्थान पर उत्तरोत्तर बढ़ती सख्या मे गजरथ चलवाने की कीर्तिमान स्थापित कर रहे हैं। एक साधु महानुभाव तो अब श्री गजरथ- सागर ही कहलाने लगे हैं। इन गजरथो मे समाज का करोडो रुपया लग रहा है। बागोदा एव मुगावली मे ३ ३, जबलपुर एव देवगढ मे ५-५, अशोक नगर मे ७ गजरथ चले। अब ललितपुर मे गजरथ चलाने की तैयारी हो रही है। जहा ३-५ ७ गजरथ चले वहा सर्वेक्षण करने की जरूरत है कि इन आयोजनो मे समाज का कितना धन-जन का व्यय हुआ और समाज या संस्थाओ को इसमे कितनी क्या उपलब्धि हुई। यह भी विचारणीय है कि यदि इस धन का उपयोग शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य, निर्धन सहायता, अपंग-निवारण, परोपकार, शुद्ध आहार-व्यवस्था, प्राणी कल्याण के लिए कार्यो मे कर स्थायी लाभ लिया जा सकता है।

एक पंचकल्याणक के साथ इतने गजरथो का चलन नया तमाशा भी लग है। अब तो सोनागिरी मे "सिंहरथ" भी चला। [illegible] परि [illegible] कहां [illegible] ठहरेंगे हाथी। यदि इस प्रवृत्ति [illegible] प्रयत्न अत-हित का और [illegible] नहीं [illegible] अनुत्पादक कार्यों मे समाज का धन व्यय होता ही रहेगा। विशाल हाथी-समूह से जन रक्षा सुरक्षा की समस्या पैदा होती है। कभी-कभी हाथी-उन्माद मे निरपराध-जनहानि भी हो जाती है जैसी अशोक नगर मे हुई। यदि किसी को कही-कुछ-करने की तमन्ना है तो उन्हे चाहिये कि वे उचित वेशधारण कर धर्म या समाज के कल्याण का कार्य करे। इसमे वीतरागी चिह्न का दुरुपयोग एव स्खलन रुक जायेगा। विश्वास है कि समाज के प्रबुद्धजन इन बिंदुओ पर सम्यक् चिन्तन लेगे और अपने धन का उपयोग मानव-सेवा/प्राणी सेवा के क्षेत्र मे करने का विचार करेंगे। प्रदर्शन भाव से हाथियो की सवारियो पर किए गये करोडो रुपये के व्यय मे कोई धर्म नही होता भले ही प्रेरणादाता एव व्ययकर्ताओ के अहं की तुष्टि होती हो, यह पृथक बात है।

प्राचीन मंदिरोंके स्थान पर खुले परिसरका निर्माण :

पहले मूर्तियो की रक्षा सुरक्षा की दृष्टि से मंदिरों का निर्माण इस ढग से किया जाता था कि २०-२५ फीट ऊची विशाल मूर्ति वाला शिखर सहित मंदिर एक सामान्य मंदिर जैसा लगता था। दूर से कोई यह कल्पना भी नही कर सकता था कि मंदिर मे इतनी विशाल मूर्ति विद्यमान है।

पूजा-दर्शन आदि की सुविधा की दृष्टि से ऐसे मंदिरों के स्थान पर विशाल भवनों का निर्माण किया जा रहा है। इस व्यवस्था से विशाल मूर्ति खुले में आ जाती है जो सुरक्षा की दृष्टि से सर्वथा अनुपयुक्त एवं अवरोध रहित है। अब जबकि जैन मूर्तियों एवं जैन-संस्कृति को जैनो से ही खतरा पैदा होने लगा है उनकी सुरक्षा की समस्या बढ़ गयी है। दिनांक २५-९-८३ को बुदार नगर के मंदिर में एक जैन नवयुवक ने इस स्वप्न के अनुसार कि उसके संकट दूर होंगे पांच जैन मूर्तियो को माइक के राड से निर्ममतापूर्वक खण्डित कर शास्त्रो को फाड दिया। यदि वेदी-मूर्तियां आवृत्त होती तो सभवतः ऐसी दुर्घटना सरलता से नही घट पाती। धार्मिक-विद्वेष के उन्माद एवं अन्य कारणो से मूर्तियों की सुरक्षा हेतु यह आवश्यक है कि प्रथमतः प्राचीन मंदिरों का मूल-स्वरूप न बदला जाये और दूसरे जहां विशाल मूर्ति को अनावृत्त कर दिया है वहां तत्काल कोलेपसेबल-गेट लगाकर मूर्ति को सुरक्षित कर दिया जाये जैसे थूवोनजी, आहारजी आदि, तीसरे यदि प्रवचन हेतु विशाल हाल बनाया जाना आवश्यक है तो उसका निर्माण मंदिर से पृथक किया जाये।

मूर्ति-तस्करी से सुरक्षा :

विगत तीन दशको से भारत मे मूर्ति-तस्करी का उद्योग खूब पनपा है। जैन-संस्कृति ऐसे तस्करो के लिए स्वर्णिम-चरागाह सिद्ध हुआ। तस्करी एवं पंचकल्याणक का आयोजन दोनो एक-दूसरे के पूरक हैं। मंदिरो से मूर्तियों की चोरियों एवं बडी मूर्तियो के सिर काटने की घटनाये होती रहती है। हम पुलिस रिपोर्ट और दुकानें बन्द कर अपना कर्तव्य पूर्ण कर लेते हैं किन्तु समाज एवं त्यागीवर्ग मे इतना नैतिक साहस नही कि वे मूर्ति तस्करी के जानकार महानुभावो का हृदय परिवर्तन या बहिष्कार द्वारा मूर्ति तस्करी को हतोत्साहित करें। निश्चय-व्यवहार के नाम पर कटु से-कटु शब्द उपयोग किसी भी प्रसंग/प्रवचन मे सुनने को मिल जावेंगे किन्तु धर्म-संस्कृति की रक्षा के नाम पर दो शब्द भी नही मिलते। प्रसन्नता की बात है कि दिगम्बर जैन महासमिति ने इस पीड़ा को समझा और दिनांक ३०-१२-८० को जयपुर अधिवेशन मे निम्न प्रस्ताव पारित कर मूर्ति-तस्करी के विरोध मे अपना दृढ़ संकल्प स्पष्ट किया। जरूरत है कि समाज एवं संस्थाए इस प्रस्ताव के अनुसार कार्यवाही कर अपना मूर्ति-तस्करी-विरोधी संकल्प प्रमाणित करें। यदि ऐसा नही हुआ तो दक्षिण भारत का मूर्ति-वैभव भी हमारे देश से लुप्त हो जावेगा। इस सम्बन्ध में सम्माननीय स्वस्ति श्री चारुकीर्ति भट्टारक स्वामी श्रवणबेलगोल का भी ध्यान आकर्षित किया है।

ओ०पी० मिल्स अमलाई-४८४ : ११७

—भक्ति-परक सभी प्रसंग सर्वाङ्गीण याथातथ्य के स्वरूप के प्रतिपादक नहीं होते। कुछ में भक्ति-अनुराग-उद्रेक जैसा कुछ और भी होता है। जैसे—'शान्तेर्विधाता-शरणं गतानाम्', 'पुनातु चेतो मम नाभिनन्दनः', 'श्रेयसे जिनवृष प्रसीद नः' इत्यादि। इन स्थलों में कर्तृत्व की स्पष्ट पुष्टि है जब कि आत्म-स्वभाव इससे बिलकुल उलटा। ऐसे में विवेक पूर्वक वस्तु को परखना चाहिए कि वक्ता की दृष्टि क्या है?

× × × ×

—तू ज्ञानी, धनी या कहीं का कोई अधिकारी है, यह सोचना महत्त्वपूर्ण नहीं। अपितु महत्त्वपूर्ण ये है—कि तूने कितनों को ज्ञानी धनी या अधिकारी बनने में कितना योग दिया :—

'जो अधीन को आप समान। करै न सो निन्दित धनवान॥'

"सेसई का शान्तिनाथ मन्दिर"

श्री नरेश कुमार पाठक

सेसई मध्य प्रदेश के शिवपुरी जिले की कोलारस तहसील में स्थित है। आगरा-बम्बई मार्ग पर ग्वालियर से १३२ किलो मीटर एव शिवपुरी से २० किलो मीटर की दूरी पर सेसई ग्राम है। यह ७७°३७' पश्चिम, २५°१९' उत्तर मे स्थित है। समुद्र की सतह से ऊँचाई १७३६ फीट है। यहाँ से गुप्तलिपि मे उत्कीर्ण स्मारक स्तम्भ लेख जिसमे कुछ ब्राह्मण युवको द्वारा किसी युद्ध मे मारे जाने तथा उसकी माता द्वारा दु.ख से जल मरन का उल्लेख है।[1] यहाँ से एक अन्य ६वीं शताब्दी ईस्वी का स्मारक स्तम्भ लेख है।[2] जैन मन्दिर के पश्चिम की ओर स्मारक स्तम्भ जिस पर लगभग ६-७वी शताब्दी ईसवी का लेख उत्कीर्ण है। लेख मे एक माता द्वारा अपने पुत्रों के युद्ध मे मृत हो जाने के शोक मे आत्मदाह करने का उल्लेख है।[3] स्मारक स्तम्भ के निकट २री शती स्मारक जिस पर अस्पष्ट लेख उत्कीर्ण है।[4] विक्रम सवत् १३४(?) (ईस्वी सन् १२८४) का सती प्रस्तर लेख जिसमे मलयदेव की मृत्यु तथा सती का उल्लेख है।[5] सती स्मारक के दक्षिण की ओर प्राचीन बावडी के भग्नावशेष[6] गाँव के दक्षिण-पश्चिम मे प्राचीन शैव मन्दिर के भग्नावशेष[7] एव लगभग १०वी-१२वी शताब्दी ईस्वी का सूर्य मन्दिर है।[8] इन्ही मन्दिरों के पास लगभग ११वी-१२वी शताब्दी ईस्वी के जैन मन्दिर के अवशेष है।[9]

यह मन्दिर दिगम्बर जैन मन्दिर नौगजा अतिशय क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। मन्दिर पश्चिमाभिमुखी एव तीर्थंकर शान्तिनाथ को अर्पित है। प्राचीन मन्दिर काफी नष्ट हो जाने के कारण उसका जीर्णोद्धार कराकर नवीन रूप दे दिया गया है। लेकिन मन्दिर के गर्भगृह का द्वार प्राचीन ही है। तल-विन्यास मे गर्भगृह मण्डप एवं प्रदक्षिणापथ मे विभाजित है। ऊर्ध्व विन्यास मे जगति, जघा एव शिखर है। मन्दिर का गर्भगृह सादा है, जिसमे कायोत्सर्ग मुद्रा मे तीर्थंकर शान्तिनाथ की विशालकाय प्रतिमा प्रतिष्ठापित है। पास मे ही एक अन्य तीर्थंकर प्रतिमा पद्मासन मे बैठी है। गर्भगृह के द्वार की देहरी पर लड़ते हुए गज, सिंह पूजक एव पूर्ण विकसित कमल लिए है। द्वारशाखा मे दोनों ओर नदी देवी गगा-यमुना एव युगल प्रतिमाओं का अकन है। सिरदल पर पद्मासन मे तीर्थंकर बैठे हुए है, जो प्रभामण्डल से अलकृत है। पादपीठ पर विपरीत दिशा मे मुख किये सिंहो का अकन है। ऊपरी पट्टिका पर पद्मासन एव कायोत्सर्ग मुद्रा मे जिन प्रतिमा बनी है। इसके ऊपर की पट्टिका पर नवग्रह यक्षणी चक्रेश्वरी एव विद्यादेवी सरस्वती एव अन्य प्रतिमाओ का अकन है। मण्डप के द्वार स्तम्भ घटपल्लव एव कीचकों से अलकृत है। दोनो ओर के स्तम्भो पर दोनो पार्श्व मे द्वारपाल है, जो एक भुजा मे चावर एव दूसरी भुजा कमर पर है, यह कुण्डल, ग्रैवेयक, केयूर, वलय, मेखला एव वनमाला धारण किए है। स्तम्भो के दोनो ओर कायोत्सर्ग मे जिन प्रतिमा एव मालाधारी विद्याधरो का अकन है। इसी मन्दिर की एक जैन प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा मे निकट सूर्य मन्दिर मे रखी है। यह मन्दिर काफी महत्वपूर्ण है, जिसका विस्तार मे अध्ययन आवश्यक है। इसके अलावा जिला सग्रहालय शिवपुरी मे यहाँ की दो तीर्थंकर प्रतिमा सुरक्षित है।

सन्दर्भ-सूची

१. ग्वा. पु. रि. वि. सवत् १९८६ पृष्ठ ३७।
२. ,, ,, १९२९-३० पृ. २६-६३।
३. ,, ,, ,, पृ. ,,
४. ,, ,, ,, पृ. ,,
५. ,, वि. सवत् १९७१ क्रमाक २१।
६. ,, ,, १९२९-३० पृ. २६-६३
७. ,, १९१६-१७
८. ,, १९१४-१५
९. ,, १९१४-१५

सत्य को पहचानिए

"हमारे साथ जो डाक्टर विद्वान् थे, जिन्होने पहली बार साधु संघों में कुछ ऐसा देखा, जो वीतरागता के फ्रेम में फिट नहीं बैठता, उन्होने कुछ दृश्यो पर साश्चर्य वेदना व्यक्त की। हमने उनसे इतना ही कहा—

रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहें लोग सब, बाटि न लैहें कोय॥"

—जैन गजट, सपादकीय ३० जून ६४

उक्त विचार एक प्रबुद्ध सपादक के है। सपादक जी स्वयं चारित्रवान् और सच्चारित्र समर्थक है, उन्हें मुनि और श्रावक की चर्या का भी पूरा ज्ञान है। वे धर्म-संरक्षणी विशेषण-युक्त महासभा के प्रतिष्ठित सक्रिय कार्यकर्ता भी हैं। उनके उक्त कथन मे कितना दर्द और कितनी वेदना है—इसे पाठक महसूस करें। इसी लेख में उन्होने समाज के प्रति भी लिखा है—

'एक दूसरे के सुनने-समझने की पद्धति का अभी अपने समाज मे विकास नहीं हुआ है।'

इसी प्रकार दिगम्बर जैन महासभा ने अपने लखनऊ अधिवेशन में चा० च० पू० आ० शान्तिसागर महाराज को इस सदी का प्रथम आचार्य घोषित कर अकलीकर प्रसग के पटाक्षेप की कामना की है। स्मरण रहे यह कलहकारी प्रसंग भी किन्हीं पूज्य मुनिराज द्वारा ही उछाला गया है। सच्चाई को उजागर करने के लिए महासभा को धन्यवाद।

गत दिनों हमारे पास एक नेता का पत्र आया है कि 'क्या सत्य है और क्या असत्य इसका कभी कोई मूल्याकन इस समाज मे नही होगा।'

उक्त सभी प्रसग सामाजिक मनोदशा एव त्याग की बिगडी स्थिति को जिस रूप मे प्रस्तुत करते हैं वह सर्वथा चिन्तनीय है - पर हम निराश नही हैं। हमारी दृष्टि तो इसी समाज पर लगी है। हम यह जाननेके ही प्रयत्न मे है कि क्या वास्तव मे ही समाज अच्छे बुरे की पहिचान मे नाकारा है? यदि ऐसा होता तब न तो पं० नरेन्द्र प्रकाश जी ही सत्य मनोभावना उजागर करते और न महासभा ही पू० आ० शान्तिसागर जी को मान दे—अकलीकर प्रसग के पटाक्षेप की बात कहती।

स्मरण रहे लोग असलियत भी समझते है—हाँ, धर्म भीरुत्व, अन्धश्रद्धा, स्वार्थपरता और बुराई उजागर होने का आतंक आदि उन्हे मौन के लिए प्रेरित करते हैं। और उनकी इसी कमजोरी का गलत फायदा उठाकर कुछ लोगो ने परपरित मूल-आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा विहित श्रावक व मुनि के आचार की मिट्टी खराब कर रखी है। और दिगम्बर विहित दिगम्बर-धर्म दिनो-दिन क्षीण हो रहा है। आशा है कुछ प्रबुद्ध-जन धर्म-रक्षण रूप यज्ञ प्रारम करेंगे और आहुति डालेंगे। ताकि दिगम्बरत्व की रक्षा हो।

—सम्पादक

मत परिग्रह कर यहाँ कुछ थिर नहीं है, व्यर्थ है संग्रह, जरूरत चिर नहीं है।
हो सको अपनो न बोलत रूप सो भो, मौत से पहिले निजो तन, फिर नहीं है॥

× × × ×

'छद्मस्थ-लौकिक पुरुष चाहे कितने भो प्रसिद्ध विद्वान् क्यों न हों? उन सभो के सभी लेख, वार्तालाप सैद्धान्तिक-प्रसंगों में जिनागम का रहस्योद्घाटन नहीं करते—उनमें कुछ और भो हो सकता है। अतः ज्ञानी पुरुष प्रमाण और नय की कसौटी पर परखकर हो उनकी हेयोपदेयता का निर्णय करते हैं। वे उनके मन्तव्यों को प्रचारित भो तभी करते हैं।'

जरा-सोचिए

१. दिगम्बरत्व की रक्षा एक समस्या :

इसी अंक मे दिगम्बरत्व के प्राचीनत्व को दर्शाया गया है और वर्तमान समाज के समक्ष उसकी रक्षा का उत्तरदायित्व है। यत: वर्तमान काल मे उक्तरूप मे धीरे धीरे शिथिलता आती परिलक्षित होती है और कही-कही तो उसके नियमो के पालन मे विरूपता भी दृष्टिगोचर होने लगी है। यदि ऐसा ही चलता रहा तब इसमे सन्देह नही कि दिगम्बरत्व की प्राचीनता पूर्णरूप से नवीनता का रूप धारणकर ले और दिगम्बरत्व का ऐसा वैभाविक (दोषपूर्ण) रूप ही भविष्य मे प्राचीन दिगम्बर कहलाए। यदि ऐसा होता है तो यह अवश्य ही उन श्रावको की धर्म के प्रति महान् कृतघ्नता होगी जो अपने सासारिक वैभवो की वृद्धि हेतु प्रकारान्तर से दिगम्बरो को विरुद्ध मार्ग पर चलने के साधन जुटाते रहे है और अब भी दूसरो को कहने का अवसर देने का सामान कर रहे है कि ये दिगम्बर तो उनके देखते-देखते इसी काल की उपज है।

यह बात किसी से छिपी नही है कि कई बाह्य वेष धारी व्यक्ति आगमानुरूप आचरण का तिरस्कार कर मनमानी यथेच्छ प्रवृत्तियो मे लग रहे हैं और यदा-कदा समाचार पत्रों मे भी ऐसे समाचार देखने मे आते हैं। यदि आचार मे मनमानी स्वच्छन्द प्रवृत्तियो मे विस्तार होता है तो यह धर्म-रक्षा के प्रति अत्यन्त चिन्तनीय होगा।

जब हमारे पूर्वजो ने हमे चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्ति सागर जी के दिगम्बर रूप के दर्शनो का सौभाग्य प्राप्त कराया था वह सच्चा दिगम्बर रूप था। तब आज हम अपनी भावी-पीढ़ी को आज के कतिपय ऐसे दिगम्बर दे रहे हैं, जो कुन्दकुन्द के वचनो की अवहेलना कर, सुख-सुविधायुक्त स्थानो को चुनते हैं, एकान्तवास (विविक्त शय्यासन) न कर भीड से घिरे रहते हैं। कुछ तो धर्म-प्रचार या संस्था आदि के नामो पर चन्दा-चिट्ठा कर अपनी अयाचीक वृत्ति को भी लांछित करते हैं, आदि। ऐसे मे हमारी भावी पीढी भविष्य में अवश्य कहेगी कि हमारे बुजुर्गों ने हमें ऐसे ही दिगम्बर दिए और ये ही सच्चे गुरु के रूप हैं, आदि।

सोचिए उक्त स्थिति में क्या हम दिगम्बरत्व के उस प्राचीन रूप को खो न देंगे जो ऋषभ और भगवान महावीर का है? ऐसे मे क्या हम कह सकेंगे कि हमारा आगम-विहित प्राचीन दिगम्बरत्व रूप यही है?

स्मरण रहे कि आज के कुछ नवयुवक और वयस्क भी बडे सावधान हैं। वे बातो को गहराई मे सोचते हैं। उस दिन बाहर से पधारे कुछ युवको ने हमे घेर लिया और चर्चा करने लगे कि—कोई-कोई मुनिराज एक ही शहर मे वर्षों डेरा क्यों डाले रहते हैं, जब कि कहा जाता है कि 'पानी बहता भला और साधु चलता भला।' वे बोले—आचार्य विद्यासागर जैसे कुछ मुनि तो ऐसे भी हैं जो यदा-कदा ही अल्पकाल के लिए शहरो मे जाते हैं—साधारण स्थानो मे ही अधिक भ्रमण करते हैं। और भी उनकी शास्त्र-विहित बहुत सी क्रियाओ का उन युवको ने वर्णन किया।

हमने कहा—शहरों का वातावरण अधिक दूषित होता, बनिस्बत देहातों और कस्बो के। ऐसे मे जो साधु अधिक ज्ञाता और परोपकार की भावना रखते हों वे जन-सुधार के लिए यदि शहरो मे डेरा डाले रहे तो जनता का लाभ ही है—सुधार ही होता है।

वे बोले—यदि ऐसा है तब तो आप ही बताइए कि पहले जिस शहर मे श्रावक के साधारण नियम (रात्रि-भोजन त्याग जैसे नियम) पालको की जितनी सख्या थी, उन शहरों मे इनके रहने से उस सख्या मे कितनी वृद्धि हुई? ऐसे ही अन्य धार्मिक आचार पालकों की सख्या भी देखिए। हमे तो उस सख्या में वृद्धि के स्थान पर ह्रास ही अधिक दिखा, उल्टे श्रावको में शिथिलता की

बढ़वारी दिखी। यह कैसा प्रचार जहाँ पल्लाझाड़ श्रोता हो और आचार के नाम पर शून्य।

वे आगे बोले—प्रचार मनमोहक भाषणों की अपेक्षा स्वयोग्य शास्त्रविहित आचार के पालन से अधिक होता है। और वास्तव में जब आचार में सुधार न हो तब प्रचार का क्या महत्त्व? यदि लम्बे भाषणों से ही धर्म-प्रचार होना होता तब दिगम्बरों को मूलगुण गर्भित 'भाषा समिति' में मित (कम) के स्थान पर अति बोलना होता। पर, ऐसा नहीं है। वे बोले—हम तो इसमें उन श्रावकों को ही दोष का भागीदार मानते हैं जो दिगम्बरत्व की सेवा में भी व्यापारिक मनोवृत्ति बरतते हैं। वे धतूरे का फूल चढ़ाकर महादेव से लूट धन-सम्पदा चाहने जैसे वरदान की चाह में, पवित्र नग्न दिगम्बरों को अपने निवासों की पवित्रता और आयु-श्री-वृद्धि जैसे आशीर्वादों की चाह में निर्मोहियों पर भी मोहजाल फेंकते हैं। और उनके साथी यह सब देख मौन सहमति देने में लगे रहते हैं। ऐसे लोगों के परस्पर ऐसे व्यवहार से कभी कभी ऐसा सन्देह होने लगता है कि ऐसे लोगों को मानो धर्म—श्रावक और मुनि की क्रिया से कोई प्रयोजन न हो और जयकारे और माला प्रदान कराने जैसे कोई मानसिक भाव जगे हों, तब भी आश्चर्य नहीं, आदि।

हमने कहा—उक्त सचाई सर्वथा सन्देहास्पद ही है। पर यदि यह सच हो तो चिन्तनीय अवश्य है। यदि दिगम्बरत्व के पूर्व प्राचीन रूप में स्थिरता नहीं आती तो दिगम्बर और दिगम्बरत्व न बचेंगे और लोग हाथ मलते रह जाएँगे। और हाथ मलना भी कहाँ? जब बाँस ही नहीं तो बाँसुरी किसकी बनेगी। और बजेगी भी क्या? सब शून्य मौन होगा, न दिगम्बर जैन होगा और न इस धर्म के पालक दिगम्बर जैनी ही। आज तो कुन्दकुन्द-विहित आचार भी बदला जा रहा है। दिगम्बरचर्या कहाँ और कैसी होनी चाहिए, इसे सोचें। हम श्रावक अपने आचार में कहीं पाप के पुंज तो नहीं हुए जा रहे इसे भी गहराई में सोचें और अपने खान-पान आदि में भी श्रावकोचित कार्य करें।

२. स्वागत की विडम्बना :

स्वागत शब्द बड़ा प्यारा है। ऐसे विरले ही व्यक्ति होंगे जो स्वागत के नाम से खुश न होते हों, मन ही मन जिनके मनों में गुदगुदी न उठती हो। प्रायः सभी को इसमें खुशी होती होगी—भले ही दूसरों का स्वागत होते देख कम और अपना होने पर अधिक। स्वागत अब लोक-व्यवहार जैसा बन गया है जो नेता, अभिनेता या अन्य जनों के उत्साह बढ़ाने के लिए, उनसे कोई कार्य साधने के लिए भी निभाया-सा जाने लगा है। खैर, जो भी हो परम्परा चल पड़ी है—कोई स्वागत न भी करना चाहे तो उसके स्वागत कराने की गोटी बिठाने की। लोग गोटी बिठाए जाते हैं—कभी न कभी तो सफलता मिल ही जाती है और यदि न मिली तो मिल जायगी।

बड़प्पन का भाव व्यक्ति का स्वभाव-सा बन गया है। लोगों का बड़प्पन साधने के लिए जन-सभाओं में ऊँचे मंच बनाए जाते हैं—नेताओं को बड़प्पन देने के लिए, मंचों पर स्वयं बैठकर अपना बड़प्पन दिखाने के लिए भी। आखिर, मंच निर्माता इसी बहाने ऊँचे क्यों न बैठें? या अपने सहकर्मियों को ऊँचा क्यों न बिठाएं? आखिर वे यह जो न कह बैठें कि बड़ा आया अपने को ऊँचा बिठा लिया, आदि। सो सब मिल बाँट कर श्रेय लेते हैं। किसी को कोई एतराज नहीं होता। आखिर, होते तो सभी एक थैली के चट्टे-बट्टे जैसे ही हैं।

हमने कई सभाओं में आँखों से भी देखा है—स्टेज पर अपनों में अपनों में एक दूसरे को माला पहिनते पहिनाते, पहिनवाते हुए। और लोग हैं कि नीचे बैठे इस ड्रामे को देख खुश होते—ताली बजाते नहीं अघाते—जैसे वे किसी लंका को विजय होते देख रहे हों। पर, हम नहीं समझ पाए कि इस व्यर्थ की उठा-धरी से क्या कोई लाभ होना है?—केवल समय की बरबादी के। जरा सोचिए!

—सम्पादक

वर्ष ४६ अंक १ का शेष भाग :

श्री लंका में जैनधर्म और अशोक

□ श्री राज मल जैन, जनकपुरी, दिल्ली

यदि सचमुच ही अशोक ने बौद्धधर्म का प्रचार किया होता, तो वह अपने शिलालेखों में इस बात का उल्लेख अवश्य करता कि उसने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को श्रीलंका मे बौद्धधर्म के प्रचार के लिए अपने शासनकाल के अमुक वर्ष में भेजा है। उसने बौद्धग्रन्थों का तो तथाकथित उल्लेख किया, पुत्र पुत्री के महत्त्वपूर्ण अभियान का उल्लेख नही किया। क्या उनकी महत्ता उन अशो से कम थी ?

डा० भाडारकर, विन्सेन्ट स्मिथ, काशीप्रसाद जायसवाल (मौर्य साम्राज्य का इतिहास) जैसे अनेक इतिहासकार यह स्वीकार करते हैं कि अशोक अपने प्रारम्भिक जीवन मे अवश्य ही जैन था। ऊपर दिये गये अनेक तथ्य भी यही सकेत देते हैं कि अशोक ने जैनधर्म का ही प्रचार किया और उसके जैनधर्मानुयायी शिलालेखों का केरल पर भी प्रभाव पडा।

कालातर में अशोक के "देवानांप्रिय"—देवताओं को भी प्रिय की वडी दुर्गति हुई जान पडती है। इस शब्द का अर्थ पशुप्रो के समान मूर्ख या बकरा हो गया (देखिए आप्टे का सस्कृत—अग्रेजी कोश)।

अशोक के पूर्वज चन्द्रगुप्त और बिंदुसार जैन थे और उसके उत्तराधिकारी कुणाल, सम्प्रति, दशरथ और बृहद्रथ सभी जैनधर्म के अनुयायी थे। ऐसा लगता है कि अधकचरी जानकारी के आधार पर उसे बौद्ध कह दिया गया है।

ऊपर लिखित तथ्य यह सकेत देते हैं कि अशोक के समय मे भी केरल मे जैनधर्म का प्रचार रहा और उसने भी जैनधर्म के समता या सर्वधर्म समभाव, अहिंसा, जीवदया आदि का प्रचार किया।

श्रीलका सम्बन्धी तथ्यो के आधार पर यह सम्भव जान पड़ता है कि श्रीलका मे जैनधर्म बौद्धधर्म से भी पहले विद्यमान था। यहां नाग या असुर जाति के लोग बसते थे तथा नग्न मुनि भी वहां थे। प्रश्न हो सकता है कि नग्न जैन मुनि वहां कैसे पहुंचे ? बीच में तो समुद्र है। इसका उत्तर डा० पद्मनाभन ने इस प्रकार दिया है— "Presumably the Jain monks who had been in Ceylon migrated from Iddia through Kanyakumari, to the South of which was a large mass of land, subsequently swallowed by sea. the fact that the Jain doctrines do not allow their monks to cross the sea must be remembered." अतएव यह कथन कि श्रीलंका में जैनधर्म तमिलनाडु के पूर्वी तट से पहुंचा होगा युक्तिसंगत नही लगता। अत: केरल में ईसा पूर्व पांचवीं-छठी शताब्दी में जैनधर्म विद्यमान होने की सम्भावना प्रबल है।

प्रसिद्ध पुरातत्वविद फर्ग्यूसन ने लिखा है कि कुछ यूरोपियन लोगों ने श्रीलका में सात और तीन फणों वाली मूर्तियों के चित्र लिए थे। सात या नौ फण पार्श्वनाथ की मूर्ति पर और तीन फण उनके शासनदेव धरणेन्द्र एव शासनदेवी पद्मावती की मूर्ति पर बनाए जाते हैं। इस प्रकार के बहुत से जैन अवशेष नष्ट हो गए। ईसा पूर्व ३८ मे श्रीलका के शासक वट्टगामिनी ने जैन मन्दिरों और मठो का ध्वस कराकर उनके स्थान पर बौद्ध मंदिर और विहार बनवाए थे।

श्रीलका सम्बन्धी उक्त तथ्य यह प्रमाणित करते हैं कि चन्द्रगुप्त मौर्य के दक्षिण आगमन से पूर्व ही जैनधर्म केरल के रास्ते श्रीलका मे फैल चुका था।

B-1/324, Janakpuri, New Delhi-58

आजीवन सदस्यता शुल्क : १०१.०० रु०
वार्षिक मूल्य : ६) रु०, इस अंक का मूल्य : १ रुपया ५० पैसे

कागज प्राप्ति :—श्रीमती अंगूरी देवी जैन, धर्मपत्नी श्री शान्तीलाल जैन कागजी के सोजन्य से, नई दिल्ली-२

Regd. with the Registrar of Newspaper at R. No. 10591/62

वीर-सेवा-मन्दिर के उपयोगी प्रकाशन

सम्पादन परामर्शदाता : श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, सम्पादक : श्री पद्मचन्द्र शास्त्री

प्रकाशक—भारतभूषण जैन एडवोकेट, वीरसेवा मन्दिर के लिए, गीता प्रिंटिंग एजेन्सी, डी०-१०५, न्यूसीलमपुर, दिल्ली-५३ द्वारा मुद्रित

प्रिन्टेड
पत्रिका बुक-पैकिट
'ANEKANT' Periodical—June 1994

वीर सेवा मन्दिर का त्रैमासिक

अनेकान्त

(सम्मेदशिखर-विशेषांक)

(प्र. प्रवर्तक : आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर')

वर्ष ४७ : कि० ३ जुलाई-सितम्बर १९९४

इस अंक में—

क्र० विषय पृ०

प्रकाशक :

वीर सेवा मन्दिर, २१ दरियागंज, नई दिल्ली-२

पूज्य बड़े वर्णी जी ने कहा

श्रोताओं को मनमानो सुना देना, अपनी प्रभुता जमाना, पाण्डित्य प्रदर्शन करना तथा 'हम ही सब कुछ है' इत्यादि मनोविकारों के होते आत्मकल्याण की लिप्सा अन्धे मनुष्य के हाथ में दर्पण सदृश है। दूसरा मनुष्य उस दर्पण से चाहे मुख देख भी सकता है परन्तु अन्धे को कोई लाभ नहीं।
(२५।८।४८)

यदि आत्म कल्याण करना चाहते हो तो बाह्याडम्बरों का प्रभुत्व देख इनसे पृथक् होने की चेष्टा करो। व्यर्थ की प्रशंसा में पड़कर आत्मा को वंचित करने का ढंग मत बनो। जितने भी प्रशंसा करने वाले हैं सभी आत्मतत्त्व से दूर हैं। प्रशंसा करना और प्रशंसा की लालसा करना दोनों ही सहोदरी हैं। भगवान की आज्ञा तो यह है कि यदि कल्याण चाहते हो तो न तो झूठी प्रशंसा करो, न कराओ।'
(२६।४।५१)

'किसी से विशेष परिचय मत करो' यही शास्त्र की आज्ञा है परन्तु हे आत्मन्, तुम इसका अनादर करते हो अतः अनन्त संसार के पात्र होगे। तुमने आज तक जो दुख पाए उनका स्मरण दुखदायी है। परन्तु तुम इतने सहिष्णु हो गए हो कि अनन्त दुखों के पात्र होकर भी अपने आपको सुखी मानते हो।
(२२।१।४७)

जो घर छोड़ देते हैं वे भी गृहस्थों के सदृश व्यग्र रहते हैं? कोई तो केवल परोपकार के चक्र में पड़कर स्वकीय ज्ञान का दुरुपयोग कर रहे है। कोई हम त्यागी हैं, हमारे द्वारा ससार का कल्याण होगा ऐसे अभिमान में चूर रहकर कालपूर्ण करते हैं।
(३१।५।५१)

चित्तवृत्ति शमन करने को आत्मश्लाघा त्यागने की महती आवश्यकता है। स्वात्म प्रशसा के लिए ही मनुष्य प्रायः ज्ञानार्जन करते हैं, धनार्जन करते हैं। पर मिलता-जुलता कुछ नहीं।
(२१।१२।४८)

मेरा यह दृढ़तम विश्वास हो गया है कि धनिक वर्ग ने पण्डितवर्ग को बिलकुल ही पराजित कर दिया है। यदि उनको कोई बात अपनी प्रकृति के अनुकूल न रुचे तब वे शीघ्र ही शास्त्र-विहित पदार्थ को भी अन्यथा कहलाने की चेष्टा करते है।
(२०।६।५१)

(वर्णी-वाणी से साभार)

आजीवन सदस्यता शुल्क : १०१.०० रु०

वार्षिक मूल्य : ६) रु०, इस अंक का मूल्य : १ रुपया ५० पैसे
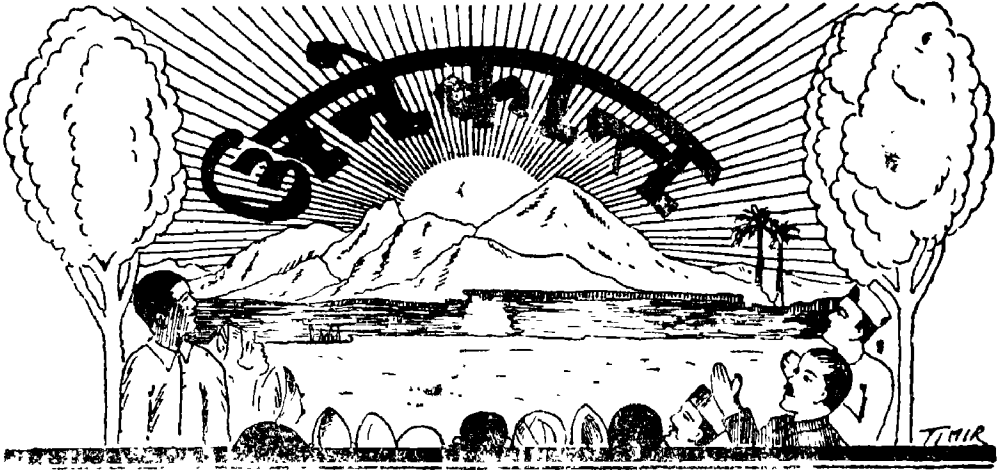
परमागमस्य बीजं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम् ।
सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् ॥

वर्ष ४७ किरण ३ | वीर-सेवा मन्दिर, २१ दरियागंज, नई दिल्ली-२
वीर-निर्वाण संवत् २५२०, वि० सं० २०५१ | जुलाई-सितम्बर १९९४

ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावै ?

ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावै,
जाको जिनवाणी न सुहावै ॥

वीतराग सा देव छोड़ कर, देव-कुदेव मनावै ।
कल्पलता, दयालता तजि, हिंसा इन्द्रासन बावै ॥ ऐसा० ॥

रुचे न गुरु निर्ग्रन्थ भेष बहु, परिग्रही गुरु भावै ।
पर-धन पर-तिय को अभिलाषै, अशन अशोधित खावै ॥ ऐसा० ॥

पर को विभव देख दुख होई, पर दुख देख लहावै ।
धर्म हेतु इक दाम न खरचै, उपवन लक्ष बहावै ॥ ऐसा० ॥

ज्यों गृह मे संचै बहु अघ, त्यों वन हू में उपजावै ।
अम्बर त्याग कहाय दिगम्बर, बाघम्बर तन छावै ॥ ऐसा० ॥

आरंभ तज शठ यंत्र-मंत्र करि, जनपै पूज्य कहावै ।
धाम-वाम तज दासी राखै, बाहर मढ़ी बनावै ॥ ऐसा० ॥

श्री सम्मेद-शिखर-प्रसंग

श्री सम्मेद शिखर जी सिद्ध क्षेत्र अनादि निधन तीर्थ है। यहाँ से २४ में से २० तीर्थंकरों एवं असख्यात दिगम्बर मुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया है इस लिए यह जैन धर्म के अनुयायियों को असीम श्रद्धा का पूज्यनीय स्थान है। पर्वत पर प्राचीन बीस तीर्थंकरों की टोकों और एक गणधर गौतमाचार्य की टोक मे दिगम्बर मान्यता के चरण चिन्ह विराजमान हैं।

शास्त्रो मे उल्लेख मिलता है कि ईसा पूर्व में भी यात्रीगण इस पर्वत की वन्दना को आते थे। कुन्दकुन्द आचार्य ने निर्वाण काण्ड मे श्री सम्मेद शिखरजी की वन्दना की है।

'बीसं तु जिणवरिंदा अमरासुरवंदिदाधुद कलेसा।
सम्मेदे गिरि सिहरे णिव्वाण गया णमोतेसि॥'

अर्थात्--"श्री सम्मेद जिनेश्वर बीस। भाव सहित वन्दों निशि-दीस॥

यह भी उल्लेख मिलता है कि श्रेणिक राजा ने पर्वत की टोकों का जीर्णोद्धार कराया था। इसके बाद नानू ने भी टोकों का जीर्णोद्धार कराया था। मुर्शिदाबाद की जैन समाज द्वारा टोकों के जीर्णोद्धार का उल्लेख मिलता है।

वर्तमान मे कुछ दातारों ने जीर्णोद्धार के नाम पर टोकों की प्राचीनता बिल्कुल नष्ट करने का प्रयत्न किया है। क्षेत्र की प्राचीनता को नष्ट करना किसी भी दृष्टि से सही नहीं माना जा सकता बल्कि इस कृत्य की जितनी भी भर्त्सना की जाय कम है।

ऐसा प्रतीत होता है कि एक वर्ग विशेष जो तीर्थ पर अनधिकृत कब्जा किए हुए है उसका ही यह घिनोना कृत्य है।

प्राचीन साक्षियों, न्यायालयों के निर्णयों से स्पष्ट है कि यह जघन्य अपराध क्षम्य नहीं है।

पर्वत की तलहटी मधुबन में दिगम्बर जैनों की बीस पंथी कोठी का निर्माण आज से चार सौ से भी अधिक वर्ष पूर्व हुआ था जबकि श्वेताम्बर कोठी उसके २५० वर्ष बाद बनी है

हम यहां श्वेताम्बर आगमों, विश्वमान्यग्रन्थो और अदालती फैसलों आदि के आधार पर श्री सुभाष जैन का लेख प्रकाशित कर रहे हैं ताकि समाज में किसी भी प्रकार की भ्रान्ति न रहे और वह वस्तु स्थिति से अवगत हो। हम इस तथ्यपूर्ण खोज के लिए श्री सुभाष जी के अथकश्रम की सराहना करते है कि उन्होने भ्रम का पर्दा हटाने का अपूर्व कार्य किया है।

—सम्पादक

श्री पार्श्वनाथाय नम

श्री सम्मेद शिखरजी (पारसनाथ पर्वत) के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण तथ्य

वस्तुस्थिति

मूर्तिपूजक श्वेताम्बर जैन समाज के नेताओ द्वारा दिगम्बर जैन समाज पर निरन्तर अनर्गल आरोप लगाए जा रहे है, जिनमे उनका मुख्य आरोप यह भी है कि श्वेताम्बर मत दिगम्बरो से प्राचीन है, जो न तो तथ्यात्मक आधार पर सही है और न ही सामाजिक एव मानवीय दृष्टि से शोभनीय है। हम यहा उनके आरोपो का निराकरण **उन्हीं के धर्मग्रन्थों, विश्वमान्य संदर्भ ग्रंथो** एव **न्यायालयों के निर्णयों** के आधार पर प्रस्तुत कर रहे है जिससे *समाज मे किसी प्रकार के भ्रम की गुजाइश न रहे।*

श्वेताम्बर शास्त्रों के अनुसार दिगम्बर प्राचीन

1 श्वेताम्बराचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने **विशेषावश्यक भाष्य** की गाथा 3076 मे उल्लेख किया है कि **जिनकल्प (नग्नता) जम्बू स्वामी के बाद छिन्न हो गयी** अर्थात उसके पूर्व दिगम्बरत्व था।

'मण परमोधि पुलाए आहारगखवग उवसमे कप्पे।
सजमतिय केवलिसिज्झणा य **जंबुम्मि वोच्छिण्णा**।।'

'मन पर्ययज्ञान, परमावधिरुत्कृष्टमवधिज्ञानम्, पुलाकलब्धि, आहारकशरीरकलब्धि., क्षयोपशमश्रेणिद्वयम्-कल्पग्रहणाज्जिनकल्प, सयमत्रिक–परिहारविशुद्धिसूक्ष्म सापराय-यथाख्यातानि, केवलज्ञान, सिद्धगमन च। एतेऽर्थम्बुनाम्नि सुधर्मगणधरशिष्ये व्युच्छिन्ना–तस्मिन् सति अनुवृत्ता **तस्मिन्निर्वाणे व्युच्छिन्ना** इति।'–(वही टीका)।

–प्रकाशक लालभाई दलपतभाई, भारतीय सस्कृति विद्यामदिर, अहमदाबाद, 1968

2 प्रसिद्ध श्वेताम्बराचार्य श्री हेमचन्द जी ने "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष" (आदिनाथ) चरित्र, पर्व-1, सर्ग-3, श्लोक 292-293 मे स्वीकार किया है कि **ऋषभदेव ने पाणिपात्र (हाथो में)** मे आहार ग्रहण किया, जबकि श्वेताम्बरो मे पाणिपात्र का नियम नही है।

'प्रभुरप्यंजुलिकृत्य पाणिपात्रमधारयत्।'–292
'भूयानपिरस. **पाणिपात्रे** भगवो पपौ।'–293

–प्रकाशक श्री जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, सवत 1961

3 'विशेषावश्यक भाष्य' से उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है कि **ऋषभदेव आदि सभी (चौबीसों) तीर्थंकर पाणिपात्र** आहार ग्रहण करते थे।

'निरुवमधिसघयणा चउनाणाइ सयसत्त सपण्णा।
अच्छिद्दपाणिपत्ता जिणा जिय परीसहा सव्वे।।'
–गाथा 3083

'जिना हि **सर्वे** निरुपमधृतयो वज्रकटकसमान परिणामा भवन्ति, तथा चतुर्ज्ञानिनश्छद्मस्था सन्तोऽतिशयवन्तश्च, तथा **अच्छिद्रपाण्यादयः** जित परीषहा।' गाथा 3083 टीका

–प्रकाशक ऋषभदेव केसरीमल श्वेताम्बर सस्था, रतलाम, 1937

4 श्वेताम्बर प्राकृत कोश अभिधान राजेन्द्र (द्वितीय भाग) के पृष्ठ 1132 मे स्पष्ट उल्लेख है कि **भगवान ऋषभदेव नग्न थे।**

'भगव अरहा उसभे कोसलिए सवच्छर साहिय चीवरधारी होत्था।'–
'उसहेण अरहा कोसलिए सवच्छर साहिय चीवरधारी होत्था तेण पर **अचेलये**।'

–प्रकाशक समस्त श्वेताम्बर सघ, रतलाम, सवत 1967

5 श्वेताम्बरो के प्रसिद्ध ग्रन्थ कल्पसूत्र से भी दिगम्बरत्व की पुष्टि होती है। दीक्षा के दिन से भगवान महावीर एक वर्ष और एक मास पर्यन्त वस्त्रधारी रहे। **इसके पश्चात् वे वस्त्र रहित हो गए और हाथों मे आहार ग्रहण करने लगे।**

'समण भगव **महावीरे संवच्छरं** साहिय मास जाव
चीवरधारी हुत्था। तेण पर अचेले **पाणिपडिग्गहिए'**.

–प्रकाशक श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, ब्यावर, वि स 2029

6 एक अन्य श्वेताम्बर ग्रथ "पचाशक मूल"-17 मे कथन आया है **आचेलक्को धम्मोपुरिमस्स या पच्छिमस्स य जिणस्स** अर्थात् **पूर्व के ऋषभदेव और बाद के महावीर का धर्म अचेलक (निर्वस्त्र) था**

–प्रकाशक ऋषभदेव केसरी मल श्वेताम्बर सस्था, रतलाम, 1928

7 त्रिषष्टि शलाका पुरुष (आदीश्वर) चरित्र मे राजा श्रेयाम द्वारा जनता को सम्बोधन से भगवान ऋषभ के नग्नत्व की पुष्टि होती है।

"जो भोगो का इच्छुक होता है, वह स्नान, अगराग और वस्त्रो को स्वीकार करता है। स्वामी (ऋषभ) तो भोगो से विरक्त है – उन्हे इनकी क्या आवश्यकता ? अर्थात् वे इन तीनो को ग्रहण नहीं करते।"

'स्नानागराग नेपथ्य वस्त्राणि स्वीकरोति स ।
यो भोगेच्छु स्वामिनम्तु तद्विरक्तस्य कि हि तै ' ॥
पर्व–1 सर्ग 3 श्लोक 313

–प्रकाशक श्री जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, स 1961

श्वेताम्बर विद्वानों के अनुसार नग्नता की पुष्टि

1 जैन– आचार के पृष्ठ 153 पर डॉ मोहनलाल मेहता ने लिखा है 'चाहे कुछ भी हुआ हो, इतना निश्चित है कि महावीर प्रवज्या लेने के साथ ही **अचेल** अर्थात् **नग्न** हो गये तथा अत समय तक नग्न ही रहे एव किसी भी रूप मे अपने शरीर के लिए वस्त्र का उपयोग नहीं किया।'

2 आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन मे मुनि नगराज पृ० 170 पर लिखते है कि शीत से त्रस्त होकर वे (महावीर) बाहुओ को समेटते न थे, अपितु यथावत हाथ फैलाये विहार करते थे। शिशिर ऋतु मे पवन जोर से फुफकार मारता, कड़कड़ाती सर्दी होती, तब इतर साधु उससे बचने के लिए किसी गर्म स्थान की खोज करते, वस्त्र लपेटते और तापम लकड़ियाँ जलाकर शीत दूर करने का प्रयन्न करते, परन्तु **महावीर खुले स्थान मे नग्न बदन रहते** और अपने बचाव की इच्छा भी नहीं करते **निर्वस्त्र देह होने के कारण** सर्दी-गर्मी के ही नहीं वे दशमशक तथा अन्य कोमल-कठोर स्पर्श के अनेक कष्ट झेलते थे।

उपरोक्त सभी श्वेताम्बर शास्त्रो के प्रमाणो से दिगम्बरत्व की प्राचीनता सिद्ध होती है। **अतः दिगम्बर धर्म ही प्राचीन है** इसमे सदेह की कोई गुजाइश ही नहीं है।

विश्वमान्य ग्रन्थों के अनुसार भी दिगम्बर प्राचीन

सदर्भ ग्रन्थ एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटेनिका खण्ड-25 ग्यारहवा सस्करण, सन् 1911 के अनुसार जैन दिगम्बर व श्वेताम्बर दो बड़े समुदायो मे विभक्त है। **श्वेताम्बर अल्पकाल से बमुश्किल ईसा की पांचवीं शताब्दी से पाये जाते हैं** जबकि **दिगम्बर निश्चित रूप से वही निर्ग्रंथ हैं जिनका वर्णन बौद्धो की पाली पिटकों (धर्म ग्रन्थो) के अनेक परिच्छेदों मे हुआ है** और इसलिए **वे ईसापूर्व 600 वर्ष प्राचीन तो है ही**। सम्राट अशोक द्वारा जारी राजाज्ञा के शिलालेख (XX) मे **निर्ग्रंथों का उल्लेख** है।

भगवान महावीर और **उनके प्रारंभिक अनुयायियो की अत्यंत प्रसिद्ध वाह्य विशेषता थी–उनके नग्न रूप में विचरण करने की क्रिया, और इसी से दिगम्बर शब्द बना**। इस क्रिया के विरुद्ध गौतम बुद्ध ने अपने शिष्यो को विशेष रूप से सावधान किया था तथा प्रसिद्ध यूनानी मुहावरा–*जिमनोसो-फिस्ट* (जैन सूफी) से भी यही प्रगट होता है। मेगस्थनीज ने (जो चन्द्रगुप्त मौर्य के समय ईसा पूर्व 320 मे भारत आये थे) इस शब्द का प्रयोग किया है। यह शब्द पूरी तरह निग्रर्थो के लिए ही प्रयुक्त हुआ है।

> "The Jains are divided into two great parties Digambars & Swetambars—the latter have only as yet been traced & that doubtfully as far back as 5th century AD after Christ, the former are ALMOST CERTAINLY the same as NIRGRANTHAS, who are referred to in numerous passages of Buddhist Pali Pitakas & must therefore be as old as 6th century BC The Nirgranthas are also referred to in one of the ASOK's edicts (Corpus inscription plate XX)
>
> **The most distinguishing outward peculiarity of Mahavira & his earliest followers was their practice** of going NAKED whence the term DIGAMBARA Against this custom Gautam Buddha especially warned his followers, and it is referred to in the well known Greek phrase 'Gymnoso-phist', used already by Magasthenes which applies very aptly to NIRGRANTHAS"

श्री एच एच विल्सन अपनी पुस्तक "एस्सेज एण्ड लैक्चर्स ऑन दि रिलिजन आफ जैन्स" मे लिखते है–

जैन मुख्यत दिगम्बर व श्वेताम्बर दो सैद्धातिक मान्यताओ मे विभक्त है। इनमे **दिगम्बर अधिक प्राचीन प्रतीत होते है** और विस्तृत रूप मे फैले हुए है। दक्षिण के सभी जैन दिगम्बर समुदाय के जान पड़ते है। यही बात पश्चिमी भारत के जैनियो की बहुलता पर लागू होती है। **हिन्दुओ के प्राचीन दर्शन ग्रन्थो मे जैनियो को नग्न अथवा दिगम्बर शब्द से संबोधित किया गया है।**

> "The Jains are divided into two principal divisions, Digambars and Swetambars The **former** of which appears to have the best pretensions to **antiquity** and to have been most widely diffused All the Deccan Jains appear to belong to the Digambara division So it is said to the majority of Jains in western India In **early philosophical writings of the Hindus, the Jains are usually termed Digambars or Naganas (Naked).**"

दिगम्बर प्रतिमाओं की पूजा प्राचीनकाल से

एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के खण्ड 10 पृष्ठ 11 सन् 1981 के अनुसार मथुरा से तीर्थकरो की जो प्रतिमाए प्राप्त हुई

है, वे कुशाण काल की है और उनमे यदि जिन भगवान खड्गासन मुद्रा मे है तो **निर्वस्त्र (नग्न) दिगम्बर हैं** और यदि पद्मासन है तो उनकी निर्मिति इस प्रकार की है कि न तो उनके वस्त्र और न ही गुप्ताग दिखाई देते है । यद्यपि श्वेताम्बर-दिगम्बर भेद कुशाणकाल मे ही प्रारम्भ हो गया था तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय तक दिगम्बर व श्वेताम्बर (दोनों समुदाय) **तीर्थकरो की दिगम्बर (नग्न) प्रतिमाओ** की ही पूजा करते थे ।

गुजरात के अकोटा स्थान से ऋषभनाथ की अवर भाग पर वस्त्र सहित जो खड्गासन प्रतिमा प्राप्त हुई है वह ईसा की पाचवी शताब्दी के अतिम काल की मानी गयी है जो कि वलभी मे हुए अतिम अधिवेशन (कांग्रेस) का समय भी है । इससे पता चलता है **कि बलभी के इस अंतिम अधिवेशन (कांग्रेस) से ही श्वेताम्बर मत का प्रादुर्भाव हुआ ।**

> "Images of the Tirthankaras found at Mathura and datable to the Kusana period either depict the Jina in a standing attitude and **unclothed** or if seated in the crossedlegged posture, are **sculputured in such a way that neither garments nor genitals are visible.** Though the Swetambara-Digambara differences had already originated in the Kusana age, it would appear that at this time **both sects worshipped nude images of Tirthankaras.** The earliest known image of a Jina with a lower garment, the standing Rsabhanatha discovered at Akota in Gujarat state, has been dated **to the latter part of the 5th centurty AD**, the age of the last council at Valabhi **This suggests that the Valabhi council marked the final separation of the two sects."**

प्राचीन प्रतिमाएं दिगम्बर हैं

मथुरा के अतिरिक्त जो भी प्राचीन प्रतिमाए उपलब्ध है वे सभी दिगम्बर है । उड़ीसा मे उदयगिरी के गुफा मदिर ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी मे सम्राट खारबेल के समय खुदाई मे निकले थे । शिखर सम्मेद पर, जहा से बीस तीर्थकर मोक्ष गए है उन सभी के चरण चिन्ह दिगम्बरी आम्नाय के अनुसार है । राजगीर के मदिरो मे 2000 वर्ष से अधिक प्राचीन दिगम्बर प्रतिमाए है । इसी प्रकार देश के कई सग्रहालयो मे ईसा पूर्व की सभी प्रतिमाए दिगम्बर है । श्रवणबेलगोला मे भगवान् बाहुबली की 18 मीटर ऊची खड्गासन प्रतिमा का निर्माणकाल दसवी शताब्दी का आरभिक काल है ।

श्वेताम्बरों के मंदिर

आबू पर्वत पर देलवाड़ा के मदिर ग्यारहवी शताब्दी मे बने है । रणकपुर का मदिर पद्रहवी शताब्दी मे निर्मित हुआ है ।

श्वेताम्बरी प्रतिमा पाचवी शताब्दी के पूर्व की नही मिलती है । एतदर्थ विश्व मान्य सदर्भ ग्रन्थो द्वारा भी **दिगम्बरो की प्राचीनता असंदिग्ध है ।**

न्यायलयों के अनुसार भी दिगम्बर ही प्राचीन

पारसनाथ पर्वत का महत्त्व

16000 एकड़ मे फैला श्री सम्मेदशिखर (पारसनाथ पर्वत) जैनियो का अनादि काल से पूज्य तीर्थ है । इस पर्वत से चौबीस मे से बीस तीर्थकर और असख्यात मुनि दिगम्बर अवस्था मे मोक्ष पधारे है । देवो ने जिन स्थानो को चिन्हित कर दिया था वही पर टोंके (छोटे मदिर) और तीर्थकरो के चरणचिन्ह स्थापित है । यही कारण है कि यह पर्वत दिगम्बरो की असीम श्रद्धा का केन्द्र है जैसे हिन्दुओ के लिए काशी ।

चरणचिन्ह दिगम्बर मान्यता के अनुसार

श्वेताम्बरो का यह आरोप एकदम निराधार है कि दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ मे पडित बलभद्र जी ने सभी टोंको को श्वेताम्बरो द्वारा स्थापित किया गया लिखा है । यह असत्य है । उन्होंने कहीं भी ऐसा नहीं लिखा है बल्कि प्राचीन चरणो पर जीर्णोद्धार के नाम पर नए आलेख खुदवा देने की उन्होने घोर भर्त्सना की है ।

सभी 20 टोंको मे दिगम्बर आम्नाय (मान्यता) के चरण चिन्ह स्थापित है । जब श्वेताम्बरो ने प्राचीन दिगम्बर चरणचिन्हो को हटाकर नये चरणचिन्ह स्थापित करने का प्रयास किया तब दिगम्बरो ने न्यायालय से इस कुकृत्य को रुकवाने का आवेदन किया । विद्वान न्यायाधीश हजारीबाग ने निर्णय दिया कि **बीसो टोंको के चरणचिन्ह दिगम्बर आम्नाय की मान्यता के अनुसार है ।** वाद सख्या 288/1912 दिनाक 31 अक्टूबर 1916

> "The shape of the Charans in the 20 Tonks is in confirmity with the **Digambar Tenets**"

चरण इसी स्थान पर क्यों ?

न्यायाधीश ने जब श्वेताम्बरो से पूछा कि चरण और टोंके इन्हीं स्थानो पर क्यो बनाये गए है ? श्वेताम्बरो का तर्क था कि पूरा पर्वत उनका था अत **जहां कहीं भी किसी दानी ने चाहा वहां चरण और टोके बनवा दी,** क्योकि वह उनकी निजी सम्पत्ति है । दिगम्बर जैन तो यहा सैलानी के रूप मे आते थे मानो वह स्थान धार्मिक और पवित्र न होकर सैर-सपाटे की जगह हो ।

> "They (Swetambars) say that the shrines have been built by them **without regard to any particular place** and claim them as 'private Chaples' where they say Digambar came as sightseers with no better rights than visitors of stone benge in England"

जब यही प्रश्न दिगम्बरो से पूछा गया तो उन्होंने बताया कि उनके शास्त्रो के अनुसार जिन स्थानो को देवो ने चिन्हित कर दिया था वहीं भगवान के चरण स्थापित कर टोके बनाई गई। विद्वान न्यायाधीश ने निर्णय मे कहा कि **स्थान की निश्चितता इस बात का प्रमाण है कि वे सभी स्थल दिगम्बरों की प्राचीन मान्यता के पूजनीय स्थल हैं।** उन्होंने तो यहा तक कह दिया कि वहा **अगर चबूतरे, टोंकें या चरणचिन्ह न भी होते तो भी उक्त सभी स्थल दिगम्बरों द्वारा अवश्य पूजे जाते।**

> " Much turns on the spot theory as it goes to the root of exclusiveness, the Swetambars deny it altogether The Digambars, **as the evidence shows would worship the spot even if there was no Tonk or Charan over them."**

कुटिलता पूर्ण जालसाजी

श्वेताम्बरो से जब यह पूछा जाता है कि पर्वत के स्वामी आप थे तब अकबर व आदिलशाह से फरमान लेने की आवश्यकता क्यो पड़ी ? क्यो 1500/- वार्षिक पर चढ़ावा खरीदने की आवश्यकता पड़ी ? क्यों राजा पालगज से जमीदारी अधिकार खरीदने की आवश्यकता पड़ी ? क्यो बिहार सरकार से मैनेजरी की 60 प्रतिशत आमदनी लेने का इकरारनामा किया ? इन सब प्रश्नो का उनका एक ही उत्तर है कि **पहाड़ पर कब्जा रखने के लिये जब जैसा अवसर मिला हमने किया।**

वस्तुस्थिति भी यही है कि अपनी इन कुटिलताओ के कारण ही उन्होंने पर्वत पर कब्जा बना रखा है। पटना उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय 14 4 1921 मे स्पष्ट रूप से **इन फरमानों को कुटिलतापूर्ण जालसाजी** बताया है। उनके एकाधिकार के दावे को भी न्यायालय ने अमान्य कर दिया।

> "That Ferman was inspected by the sub ordinate Judge and the seal was pronouned to be similar the seal upon the document now under consideration, but if, **as he hold it to be, the present Ferman is a clever forgery,** any similarity between the two seals would not be expected "

> "In conclusion, I find that although the Fermans are spurious, both sects have an ancient right of worship "

> "The Swetambari idea of exclusiveness appears to be one of recent growth not older than **charan** case or the EKRAR "

बैनामे की सीमा जंगलात तक

श्वेताम्बरो का पर्वत खरीद का दावा कितना हास्यास्पद है कि उन्हे स्वय मालिक होने पर भी राजा को मोटी रकम देकर जगल के जमीदाराना अधिकार खरीदने पड़े। बैनामे मे खरीदार का नाम श्री कस्तूरभाई है। "व्यक्तिगत" हैसियत व अध्यक्ष आनन्दजी कल्याणजी **फर्म** लिखा है। इस बैनामे मे पर्वत के जगल मात्र का जमींदारी अधिकार खरीदा था जो भूमि सुधार अधिनियम 1950 लागू होने पर समाप्त हो गया। बैनामे मे यह भी स्पष्ट लिखा था कि इस खरीद का कोई प्रभाव दिगम्बरो के धार्मिक अधिकारो पर नहीं पड़ेगा। बैनामे मे मदिर या टोके बेचे जाने की कोई चर्चा नहीं है क्योकि राजा को जगल के **जमींदारी अधिकार के अलावा मंदिर या टोंकें बेचने का अधिकार ही नहीं था।** वैसे भी हमारे देश मे मदिर या टोको की खरीद-फरोख्त नहीं हो सकती है।

> "Purchaser shall hold Parasnath hill subject to all rights and in particular to rights, if any, of access to and worship in the said area appear attaining to any sects and subject to any order which may be passed in appeal No 226/1917 now pending in Patna High Court preferred by Digambar Jains "

बिहार सरकार : श्वेताम्बर समझौता

आनन्दजी कल्याणजी ट्रस्ट का यह दावा भी बेबुनियाद है कि भूमि सुधार अधिनियम लागू होने पर भी उनकी मिल्कियत समाप्त नहीं हुई। यदि उनकी मिल्कियत समाप्त नहीं हुई थी तो **उन्होंने भूमि सुधार अधिनियम के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट में रिट सं० 58/1964 क्यो लगाई ? बाद में मुआवजा लेने के दावे क्यो डाले ? 1965 में बिहार सरकार से इकरारनामा क्यों किया ?**

> *"The parties hereby agree that no question of compensation as envisaged by provisions of the Bihar Land Reforms Act 1950 arises in view of the settlement arrived at "*

इस समझौते के अनुसार श्वेताम्बरी दावा करते है कि वे पूरे पर्वत व टोको के मालिक है जबकि समझौते मे केवल श्वेताम्बर मदिरो अर्थात् जलमदिर और चार नई टोकों की ही चर्चा है।

> "The party of second part (Swetambars) shall retain full control of their temples, shrines. etc **belonging to them."**

बिहार सरकार : दिगम्बर समझौता

1966 मे बिहार सरकार ने दिगम्बरो के साथ भी समझौता किया जिसमें स्पष्ट किया गया कि दिगम्बर अपने मदिरों पर कब्जा रखेगे।

> "The party of the second part (Digambars) shall retain full control of the temples, shrines .. .. etc. **belonging to them."**

पर्वतराज पर 20 टोके तीर्थकरो की और एक गौतम स्वामी की टोक पर प्राचीन दिगम्बरी चरणचिन्ह है जिसकी पुष्टि

न्यायालयो ने भी समय-समय पर की है। शेष नई चार टोक एव जल मदिर श्वेताम्बरी है। इस प्रकार उक्त दोनो समझौतो मे दोनो सम्प्रदायो का अधिकार स्पष्ट कर दिया गया है। न्यायालयो द्वारा इतना स्पष्ट निर्णय दिये जाने के बाद भी श्वेताम्बरो द्वारा दिगम्बरो की टोकों पर कब्जा किये रखना **सामन्तवादी दादागिरी नहीं तो क्या है ?**

पारसनाथ पर्वत सभी जैनों का

श्वेताम्बरो का दावा है कि उन्होंने पर्वत पर टोको का जीर्णोद्धार कराया है इसलिए पर्वत की सभी टोके उनकी है। इस विषय मे प्रिवी कौसिल ने अपील स० 36/1924 दिनाक 4 12 25 मे निर्णय दिया कि 20 तीर्थकरो व गौतम स्वामी की टोके **जैनों के विभाजन से भी प्राचीन हैं और केवल इस कारण कि अधिक अमीर होने के नाते श्वेताम्बरों ने उनका जीर्णोद्धार कराया उनका एकाधिकार उन टोंकों पर नहीं हो जाता।**

> "Taking now the case of the 20 tonks and the shrine of Gautam Swami, it is clear that they are of **ancient date**, and that the Holiness of the sites may **go back *to a time anterior to the division into Swetambars* and Digambars. No doubt, the Swetambars being the richer sect, have rebuilt or largely improved the present buildings,** but if the ancient buildings were already dedicated to the common use of both sections, **this contribution to the common religious buildings can create no exclusive right.**"

टोंकों पर श्वेताम्बरों का अधिकार नहीं

प्रिवी कौसिल आदि के अनेक निर्णयो की दुहाई देकर श्वेताम्बर अपनी मिल्कियत के दावे को प्रमाणित करने का असफल प्रयास करते है। वास्तविकता यह है कि सभी निर्णयो मे न्यायालयो ने स्पष्ट शब्दो मे यह फैसला दिया है कि **श्वेताम्बर समाज का कोई स्वामित्व-अधिकार पर्वत पर नहीं है।**

बगाल के फोर्ट विलियम उच्च न्यायालय ने 25 जून 1892 के फैसले मे कहा है –

> "Upon all these grounds we think that the learned District Judge has come to correct conclusion in holding that the **Hill Parasnath does not belong to the Swetambar Jains.**"

हजारीबाग के अपर न्यायाधीश ने 31 अक्टूबर 1916 के निर्णय मे भी यही बात दुहराई है कि **पर्वत केवल श्वेताम्बरो का तीर्थ नहीं है बल्कि प्राचीन काल से ही समस्त जैनों का तीर्थ है–**

> "There is overwhelming evidence to show that the Hill is not a thing of the **Swetambars alone but of all Jains from very ancient times.** The Hill is sacred to the Jains as Kashi is sacred to the Hindus Any and every Hindu temple built there does not become an asset of the votary public "

पटना उच्च न्यायालय ने 14 अप्रैल 1921 के निर्णय मे पुन कहा है कि **श्वेताम्बर जैन अपने स्वामित्व के अधिकार को साबित करने में असफल रहे हैं –**

> " . all that we can say as to the title is that the **proprietory title of the Swetambar Jains has not been established.**"

धार्मिक स्वरूप को कोई नष्ट नहीं कर सकता

राजा पालगज से पारसनाथ पर्वत के जगल के जमींदारी हक को खरीद कर श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय द्वारा उस विक्रय-पत्र के आधार पर मदिरो और टोको पर एकमात्र दावा करने के अधिकार की चर्चा करते हुए राची के अवर न्यायाधीश ने वाद सख्या 256/1920 मे दिये गए 26 मई, 1924 के अपने निर्णय मे यह स्पष्ट शब्दों मे कहा है कि उक्त विक्रय-पत्र के कारण तीर्थ और उसकी सम्पत्ति का जो **वास्तविक धार्मिक स्वरूप है उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता और उस पर अपना एकमात्र दावा नहीं कर सकता :-**

> " the said conveyances will not destroy the real nature of the property so as to enable any of the parties to set up any **right to it independently of the religious endowment.** The acquisition of any right from the Raja will under such circumstances perhaps be an accretion to and will ensure for the benefit of the religious institution for the preservation and protection whereof the acquisition has been made but on no account will **tantamount** to an **annihilation** or **extinction** thereof "

प्राचीन चरणों को उखाड़ना अपकृत्य

श्वेताम्बरो द्वारा टोंको से प्राचीन चरण हटाकर नये चरण स्थापित करने पर न्यायाधीशो ने फैसला दिया कि **प्राचीन 20 टोंकों पर (दिगम्बर) जैनों का अधिकार है। इसलिए दिगम्बरी चरण हटाना श्वेताम्बरों का अपकृत्य था।** प्राचीन चरण पुन. लगाये जाये, जिसकी प्रिवी कौसिल ने अपील स० 121/1933 के निर्णय मे पुष्टि करते हुए लिखा है कि **श्वेताम्बरों द्वारा प्राचीन चरण हटाकर श्वेताम्बर स्वरूप के नये चरण लगाना गलत था। अतः पुराने दिगम्बरी स्वरूप के चरण लगाये जांय।**

> " . The remaining question as to the alteration in three of the shrines may be dealt with more briefly as both the lower courts are in substantial agreement about the facts Both the lower courts have held that the action of the **Swetambars in replacing**

charan of the description in three of the shrines is wrong of which the Digambars are entitled to complain."

पालगंज राजा के अधिकार की सीमा

जैन श्वेताम्बर सोसाइटी कलकत्ता भी 1872 और 1878 के समझौतो के आधार पर श्री शिखर जी पर स्वामित्व और प्रबध का दावा कर रही है। वास्तविकता यह है कि भूतपूर्व जमींदार राजा पालगज को पर्वतराज पर स्थित मदिरो और टोको के सबध मे केवल इतना ही अधिकार था कि वह वहा पर यात्रियो के चढ़ावे को ले सकता था पर इस शर्त पर कि वह मदिरो और टोको की तथा यात्रियो की सुरक्षा का प्रबध इस एवज मे करेगा। बगाल के फोर्ट विलियम उच्च न्यायालय ने 25 जून, 1892 के फैसले मे तथा हजारीबाग के अवर न्यायाधीश ने वाद स० 288/1912 के फैसले मे इस बात को स्पष्ट कर दिया है –

> "The importance of this is that in 1859 to 1861 the Guardian of Raja Palganj was claiming Parasnath Hill, not as having been settled with his ancestors as being included in **Gaddi** Palganj, but as being part of some estate which had been confirmed to his family on the condition of their protecting the shrines and the pilgrims " "But it seems that beyond guarding the temples the Raja had nothing to do with their repairs and maintenance "

न्यायालयो के इन निर्णयो से राजा के अधिकार की सीमाए स्पष्ट हो जाती है। जमींदार के चढ़ावा लेने मात्र के अधिकार को श्वेताम्बर जैन सोसाइटी ने अस्थायी तौर पर 1872 मे और 1878 मे स्थायी तौर पर दो इकरारनामो के जरिए जमींदार से प्राप्त किया। इस सदर्भ मे दो बाते महत्वपूर्ण है। पहली तो यह कि सोसाइटी ने केवल श्वेताम्बरी मदिरो मे प्राप्त होने वाले चढ़ावे की बाबत ही इकरार किये थे। उनमे स्पष्ट लिखा है कि इकरार हो जाने के बाद जमींदार या उसके आदमी जैन श्वेताम्बरी सोसाइटी के मदिरो मे न तो बाधा पहुचाएगे और न उनके पुजारियो के काम मे बाधा या विवाद करेगे –

> "The condition (of this Ekrar) are these that you or your heirs etc or any person on your (Jamindar's) behalf will not commit outrage at any time in the temples of the Jain Swetambars Society or create unjustifiable dispute with the pujaries of the Jain Swetambari society or do harm to their acts or duty "

इकरारनामे गैरकानूनी

1872 के इकरारनामे को पटना उच्च न्यायालय एव प्रिवी कौसिल ने **गैर कानूनी करार** दिया है। (अपील स० 46/1916 तथा 104/1917 निर्णय दि० 14 4 1921)

> "With regard to the Ekrarnama of 1872 above referred to, it is necessary to observe that the Privy Council have recently held that the **deed is bad** as offending against the rule of perpetuties "

1878 का इकरारनामा 1872 के इकरारनामे की सत्य प्रतिलिपि मात्र है। अत इन इकरारनामो के आधार पर कलकत्ते की जैन श्वेताम्बर सोसाइटी का भी कोई अधिकार मदिर और टोको पर नहीं है और न ही उसे मदिर का चढ़ावा लेने का अधिकार है। इस सोसाइटी ने पर्वतराज के बिहार राज्य मे निहित हो जाने के सत्य को स्वीकार करके हाल ही मे **लगभग डेढ़ लाख रुपया सरकार के पास उक्त इकरारनामों के आधार पर जमा किया है।** अब स्वामित्व का दावा आनन्दजी कल्याणजी ट्रस्ट और उक्त सोसाइटी दोनो कर रहे है।

विकास में बाधक कौन ?

दिगम्बर जैन समाज ने यात्रियो की सुविधार्थ 1898 मे 705 सीढ़िया सीतानाले से भगवान कुन्थनाथ की टोक तक बनाई थीं जिनमे से श्वेताम्बर 205 सीढ़िया ही तोड़ पाये थे कि दिगम्बरो ने वाद स 1/1900 डाल कर सीढ़ी तोड़ने से श्वेताम्बरो पर रोक लगाने की प्रार्थना की। हजारीबाग के अपर न्यायाधीश ने 9 9 1901 के आदेश मे निर्णय दिया कि **श्वेताम्बरो द्वारा सीढ़ी तोड़ना उनका अपकृत्य था। दिगम्बरो को सीढ़ी बनाने का अधिकार है** । विद्वान जज ने हर्जाने के रूप मे 1845/- रुपये श्वेताम्बरो से दिगम्बरो को दिलवाये।

> "The Swetambari sect cannot deprive the Digambari Sect of their right of way over the path The Defts individually and as agent of and servants of the Swetambari Sect had, in my opinion no right to **demolish the stairs and remove the same .... They are hereby warned not to commit further mischief and resist the construction of the stairs.** They shall pay Rs 1845/- as damages to the plaintiff (Digambars)

जो यात्री पर्वत की यात्रा के लिए जाते है उन्होने देखा होगा कि श्वेताम्बरो द्वारा 205 सीढ़िया तोड़ने के बाद बची हुई 500 सीढ़िया जो दिगम्बरो ने बनाई थी आज भी वहा मौजूद है। स्पष्ट है कि **विकास मे बाधक मात्र श्वेताम्बरी है।**

मानवता पर प्रश्न चिन्ह?

सन् 1912 मे श्वेताम्बरो ने दिगम्बरो के विरुद्ध वाद न. 288/1914 व वाद न 4 दायर करके न्यायालय से प्रार्थना की कि दिगम्बरो को मदिरो और टोको में उनकी अनुमति के बिना पूजा-दर्शन से सदैव के लिए वचित कर दिया जाए। विद्वान न्यायाधीश

हजारीबाग ने 31 1 1916 को अपने निर्णय मे घोषित किया कि **श्वेताम्बरो का 20 तीर्थंकरो की और गौतम स्वामी की प्राचीन टोंकों पर एकाधिकार नहीं है । अतः दिगम्बरों के विरुद्ध कोई इन्जन्कशन आदेश देकर उन्हे दर्शन-पूजन से नहीं रोका जा सकता ।** पटना उच्च न्यायालय और प्रिवी कौसिल ने इस आदेश की पुष्टि की ।

व्यावसायिक दृष्टिकोण

वस्तुस्थिति यह है कि सेठ आनन्दजी कल्याणजी की पैढ़ी अहमदाबाद मे एक फर्म थी । यह प्रमाण भी है कि शिखरजी तीर्थ की व्यवस्था उसी फर्म के सेठ आनन्दजी कल्याणजी ट्रस्ट के नाम से व्यापारिक प्रतिष्ठानो की तरह लाभ अर्जित करने के उद्दश्य से हथियाये हुए है । ट्रस्ट का पजीकरण भी सेठ **आनन्दजी कल्याणजी फर्म के नाम से है ।** यह ट्रस्ट तीर्थ के पर्वतीय जगलो से मूल्यवान लकड़ी, दुर्लभ औषधिया और खनिज पदार्थ बेच कर करोड़ो रुपयो का लाभ कमा रहा है, साथ ही चढ़ावे की खासी रकम भी उसको मिलती है । श्वेताम्बरो का कहना है कि पर्वत से बहुत कम आय होती है, जबकि अखिल भारतीय श्वेताम्बर जैन कान्फ्रेन्स ने 21 7 94 को प्रकाशित लेख मे स्वीकार किया है कि 1982-83 मे रोहतास इडस्ट्रीज ने पर्वत के कुछ भाग का एक वर्ष के लिए ठेका 16 लाख 27 हजार रुपयो मे लिया था । इतना ही नहीं श्वेताम्बरो को वन की आय के रूप मे वन विभाग से 13,55,064,00 रू० सन 1984-85 तक के प्राप्त हुए थे ।

आदिवासियों के विकास की जिम्मेदारी सरकार की ही क्यों ?

आखिर अनेक ससाधनो से होने वाली करोडो रूपयो की आय कहा जाती है, जब कि पर्वत के विकास और आदिवासी जनता के कल्यणार्थ ट्रस्ट की गतिविधिया शून्य है । श्वेताम्बरो का कहना है कि गरीब आदिवासियो के कल्याण की जिम्मेदारी मात्र सरकार की है । इस तरह का तर्क ही उनकी सामन्तवादी विचारधारा की पुष्टि करता है ।

विकास कार्यों की उपेक्षा

यह स्पष्ट है कि इस ट्रस्ट का दृष्टिकोण मूल रूप से व्यावसायिक रहा है । इसलिए बिहार सरकार अथवा मधुबन विकास समिति द्वारा विकास कार्यो मे यह ट्रस्ट सदैव बाधा खड़ी करके उन्हे भी रुकवा देता है क्योकि यह ट्रस्ट पर्वत का तथाकथित स्वामित्व व प्रबन्ध अपने कब्जे मे ही रखना चाहता है ।

कुछ उदाहरण इस प्रकार है :

1 यात्रा के मार्ग पर सरकार ने बिजली लगाने की अनुमति प्रदान कर दी थी परन्तु ट्रस्ट के विरोधस्वरूप बिजली नहीं लगाई जा सकी । श्वेताम्बरो का कहना है कि पर्वत पर बिजली लगाने से हिसा होगी । वैसे श्वेताम्बरो के हर तीर्थ पर यहा तक कि शिखर जी के मदिरो मे भी बिजली लगी है । **संभवतः वह बिजली उनके विचार से अहिंसक है ।**

2 पर्वत और तलहटी मे यात्रियो की सुविधा के लिए पेय जल की लाइने बिछाने का इस ट्रस्ट ने तीव्र विरोध किया, जबकि उनके सभी तीर्थ स्थानो पर पानी की सप्लाई सुचारू है ।

3 सम्मेदाचल विकास समिति द्वारा पर्वत पर यात्रियो की सुविधा के लिए बनाई जाने वाली सीढ़ियो और मार्ग के विकास को इस ट्रस्ट ने जबरन रुकवा दिया । उनका कहना है रास्ता ठीक होने से तीर्थ पिकनिक स्थल बन जाएगा जबकि उनके तीर्थ पालीताना मे सड़क और सीढ़िया बनी हुई है लेकिन सडक-सीढ़ी बनने से वह स्थान धार्मिक ही रहा है, पिकनिक स्थल नहीं बना । यात्रियो की सुविधार्थ रास्ते मे धर्मशाला और मदिर बनाने का भी श्वेताम्बरी तीव्र विरोध कर रहे है जबकि इन विकास कार्यो मे धन सब दिगम्बरो का ही लग रहा है श्वेताम्बरो का नहीं ।

एक और सामन्तवादी कदम

28 5 94 को बबई के गुजरात समाचार के अनुसार वहा चह्वाण आडिटोरियम मे श्वेताम्बरो के तमाम सघो के 250 प्रतिनिधियो की बैठक मे निर्णय लिया गया है कि दिगम्बरियो के शिखर जी आदोलन को कुचलने के लिए हर मुमकिन कोशिश की जाय । इस कार्य के लिए उसी समय पाच करोड़ रुपयो का फण्ड एकत्र करने की घोषणा की गयी । आनन्दजी कल्याणजी ट्रस्ट की ओर से ढाई करोड़, जैन सघ से 25 लाख, महुडी तीर्थ सघ से 15 लाख एव अधिक आवश्यकता पड़ने पर 15 लाख और, दीपचन्द गार्डी की ओर से 11 लाख, श्रेणिक भाई से पाच लाख व अन्य प्रतिनिधियो द्वारा भी धन देने की घोषणा की गई ।

दिगम्बरो के आदोलन को कुचलने के लिए श्वेताम्बर पाच करोड़ एकत्र कर सकते है, किन्तु पारसनाथ पर्वत के विकास मे उनका योगदान शून्य है क्योकि इस पर्वत पर मात्र आय करने हेतु ही कब्जा रखना उनका ध्येय है, उसके विकास मे उनकी कोई दिलचस्पी नहीं है ।

संयुक्त बोर्ड आवश्यक

श्वेताम्बरो का कहना है कि बिहार राज्य मे हिन्दू धार्मिक न्यास अधिनियम, 1950 के अतर्गत जैनो के दो ट्रस्ट बोर्ड है जिनमे

से एक श्वेताम्बर ट्रस्ट और दूसरा दिगम्बर ट्रस्ट है । अत एक तीसरा सयुक्त बोर्ड, जिसमे श्वेताम्बर और दिगम्बर समान सख्या मे हो, अनावश्यक है । यदि जैनो की सभी शाखाए मिलकर कोई अस्पताल अथवा स्कूल चलाना चाहे तो उसका प्रबध तो जैनो के सभी सम्प्रदाय मिलकर करेगे । दिगम्बर या श्वेताम्बर अकेले-अकेले नहीं । इसलिए सयुक्त बोर्ड बनना सर्वथा उचित है ।

भूमिसुधार अधिनियम : स्वामित्व किसका ?

श्वेताम्बरी नेताओ ने रट लगा रखी है कि भूमिसुधार अधिनियम की परिधि मे पर्वत के जगलात नहीं आते है । इस विषय मे श्वेताम्बरो ने बिहार सरकार के खिलाफ गिरीडीह की अदालत मे जो वाद डाला था उसमे विद्वान न्यायाधीश ने 1990 के अपने निर्णय मे कहा है कि आनदजी कल्याणजी ट्रस्ट के पर्वत मे मालिकाना अधिकार भूमि सुधार अधिनियम के अनुसार पूर्ण रूप से बिहार सरकार मे समाहित हो गए है ।

> "Tauzi No 20/1 of Parasnath Hill belonging to Anandji Kalyanji Trust **Completely vested in the State of Bihar.** Accordingly this issue is decided against the plaintiff (Swetambars)"

बिहार सरकार का अध्यादेश लोकतांत्रिक

श्वेताम्बर बिहार सरकार के अध्यादेश को अलोकतात्रिक बताते है, जबकि बिहार सरकार का अध्यादेश पूर्ण रूप से लोकतात्रिक है । अध्यादेश के अनुसार जैन समाज के सभी घटको को श्री सम्मेद शिखर पर्वत की व्यवस्था मे समान भागीदारी ही प्रदान नहीं की गई है, बल्कि **सरकार द्वारा अपने मालिकाना हक भी जैन समाज को दिये गये हैं । यदि अध्यादेश में श्वेताम्बर समाज को समान हक न दिया गया होता, तब वह इसे अलोकतांत्रिक कह सकते थे ।**

> "The ownership and title of Shri Sammed Shikharji *(Parasnath Hill) and its endowment shall vest in* Sammed Shikharji"

दुष्प्रचार या आभार

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सेठ आनन्दजी कल्याणजी ट्रस्ट इस भ्रामक दुष्प्रचार मे लगा है कि बिहार सरकार ने इस अध्यादेश द्वारा जैनियो से पहाड़ छीन लिया है और भविष्य मे बिहार सरकार पहाड़ की मालिक होगी, जबकि वस्तुस्थिति इसके विपरीत है । सरकार ने अध्यादेश के अनुसार पहाड़ की व्यवस्था **और मालिकाना हक समस्त जैन समाज को सौंप दिया है** । इसलिए समस्त जैन समाज इस अध्यादेश के प्रति बिहार सरकार का ऋणी रहेगा । इस अध्यादेश से पर्वत के विकास का मार्ग प्रशस्त हो गया है । सभवत पर्वत के विकास की बात श्वेताम्बरो को रास नहीं आ रही है क्योकि वह तो पर्वत पर एकाधिकार रखना चाहते है । उन्हे डर है कि इस अध्यादेश से उनकी आय का स्रोत बद हो जाएगा ।

बोर्ड से लाभ

जिस प्रकार आज देश के अनेक तीर्थो की कुव्यवस्था देखकर सरकार ने प्रबध बोर्ड बनाए है जैसे माताश्री वैष्णो देवी, नाथद्वारा, काशी विश्वनाथ, जगन्नाथपुरी । परिणाम सब के सामने है । इन तीर्थो का इतना अच्छा विकास हुआ है कि देखते ही बनता है । इन बोर्डो का प्रबध तो सरकार ने अपने हाथ मे रखा है परन्तु श्री सम्मेद शिखरजी का प्रबध और मालिकाना हक तो सरकार ने जैन समाज को सौपा है । **फिर मिल जुलकर तीर्थ का प्रबन्ध और विकास करने में हिचक क्यो ?**

भ्रम अनुचित

श्वेताम्बरो का यह भ्रम अनुचित है कि विकास होने पर तीर्थ पिकनिक स्थल बन जाएगा । सरकार ने जिन तीर्थो पर विकास बोर्ड बनाए है क्या वहा धार्मिक भावना मे कमी आई है ? सच तो यह है साधारण जनता इससे लाभान्वित हुई है । इसी प्रकार पारसनाथ पर्वत का विकास होने पर साधारण जनता को अधिक सुविधाए मिलेगी और यात्रा सुगमता पूर्वक हो सकेगी ।

एक उचित परामर्श

शिखरजी समस्या निवारण हेतु एक आदोलन ने जन्म ले लिया है । अततोगत्वा जीत लोकतत्र की ही होती है । हमारी श्वेताम्बर समाज से अपेक्षा है कि इस विषय मे गम्भीरता से विचार करे और तीर्थ के विकास मे बाधक न बन कर खुले दिल से दिगम्बर समाज की बात को समझे । सामतवादी विचारधारा का त्याग कर समाजवादी नीति अपनाये । दिगम्बरो के इस आदोलन को दबाने मे पाच करोड़ व्यय न करके इस धन को किसी रचनात्मक कार्य मे लगाए । जैन समाज बहुत छोटा सा है । आपसी सौहार्द के बल पर यदि हम बड़े-बड़े कार्यो मे समय और धन का उपयोग करे तो समाज और देश सभी का मगल होगा ।

सुभाष जैन, मत्री

श्री सम्मेद शिखरजी आदोलन समिति
जैन बालाश्रम, दरियागज, नई दिल्ली-110002
दूरभाष 011-3285676-3277424

कुन्दकुन्द और पुद्गल द्रव्य: आधुनिक विज्ञान के परिपेक्ष्य में

☐ डा० कपूरचंद जैन, खातौली

आचार्य कुन्द-कुन्द ने अब से दो हजार वर्ष पूर्व मानव चिन्तन को एक नई दिशा दी। अध्यात्म प्रतिष्ठापक आचार्य कुन्दकुन्द का जन्म दक्षिण भारत के कोण्ड कोण्ड-पुर में हुआ था। किन्तु, दक्षिण या उत्तर पूर्व या पश्चिम वे सर्वत्र समान रूप से समादृत है। राष्ट्रीय एकता के वे जीवन्त स्वरूप हैं। आचार्य कुन्दकुन्द आश्चर्य जनक ऋद्धियो के धारक तथा अतिशय ज्ञान सम्पन्न योगी थे।

भारतीय परम्परा विशेषत. श्रमण परम्परा मे उन्हें भगवान महावीर और उनकी दिव्य वाणी के आधार पर द्वादशाग-आगम प्रणेता गौतम गणधर के बाद सर्वोच्च स्थान दिया गया है किसी भी शुभ कार्य के प्रारम्भ मे निम्न मंत्र स्मरण करने की परम्परा आज भी श्रमणो मे विद्यमान है—

'मगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्द कुन्दाद्यो जैन धर्मोऽस्तु मगलम्॥'

भगवान महावीर मगल स्वरूप है, गौतम गणधर मंगल स्वरूप है, कुन्दकुन्द आचार्य मगल स्वरूप है और जैन धर्म मगल स्वरूप है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने तिरुक्कुरल, समयसार, प्रवचन-सार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड जैसे अनमोल ग्रंथ-रत्नो का उपहार अध्यात्म जगत को दिया है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक कृतियाँ आज भी अप्राप्त है, परम्परानुसार वे ८४ पाहुडो के कवि रचयिता थे। तिरुक्कुरल ग्रन्थ परवर्ती काल में इतना प्रसिद्ध हुआ कि संसार की लगभग १०० भाषाओ मे इसका अनुवाद हुआ। समयसार में शुद्ध आत्मतत्व का जैसा विवेचन उन्होने किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इस ग्रथ को श्रमण परम्परा मे गीता, बाइबिल और कुरान का स्थान प्राप्त है।

आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक सिद्धांत आज भी शाश्वत् सत्य सिद्ध हो रहे है। विशेषतः परमाणु के सम्बन्ध मे किया गया उनका गहन चिन्तन उनकी सूक्ष्म वैज्ञानिक दृष्टि को प्रतिपादित करता है। आचार्य श्री द्वारा प्रतिपादित सूक्तियाँ तो सहृदयो का कंठहार है, एक स्थान पर उन्होने कहा है—

"ण वि देहो वंदिज्जइ ण वि य कुलो ण वि य जाइसंजुत्तो।
को वंदमि गुणहीणो ण हु सवणो णेव सावओ होई॥

अर्थात्—शरीर कुल या जाति वदनीय नहीं अपितु गुण रहित न तो श्रावक है और न ही साधु। यह आधु-निक समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता का मूलमंत्र कहा जा सकता है।

आचार्य कुन्द कुन्द श्रमण संस्कृति के उन्नायक प्राकृत साहित्य के अग्रणी प्रतिभू तर्क प्रधान आगमिक शैली में लिखे गए अध्यात्म विषयक साहित्य के युग प्रधान आचार्य है। उनकी महत्ता इस बात मे भी दृष्टि गोचर होती है कि परवर्ती आचार्य अपने आपको कुन्द कुन्दान्वयी कहकर गौरवान्वित अनुभव करते है।

जैन दर्शन के अनुसार समग्र विश्व छह द्रव्यो का पिंड है। आचार्य कुन्द कुन्द ने सभी द्रव्यो पर विचार किया है किन्तु जीव व पुद्गल का विस्तार मे विवेचन किया है। प्रवचनसार, पचास्तिकाय, नियमसार आदि ग्रन्थो में पुद्गल के सन्दर्भ में विस्तृत गवेषणा की गई है।

द्रव्य का लक्षण करते हुए कुन्द कुन्द ने कहा—

"दव्वं सल्लक्खणियं उप्पादव्वयधुवत्त संजुत्त।
गुण पज्जयासवं व जं तं भण्णति सव्वण्हू॥'

द्रव्य का लक्षण तीन प्रकार से है, द्रव्य का प्रथम लक्षण, सत्ता है, द्रव्य का द्वितीय लक्षण उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य संयुक्त है और द्रव्य का तृतीय लक्षण गुण पर्या-

याश्रित है। इन्हीं का विशदीकरण करते हुए प्रथम सूत्र कार आचार्य उमा स्वामी ने कहा है—"सद्द्रव्य लक्षण, "उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तं तथा 'गुणपर्ययवाद् द्रव्यम्' "तत्वार्थ सूत्र ५/३०, ३८"

कुन्द कुन्द के अनुसार द्रव्यों की संख्या छह स्वीकार की गई है। जीव, पुदगल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।[१] भारतीय दर्शनो, विशेषता वैशेषिक दर्शन में नव द्रव्यों की कल्पना की गई है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिक् आत्मा और मन।[३]

इन द्रव्यो का विभाजन तीन दृष्टियों से किया जा सकता है। चेतन-अचेतन की दृष्टि से विभाजन करे तो जीव द्रव्य चेतन है बाकी ५ अचेतन, मूर्तिक अमूर्तिक की दृष्टि से विभाजन करें तो पुद्गल मूर्तिक है बाकी ५ अमूर्तिक तथा अस्तिकाय, अनस्तिकाय की दृष्टि से विभाजन करें तो काल अनस्तिकाय है बाकी ५ अस्तिकाय।[४]

कुन्द कुन्द के अनुसार पुद्गल द्रव्य मूर्तिक अचेतन, अस्तिकाय है। माध्वाचार्य ने पुद्गल की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है—'पूरयन्ति गलन्तीति पुद्गल.'[५] अर्थात् जो द्रव्य "स्कन्ध अवस्था में" अन्य परमाणुओ से मिलता है। "पु+णिच्" और गलन "गल्"=पृथक होता है, उसे पुद्गल कहते है। आचार्य कुन्द कुन्द ने कहा है—

वण्ण रसगंधफासा विज्जते पोग्गलस्स सुहुमादो।
पुढवीपरियतस्स य सद्दो सो पोग्गलो णिच्चो॥[६]

अर्थात् पुद्गल द्रव्य मे नीला, पीला, सफेद, काला और लाल ये पाच रूप, कड़ुआ तीखा, आम्ल, मधुर और कषायला ये पांच रस, सुगन्ध तथा दुर्गन्ध थे दो गन्ध और कोमल-कठोर, गुरू-लघु, शीत-उष्ण, स्निग्ध-रूक्ष ये स्पर्श हैं।

पुद्गल दो प्रकार का है एक अणु और दूसरा स्कन्ध[७] स्कन्ध के स्कन्ध, स्कन्धदेश और स्कन्ध प्रदेश ये ये तीन भेद हो जाते है। अणु मिलाकर ८ प्रकार के पुद्गल कहे जा सकते है।[८] जो सर्व कार्य-समर्थ हो उसे स्कन्ध कहते है। स्कन्ध के आधे भाग को स्कन्ध देश और उससे भी आधे भाग को स्कन्ध प्रदेश कहते है तथा जिसका दूसरा भाग न हो सके उसे अणु या परमाणु कहते हैं।[९]

दूसरे प्रकार से स्कन्ध के छह और परमाणु के दो भेद किए गए है।[१०]

१. **स्थूलस्थूल**—जो स्कन्ध छिन्न-भिन्न होने पर स्वयं न मिल सके, ऐसे ठोस पदार्थ यथा लकडी पत्थर आदि।
२. **स्थूल**—जो छिन्न-भिन्न होकर फिर आपस में मिल जाय, जैसे घी, दूध, जल आदि।
३. **स्थूल सूक्ष्म**—जो दिखने मे स्थूल हो अर्थात् नेत्रेन्द्रिय से ग्राह्य हो, किन्तु पकड़ मे न आवे जैसे छाया, प्रकाश, अन्धकार आदि।
४. **सूक्ष्म स्थूल**—जो दिखाई न दे, अर्थात् नेत्रेन्द्रिय ग्राह्य न हो, किन्तु अन्य इन्द्रियो स्पर्श, रसना घ्राणादि से ग्राह्य हो। यथा ताप, ध्वनि, गन्ध, रस स्पर्श आदि।
५. **सूक्ष्म**—स्कन्ध होने पर भी जो सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रियो द्वारा ग्रहण न किया जा सके। यथा कर्म वर्गणा आदि।
६. **अति सूक्ष्म**—जो कर्मवर्गणा से भी सूक्ष्म हो यथा द्व्यणुक।

परमाणु भी कारण परमाणु कार्य परमाणु के भेद से दो प्रकार का है। जो पृथ्वी जल आदि का कारण है, उसे कारण परमाणु और स्कन्धो का जो अन्त है वह कार्य परमाणु है[११] परमाणु सूक्ष्माति सूक्ष्म है। यह अविनाशी, शाश्वत् शब्दरहित तथा एक है। परमाणु का आदि मध्य और अन्त वह स्वयं ही है—

"अत्तादि अत्तमज्झं अत्तन्त णेव इंदिए गेज्झ।
अविभागी जं दव्व परमाणु तं विआणाहि॥[१२]

अर्थात् जिसका स्वय स्वरूप ही आदि मध्य और अन्त रूप है, जो इन्द्रियो के द्वारा द्रष्टव्य (ग्राह्य) नही है ऐसा अविभागी द्रव्य परमाणु है। यहा ध्यातव्य यह है कि परमाणु का यही रूप आधुनिक विज्ञान भी मानता है। अधुनिक विज्ञान के अनुसार भी परमाणु किसी भी इन्द्रिय या अणुवीक्षण यन्त्रादि से ग्राह्य नही होता है। इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए प्रोफेसर जॉन, रिल्ले विश्वविद्यालय ब्रिस्टल ने लिखा है—

"We cannot see atams eithar and never

shall be able to...Even if thay were a million times bigger it would still be impossibl to see them evnn with the most powerful microscope that has been mods" (An outine for Boys Girls and their parents (Collaniz Section chemistry p 261) 13

जैन दर्शन के अनुसार परमाणु पूर्ण ज्ञानी "सर्वज्ञ" के ज्ञानगोचर है। उक्त तथ्य से स्पष्ट है कि आज से दो हजार वर्ष पूर्व कुन्द कुन्दाचार्य द्वारा लिखा गया परमाणु का स्वरूप—"णेव इदिए गेज्झं" कितना वैज्ञानिक है।

परमाणु एक प्रदेशी है। वह नित्य है, वह सावकाश भी है और निरवकाश भी। सावकाश इस अर्थ मे है, कि वह स्पर्शादि चार गुणो को अवकाश देने मे समर्थ है तथा निरवकाश इस अर्थ मे है कि उसके एक प्रदेश मे दूसरे प्रदेश का समावेश नही होता। परमाणु परिणमनशील है, वह किसी का कार्य नही अत.. अनादि है यद्यपि उपचार से उसे कार्य कहा जाता है।

परमाणु, शाश्वत है, अत. उसकी उत्पत्ति उपचार मे है, परमाणु कार्य भी है और कारण भी है। जब उसे कार्य कहा जाता है, तब उपचार से ही कहा जाता है, क्योकि परमाणु सत् स्वरूप है, ध्रौव्य है अत. उसकी उत्पत्ति का प्रश्न ही नही उठता। परमाणु पुद्गल की स्वाभाविक दशा है जबकि स्कन्ध अशुद्ध पर्याय। दो या अधिक परमाणु स्कन्धो का कारण है, उपचार से कार्य भी इस प्रकार है कि लोक मे स्कन्धो के भेद से परमाणु की उत्पति देखी जाती है। इस भाव को आचार्य उमास्वामी ने इन शब्दो मे कहा है—

"भेदादणु"—अर्थात् अणु भेद से उत्पन्न होता है। किन्तु यह प्रक्रिया तब तक चलनी चाहिए जब तक स्कन्ध द्यणुक न हो जाये।

शब्द, बन्ध, सूक्ष्मत्व, स्थूलत्व, सस्थान, भेद, अधकार, छाया, आतप और उद्योत ये पुद्गल की पर्याये स्वीकार की गयी है।

शब्द को अन्य भारतीय दर्शनो, विशेषत. वैशेषिक दर्शन ने आकाश का गुण माना है। किन्तु जैन दर्शन में पुद्गल की पर्याय माना है, जो समीचीन है। आधुनिक विज्ञान ने शब्द को टेपरिकार्ड, रेडियो, ग्रामोफोन, केसिट रिकार्डर, टेलीफोन आदि ध्वनि यन्त्रो से पकड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजकर जैन दर्शन के सिद्धान्त का ही समर्थन किया है। पुद्गल के अणु तथा स्कन्ध भेदों की जो २३ अवान्तर जातिया स्वीकार की गई हैं, उनमें एक जाति भाषा वर्गणा भी है। ये भाषा वर्गणायें लोक मे सर्वत्र व्याप्त है। जिस वस्तु से ध्वनि निकलती है, उस वस्तु मे कम्पन होने के कारण इन पुद्गल वर्गणाओ में भी कम्पन होता है, जिससे तरंगे निकलती है, ये तरगे ही उत्तरोत्तर पुद्गल की भाषा वर्गणाओ में कम्पन पैदा करती है, जिससे शब्द एक स्थान से उद्भूत दूसरे स्थान पर पहुँचता है।[२०] आधुनिक विज्ञान भी शब्द की वहन प्रक्रिया मानता है।

शब्द भाषात्मक और अभाषात्मक के भेद से दो प्रकार का है। भाषात्मक पुन अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक के भेद से दो प्रकार का है। संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी आदि भाषाओ के जो शब्द है, वे अक्षरात्मक शब्द है, तथा गाय आदि पशुओं के शब्द-संकेत अनाक्षरात्मक शब्द हैं। अभाषात्मक शब्द भी प्रायोगिक और वैस्रसिक के भेद से दो प्रकार का है। प्रायोगिक चार प्रकार का है तत, वितत, घन और सुषिर।

परस्पर में श्लेष बन्ध कहलाता है। यह भी प्रायोगिक और वैस्रसिक के भेद से दो प्रकार का है। प्रायोगिक अजीव तथा जीवाजीव के भेद से दो प्रकार का है। लाख लकडी आदि का बन्ध अजीव तथा कर्म और नोकर्म का बन्ध जीवाजीव प्रायोगिक बन्ध है। वैस्रसिक भी आदि और अनादि के भेद से दो प्रकार का है। धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों का बन्ध अनादि है और पुद्गल का बन्ध सादि है। परमाणुओ मे परस्पर बन्ध के सन्दर्भ मे कुन्द कुन्द का मत है कि स्निग्ध तथा रूक्ष गुणो के कारण एक परमाणु दूसरे परमाणु के साथ मिलता है।[२२] किन्तु यह नियम है कि परमाणुओ के बन्ध की प्रक्रिया मे उनमे दो गुण अर्थात् शक्त्यश का अन्तर होना चाहिए जैसे कोई परमाणु दो स्निग्ध शक्त्यश वाला है तो दूसरा परमाणु, जिसके साथ बन्ध होता है—उसे चार शक्त्यंश स्निग्ध या रूक्ष वाला होना चाहिए। इसी प्रकार तीन को पाच,

आठ को दस शक्त्यश वाला होना आवश्यक है। भाव यह है कि बन्ध में सर्वत्र दो शक्त्यशों का अन्तर होना चाहिए, न इसमें कम न इससे ज्यादा। किन्तु एक गुण "शक्त्यंश" वाले परमाणु का बन्ध नही होता।

कुन्द कुन्द ने लिखा है—

णिद्धा व लुक्खा वा अणुपरिणामा समा व विसमा वा।
समदो दुराधिगा जदि बज्झंति हि आदि परिहीणा ॥
प्रवचननसार २/७३

इसी प्रकार सूक्ष्मत्व भी पुदगल की पर्याय है। अन्त्य सूक्ष्मत्व परमाणुओ तथा अपेक्षिक सूक्ष्मत्व बेल, आवला आदि में है। अन्त्य स्थौल्य लोकरूप महास्कन्ध और आपेक्षिक स्थौल्य वेर, आवला आदि में होता है। मेघ आदि की आकृति संस्थान है। पुद्गल पिण्ड का भंग होना भेद कहलाता है।

नेत्रो को रोकने वाला अन्धकार और शरीर आदि के निमित्त से प्रकाश आदि का रुकना छाया है। छाया को भी अन्य दर्शनो ने पुद्गल नही माना है किन्तु आधुनिक विज्ञान से कैमरे, फिल्म आदि मे छाया को पकडकर तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजकर जैन दर्शन का ही समर्थन किया है। सूर्य का उष्ण प्रकाश आतप और चन्द्रमा का ठण्डा प्रकाश उद्योत है।

इस प्रकार कुन्द कुन्द साहित्य में पुद्गल तथा परमाणु के सन्दर्भ में विस्तृत विवेचना उपलब्ध होती है परमाणु की उत्कृष्ट गति एक समय मे चौदह राजू बताई गयी है आधुनिक विज्ञान ने भी इसका समर्थन किया है आवश्यकता है ऐसे अन्वेषकों की जो आधुनिक और प्राच्य विज्ञान का समालोचनात्मक अध्ययन कर सामञ्जस्य बैठा सकें। परमाणु के सम्बन्ध में डा० राधाकृष्णन के वक्तव्य के साथ हम इस निबन्ध का समापन करेंगे।

अणुओ के साथ श्रेणी विभाजन से निर्मित वर्गों की नानाविधि आकृतिया होती हैं। कहा गया है कि अणु के अन्दर ऐसी गति का विकास भी सम्भव है, जो अत्यन्त वेगवान् हो, यहा तक कि एक क्षण के अन्दर समस्त विश्व की एक छोर से दूसरे छोर तक परिक्रमा कर आये।[२४]

अध्यक्ष संस्कृत विभाग,
श्री कुन्द कुन्द जैन महाविद्यालय,
खतौली २५१२०१ "उ० प्र०"

सन्दर्भ—

१. कुन्द कुन्द, 'पंचास्तिकाय' गाथा १०
२. 'नियमसार' गाथा 9
३. 'तर्क संग्रह' पृष्ठ ६ मोतीलाल बनारसीदास संस्करण
४. 'पचास्तिकाय' गाथ ४
५ माधवाचार्य, 'सर्वदर्शन संग्रह' पृष्ठ १५३ चौखम्बा विद्याभवन संस्करण
६ 'प्रवचनसार' गाथा १३२, जयपुर सस्करण
७. 'नियमसार' गाथा २०
८. 'पचास्तिकाय' गाथा ७४
९. वही गाथा ७५
१०. 'नियमसार' गाथा २१-२४
११. वही गाथा २५
१२. वही गाथा २६
१३. 'जैन दर्शन का तात्विक पक्ष परमाणुवाद" जैन दर्शन और संस्कृति नामक पुस्तक में संकलित निबन्ध इन्दौर विश्वविद्यालय प्रकाशन अक्टू० १९७६
१४. 'पंचास्तिकाय' गाथा ८१
१५. वही गाथा ८०
१६. 'नियमसार' गाथा २८
१७ वही गाथा २५
१८. 'तत्वार्थ सूत्र' ५/२७
१९ 'शब्द गुणकमाकाशम', 'तर्कसग्रह' पृष्ठ ४३
२० 'तत्वार्थ सूत्र' वर्णी ग्रन्थमाला प्रकाशन, पृष्ठ २३०
२१ 'पंचास्तिकाय' गाथा ७९ की व्याख्या राजचद्र शास्त्रमाला
२२ प्रवचनसार २/६९
२३ प्रो० जी० आर० जैन ने स्निग्धत्व को वैज्ञानिक परिभाषा मे निगेटिव और पॉजिटिव माना है। "दे० 'तीर्थंकर महावीर स्मृति ग्रन्थ', जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर प्रकाशन पृष्ठ २७५-२७६"
२४ 'भारतीय दर्शन' प्रथम भाग राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, १९७३, पृष्ठ २९१

औचित्य धर्म का

□ आचार्य राजकुमार जैन

भारत वर्ष आरम्भ से ही धर्म प्रधान और धार्मिक वृत्ति वाला देश रहा है और देशवासियो की प्रत्येक गतिविधि एवं आचरण धार्मिकता और आध्यात्मिकता से अनुप्राणित रहा है, परिणामत प्रदेश देशवासी चाहे सत्तासीन हो या साधारण नागरिक हो, नैतिकता के सामान्य नियमो से बधा हुआ था। समाज और राष्ट्र के प्रति वह अपने कर्त्तव्य बोध से युक्त और उसके निर्वाह के लिए जागरूक एव तत्पर था। किन्तु आज भारतीय जन मानस मे अध्यात्मिकता का भाव तिरोहित हो गया है और भौतिकवादी विचारधारा के बीज तीव्र गति से अकुरित होकर सम्पूर्ण जीवन शैली मे इस प्रकार व्याप्त हो गए है कि उन्होंने सभी जीवन मूल्यो का ह्रास कर उन्हे बदल दिया है। भारतीय जन जीवन मे आध्यात्मिकता के स्थान पर भौतिकवादी विचारो का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है।

आज जन साधारण धर्म और सम्प्रदाय मे स्पष्ट भेद नही कर पा रहा है। इतना ही नहीं, अपितु जन साधारण सम्प्रदाय को ही धर्म मानकर तद्वत् आचरण कर रहा है। यद्यपि प्रबुद्ध वर्ग एवं विद्वान जन धर्म और सम्प्रदाय मे स्पष्ट भेद करने और उसे समझने मे समर्थ है, किन्तु दुराग्रही विचारणा के कारण सम्भव नही हो पा रहा है। वास्तव मे धर्म और सम्प्रदाय मे बहुत बड़ा अन्तर है। धर्म उदार, विशाल और सहिष्णु दृष्टिकोण अपनाता है जबकि सम्प्रदाय सकुचित दृष्टिकोण को जन्म देता है। अत. धर्म को व्यापक दृष्टिकोण के रूप मे देखना और समझना चाहिए। इस यथार्थ के साथ यदि देशवासी अपनी मानसिकता, दृष्टिकोण और वैचारिक अवधारणा को अपनाते हैं तो देश मे कही भी और कभी भी धार्मिक उन्माद की परिणति दगा-फसाद, हिंसा या रक्तपात के रूप मे नही हो सकती है। किन्तु स्थिति आज ऐसी नहीं है। सम्पूर्ण देश आज साम्प्रदायिक उन्माद की गहरी गिरफ्त मे है जो धर्मान्धता, धार्मिक कट्टरता, पारस्परिक विद्वेष और नफरत के कारण उत्पन्नत हुआ है तथा धर्म निरपेक्षता की आड मे पनप रहा है इसके साथ ही, देश की वर्तमान धर्म निरपेक्ष नीति को जो राजनैतिक रंग दिया गया है उसके कारण उत्पन्न भ्रान्त धारणा ने केवल ४५ वर्ष के अल्पकाल मे ही भारतीय जन जीवन में नैतिकता और सदाचार का जो अवमूल्यन किया है आज वह हमारे समक्ष विचारणीय है।

आज देश की अखंडता और साम्प्रदायिक सदभाव के सन्दर्भ मे धर्म निरपेक्षता शब्द न केवल प्रासंगिक हो गया है, अपितु अत्यधिक चर्चित हो जाने के कारण महत्वपूर्ण भी माना जाने लगा है। यह देखा गया है कि कभी-कभी अर्थ विशेष मे प्रयुक्त हुआ शब्द परिस्थिति वश न केवल अपना अर्थ खो देता है, अपितु सर्वथा अप्रासंगिक भी हो जाता है। इसी परिप्रेक्ष्य मे यदि "धर्मनिरपेक्षता" शब्द को देखा जाय तो स्थिति उपर्युक्त जैसी ही प्रतीत होती है। वास्तव मे धर्मनिरपेक्षता शब्द आधुनिक युग की देन है जो अग्रेजी के "सेक्यूलर" शब्द से अनुवादित किया गया है। सर्व प्रथम यहा यह देखना आवश्यक है कि क्या धर्मनिरपेक्षता उस भाव मे सेक्यूलरिज्म का सही अनुवाद है जिस भाव मे "सेक्युलरिज्म" शब्द प्रयुक्त हुआ है। सही मायने मे यदि देखा जाय तो ऐसा नही हुआ है। गत 45 वर्ष के दौरान देश का बड़े से बड़ा नेता भी सेक्यूलरिज्म को भी परिभाषित करने मे असमर्थ रहा है। यद्यपि सेक्यूलरिज्म की अवधारणा को नेताओ ने अच्छा बतलाया है, किन्तु विडम्बना यह है कि भारतीय चिन्तन धारा का प्रवाह जिस दिशा मे हुआ है उसमे सेक्यूलर या सेक्यूलरिज्म जैसे शब्द के लिए कोई स्थान नही है। अत: नेता गण उसका समानार्थी शब्द न तो निर्धारित

कर पाए और न ढूढ पाए। इसका आशय नेताओं योग्यता को रेखांकित करना नही है, किन्तु इतना अवश्य है कि देश हित में नेताओ की चिन्तन शैली एवं विचारण शक्ति जो प्रतिबिम्ब उनके आचरण मे परिलक्षित होती है उसने इस शब्द के यथार्थ को अवश्य विकृत कर दिया है। सम्भवतः यही कारण है कि आज भारतीय धर्म और समाज के सन्दर्भ मे 'सेक्यूलरिज्म' की सही परिभाषा, अर्थ और भाव को व्यक्त कर पाना सम्भव नहीं है।

हमारे शास्त्रो के अनुसार धर्म सार्वभौमिक है जो सर्वोदय और सर्वकल्याणकारी है। वह प्राणिमात्र को धारण करने वाला है, अतः वह सर्वग्राह्य, सबके द्वारा अनुकरण एवं अनुसरित किए जाने योग्य है। धर्म एक ऐसा शब्द है जो अपने अर्थ गाम्भीर्य के साथ अर्थ की व्यापकता को संजोए हुए है और प्राचीन काल से उसी रूप में वह प्रयुक्त किया जाता रहा है, किन्तु आज उसे संकुचित कर इतना अधिक विकृत कर दिया गया है कि वह न केवल अपने अर्थ की व्यापकता, अपितु मूल अर्थ और उसके अन्तर्निहित भाव को भी खो चुका है।

सेक्यूलरिज्म का अर्थ यदि धर्म निरपेक्षता किया जाता है, जैसा कि आजकल चर्चित और प्रचलित है तो यह मानना होगा कि देश स्वतन्त्रता के पश्चात् देश के सविधान निर्माताओ ने देश को धर्म निरपेक्ष बनाने की बात कही और "धर्म निरपेक्ष नीति अपनाने की घोषणा की। तब से लेकर आज तक समय-समय पर इस पर व्यापक चर्चा भी हो चुकी है और देश के उच्च कोटि के राजनेता, राजनीतिज्ञ, प्रबुद्ध जन तथा विद्वत् वर्ग अपना मन्तव्य व्यक्त कर चुके है। इसके बावजूद इसकी मूल अवधारणा अभीतक स्पष्ट नहीं हो पाई है। इसका कारण सम्भवतः यह हो सकता है कि धर्म निरपेक्षता की बात केवल राजनैतिक क्षेत्र में और राजनीति के सदर्भ मे ही अधिक चर्चित रही है। इसके अतिरिक्त धर्म निरपेक्षता का सही अर्थ न अपना कर इसकी व्याख्या इतने गलत ढंग से की गई कि जनसाधारण मे ऐसी भ्रान्त धारणा व्याप्त हो गई है कि भारतीय शासन अधार्मिक है अथवा धर्म से उसका कोई सम्बन्ध नही है, जबकि उसका यह तात्पर्य कदापि नही था। वस्तुतः उसका अभिप्राय और उद्देश्य यह था कि भारतीय शासन किसी कट्टरवाद या सम्प्रदाय का पक्ष पाती नहीं रहेगा, क्योंकि निरपेक्ष का तात्पर्य होता है "उदासीन होना"। अतः कट्टरवाद या सम्प्रदाय निरपेक्ष याने कट्टरवाद या सम्प्रदाय से उदासीन होना। वास्तव मे कोई भी देश व्यापक और सही अर्थ मे प्रयुक्त धर्म से उदासीन हो ही नहीं सकता है। यहा यदि अभिप्रायार्थ ग्रहण किया जाय तो सम्प्रदाय निरपेक्ष होना अधिक समीचीन, सार्थक और उपयुक्त है। विश्व मे समय-समय पर हिंसा का जो ताण्डव और भीषण रक्तपात हुआ है वह इस देश के नीति निर्माताओं की दृष्टि मे अवश्य था। उससे बचने के लिए तथा देश को हिंसा और रक्तपात से बचाने के उद्देश्य से उन्होने देश को "सेक्यूलर" घोषित किया जो सम्प्रदाय निरपेक्ष के अर्थ मे समीचीन है, न कि धर्मनिरपेक्ष के अर्थ मे।

वास्तव में यदि देखा जाय तो धर्म और सम्प्रदाय मे जमीन आसमान का अन्तर है। धर्म की विविधिता होना अलग बात है, एक धर्मावलम्बी होना भिन्न बात है और धर्म रहित या धर्म निरपेक्ष होना अलग बात है। भारतीय शासन का धार्मिक सिद्धान्तो से विरोध सम्भव नही है जबकि साम्प्रदायिक भावना के लिए उसमें कोई स्थान नही है। इस सन्दर्भ मे इस मर्म को समझना आवश्यक है कि आखिर धर्म है क्या? सक्षेप मे इसका उत्तर यह है कि जीवन में नैतिक मूल्यों की स्थापना एवं उच्चादर्शों का आचरण धर्म की परिधि मे आता है। जो व्यक्ति या समाज या देश इससे शून्य है वहा धर्म नही है। जो सिद्धान्त या बाते हमारे अन्तःकरण मे उदारता, सहिष्णुता और आचरण की शुद्धता के भाव को अंकुरित करते है वे ही सिद्धान्त जीवन मे नैतिक मूल्यो कीस्थापना करते है। अतः धर्म की अवधारणा मात्र उन्ही सिद्धान्तों पर अवस्थित हैं। कोई भी राष्ट्र उन सिद्धातो की अवहेलना कैसे कर सकता है? अथवा उनसे निरपेक्ष कैसे रह सकता है? क्योकि राष्ट्र की स्थिरता का आधार वे ही नैतिक मूल्य है। अतः राष्ट्र की अभ्युन्नति और प्रगति के लिए, लोगो मे सद्भाव बनाए रखने के लिए राष्ट्र का धर्म सापेक्ष होना आवश्यक है।

वास्तव में देखा जाय तो आज धर्म निरपेक्ष के स्थान

पर सम्प्रदाय निरपेक्षता की बात कहना अधिक उपयुक्त होगा। क्योंकि आज जो बुराइया सिर उठा रही हैं और जिन बुराइयो ने जनमानस मे अपनी पैठ बना रखी है उनका मूल या उद्गम सम्प्रदायवाद और साम्प्रदायिक भावना मे है। लोगो मे असहिष्णुता और विद्वेष की भावना सम्प्रदायिकता के कारण उत्पन्न होती है, न कि धर्म या धार्मिक कट्टरता के कारण। धर्म तो सहिष्णुता, सद्भाव, वैचारिक उच्चता और पारस्परिक सौमनस्य को जन्म देता है अत वर्तमान मे धर्म की आड लेकर किया जा रहा रहा सम्पूर्ण व्यवहार और क्रिया कलाप हमारी विकृत मानसिकता और नैतिक मूल्यो मे गिरावट का ही सकेत करता है। आज हम अपनी बात तो कहना चाहते है, किन्तु दूसरो की बात नही सुनना चाहते। आज लोग जिस धर्म और धार्मिक सद्भाव की बात करते हैं। उसका अमल या आचरण शायद एक प्रतिशत नहीं कर पाते हैं। फिर उस धर्म या धार्मिक मर्यादा की रक्षा की बात उनके मुख से सुनना कितनी हास्यास्पद लगती है। आज लोगो के दिलो मे धर्म नही, सम्प्रदायिकता के बीज बोए जा रहे हैं। इसीलिए लोगो के मन मे सहिष्णुता की बजाय असहिष्णुता पनपती जा रही है। जब इसकी पराकाष्ठा होती है तो समाज के ठेकेदारो के मन मे कट्टरता की विकृति साम्प्रदायिक उन्माद अपने पूरे उफान के साथ निकलता है और नर सहार का विकराल रूप धारण कर सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्थाओ को छिन्न-भिन्न कर देता है। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हम पिछले दिनो के दगो मे देख चुके है।

यद्यपि भारतीय समाज मे प्राचीन काल से ही अनेक विकृतियो का आवागमन होता रहा है, इसके बावजूद भारतीय दर्शन और सस्कृति की अक्षुण्णता बरकरार है जो मानसिकता, चिन्तन पद्धति और दृष्टिकोण की व्यापकता की परिचायक है। इसे देखते हुए हमे यह विश्वास रखना चाहिये कि वर्तमान समाज मे आई विकृति भी अधिक समय तक रहने वाली नही है। हमारे देश और समाज मे यह परम्परा रही है कि देश मे जिन महापुरुषो ने त्याग या उत्सर्ग किया है वे सर्वदा पूज्य रहे है। महावीर, बुद्ध, राम और महात्मा गांधी उसी कोटि के महापुरुष रहे हैं। उनका आदर्श चरित्र त्याग की भावना से परिपूर्ण रहा है। ऐसा नही है कि आदर्श जीवन चरित्र वाली विभूतिया ही अपनी पावन गरिमा से इस देश को महिमा मंडित करती रही हैं, अपितु दुर्योधन, दुशासन, जयचन्द, गोडसे जैसे कायर पुरुष भी अपनी दुर्भावना और दुष्कृत्यो से इस धरा की पवित्रता और उत्कृष्टता को खण्डित करते रहे है, किन्तु फिर भी हमारे धार्मिक, दार्शनिक एवं साम्कृतिक मूल्य और और उन पर आधारित सिद्धान्त अपरिवर्तित रहे हैं। अनेक विदेशी आक्रमणो और परतन्त्रता के बावजूद उनमे कोई परिवर्तन नही आया। यद्यपि यह संसार और इस संसार की समस्त भौतिक वस्तुए परिवर्तनशील है और सदा रूप बदलता रहता है, किन्तु धर्म कभी नहीं बदलता, क्योंकि वह सत्य की धुरी पर आधारित होता है, उसके मूल मे त्याग और पर कल्याण का भाव निहित रहता है। इसलिए वर्तमान मे जो धर्म निरपेक्षता की बात की जाती है वह कहा तक उचित और और प्रासगिक है? यह विचारणीय है।

व्यापक सन्दर्भ मे यदि देखा जाय तो भारतीय सस्कृति मे सम्प्रदाय या पथ को भी पनपने या विकसित होने के अवसर मिले हैं। भारतीय सस्कृति की यह विशेषता रही है कि उसने सभी सम्प्रदायो को पर्याप्त महत्व दिया और यथा सम्भव आत्मसात किया। फिर भी उनमे किसी प्रकार का विग्रह उत्पन्न नही हुआ। इसका कारण यह था कि जो भी सम्प्रदाय या पथ भारतीय सस्कृति मे आत्मसात् होकर विकसित हुआ उसमे लोक कल्याण या जनहित की भावना सर्वोपरि थी। यदि ऐसा नही होता तो यह देश कभी का विखण्डित हो गया होता। सम्प्रदाय के मूल मे जो भाव निहित होना चाहिए वह है किसी किसी से कुछ प्राप्त करने की लालसा के दूसरो को सम्यक् प्रकार से देना। इसी मे जन कल्याण एव मगल की उदात्त भावना निहित है। अत सम्प्रदाय मे किसी प्रकार के अनिष्ट होने का तो प्रश्न ही नही है।

आज देश मे जो कुछ भी घटित हो रहा है उसकी समीक्षा की जाय तो ज्ञात होता है कि आज जन मानस मे पर्याप्त बदलाव आया है। लोगो की मानसिकता आज

(शेष पृ० ३१ पर)

जैन और बौद्ध मूर्तियां

□ लेखक : राजमल जैन

भारत के अन्य भागो की भाति केरल मे भी जैन बौद्ध मूर्तियों में भेद का अभाव पाया जाता है अर्थात् जैन मूर्तियो को कभी-कभी बुद्ध की मूर्ति कह दिया जाता है। केरल स्टेट के गजेटियर वॉल्यूम ११ (१९८८ मे जो चित्र पुस्तक के अन्त मे दिए गए है, उनमे भी इसी प्रकार की भूल देखी जा सकती है। इसमे कल्लिल की जैन मूर्ति के साथ एक चित्र छपा है। उसके नीचे एक पंक्ति मे Buddha at Paruyassery मुद्रित हुआ है। यदि इस चित्र को ध्यान से देखा जाए, तो यह स्पष्ट होगा कि तीन छत्रो या छत्रत्रयी से शोभित यह नग्न दिगबर जैन मूर्ति पद्मासन मे है और उसके आसपास सभवत चमरधारी है। छपाई स्पष्ट नही है।

कन्याकुमारी जिले के चितराल गाव के पास एक पहाड़ी का नाम है तिरूच्चारणट्टमले जिसका अर्थ होता है—चारण (ऋद्धिधारी जैन मुनि) की पवित्र पहाड़ी। वहां का प्राचीन गुफा मंदिर अब भगवती कोविल या मंदिर कहलाता है। इसके गर्भगृह मे महावीर पार्श्वनाथ और अम्बिका देवी की मूर्तिया है। इस कोविल के पुजारी महावीर की मूर्ति को बुद्ध की मूर्ति बताते है जो कि जैन मूर्ति के संबंद्ध मे जानकारी के अभाव के कारण है। इसी प्रकार अन्य जैन प्रतोको के सबंध मे भी भ्राति होती है। पार्श्वनाथ की मूर्ति पर फणावली के सबध मे जानकारी के अभाव में भी भ्रम उत्पन्न होता है। अब वे नागराज कहलाते हैं जैसे नागरकोविल या मदिर। फणो के कारण उन्हें अनन्तनाग पर शयन करने वाले विष्णु बना लेने में या मान लेने मे कोई कठिनाई अथवा आपत्ति नही हुई होगी। सोलहवी सदी तक वह कोविल जैन मंदिर था। परिवर्तन करने वाले शायद यह भूल गए कि विष्णु वाहन तो गरुड़ है जो नाग का शत्रु है। ऐसी ही एक स्थिति कर्नाटक के एक गाव लक्कुडी में हुई है जब पार्श्वनाथ की मूर्ति हटा दी गई तो केवल फण ही शेष रह गए। उन्हे देख शायद इस मंदिर का नाम नागनाथ मदिर रख दिया गया। तात्पर्य यह है कि पुरातत्वविदो को तो कम से कम जिन प्रतिमाओ के सबंध मे सम्यक जानकारी होनी चाहिए ताकि गजेटियर जैसी भूले न हो और लोगो को सही जानकारी मिल सके।

छठी शताब्दी के विख्यात अजैन ग्रंथ वृहत्संहिता में जिन प्रतिमा का निर्माण वराहमिहिर ने निम्न प्रकार बताया है —

आजानुलम्बबाहुः श्रीवत्सांकः प्रशान्तमूर्तिश्च।
दिग्वासास्तरुणो रूपवाश्च कार्योऽर्हतां देवः॥

अर्थात् अर्हन्त या जिन प्रतिमा घुटनो तक लबी भुजाओवाली, वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह से युक्त, प्रशान्त, दिगम्बर या नग्न, तरुण अवस्थावाली तथा सुदर या रूपवान बनानी चाहिए। यह लक्षण कायोत्सर्ग प्रतिमा पर लागू होता है।

केरल के प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता श्री गोपीनाथ राव ने भी यह श्लोक उद्धृत किया।

मानसार नामक प्रसिद्ध ग्रथ मे भी जिन प्रतिमा का लक्षण दिया गया है। प्रस्तुत लेख के सामने इसका अंग्रेजी संस्करण है। इसमे निम्न प्रकार उल्लेख है --"It should have two arms and two eyes and should be clean shaven (?) and there should be the top knot (? marked) P. 62 विद्वान संपादक ने प्रश्न चिन्ह ठीक ही लगाया है। जिन प्रतिमा केशरहित नही होती। इसके मस्तक पर जूड़ा जैसा भी नही बनाया जाता। वह बुद्ध का उष्णीष हो सकता है।

जैन मूर्ति और मदिर निर्माण सबधी अनेक प्राचीन ग्रंथ है। यहा विक्रम की तेरहवी सदी के लेखक पं० आशाधर के ग्रंथ से एक उद्धरण दिया जाता है। उन्होने अनेक

प्राचीन ग्रंथों का सार लेकर जिन प्रतिमा के निर्माण के लिए निम्न बातें आवश्यक बताई है—

शांतप्रसन्नमध्यस्थनासाग्रस्थाविकारदृक् ।
संपूर्णभावरूपानुविद्धांगलक्षणान्वितम् ॥

जो शांत, प्रसन्न, मध्यस्थ, नासाग्रस्थित, अविकारी दृष्टि वाली हो, जिसका अंग वीतरागता दर्शाता हो, अनुपम वर्ण हो, रौद्र आदि बारह दोषों से रहित हो, अशोक आदि प्रातिहार्यों से युक्त हो और दोनों ओर यक्ष-यक्षी वेष्टित हो ऐसी जिन प्रतिमा को बनवा कर विधि सहित सिंहासन पर विराजमान करें। यह व्याख्या लेखक ने अपनी टीका में स्वयं की है।

जैन मूर्तियां संबंधी कुछ विशेष लक्षण साधारण भाषा में इस प्रकार है—

१. जैन मूर्ति दिगंबर या नग्न होती है। उस पर किसी वस्त्र या आभूषण का अंकन नहीं किया जाता है। श्वेतांबर जैन तीर्थंकर मूर्तियों पर कभी-कभी वस्त्र आभूषण का अंकन करवा देते हैं जो कि प्राय. धोती के रूप में होता है। इस प्रकार की मूर्तियां बहुत ही कम पाई गई हैं। केरल में तो केवल एकाध स्थान पर ही ऐसी मूर्ति प्राप्त हुई है। हां वहां के दो एक श्वेतांबर मंदिरों में मुकुट आदि से शृंगारित मूर्तियां अवश्य देखी जा सकती है। स्पष्ट है कि शिल्प में इनका अभाव है। वैसे केरल में दिगंबर मूर्तियां ही अधिक प्राप्त हुई है।

२. मूर्ति केवल दो ही आसनों में होती है। पद्मासन या ध्यान मुद्रा में बैठी हुई अथवा खड़ी हुई। इस अवस्था को कायोत्सर्ग मुद्रा कहते हैं। जिसमें काय या शरीर का उत्सर्ग प्रदर्शित हो। इस मुद्रा से शरीर से ममत्व त्याग कर आत्मा का ध्यान करने की स्थिति सूचित होती है। क्वचित अर्ध पद्मासन मूर्ति भी उपलब्ध होती है। लेटी हुई या अन्य किसी मुद्रा अथवा भाव-भंगिमा में जिन मूर्ति नहीं बनाई जाती है तीर्थंकर मूर्ति उपदेश मुद्रा में भी नहीं होती है। वह केवल ध्यानावस्था में ही निर्मित की जाती है।

३. हाथ केवल दो ही होते हैं। उनमें कोई आयुध या हथियार नहीं होता है। पद्मासन में हाथों के करतल ऊपर की ओर होते है। कायोत्सर्ग मुद्रा में हाथ लंबे, घुटनों को छूते हुए और शरीर से सटे हुए दृढ़ स्थिति में दिखाए जाते है। शिल्पशास्त्र की भाषा में वे आजानुलंब होते है।

४. नेत्र अविकारी होते है। उनमें क्रोध, रोष या अन्य किसी प्रकार का विकार नहीं पाया जाता। आंखें न तो मुंदी हुई होती है और न ही दृष्टि वक्र होती है। इसके विपरीत दृष्टि नासाग्र पर केंद्रित दर्शाई जाती है। तीर्थंकर मूर्ति के नेत्र अर्धोन्मीलित होते है। वह ध्यान में लीन अंकित की जाती है।

५. मूर्ति पद्मासन हो या कायोत्सर्ग, वह किसी आसन या पादपीठ पर विराजमान होती है। सामान्यत: यह आसन कमलाकार होता है। शिल्प योजना प्राय. ऐसी होती है कि एक कमल की पखुड़ियां ऊपर की ओर खिली दिखती है, तो इसके नीचे दूसरे कमल की पखुड़ियां नीचे की ओर खिली प्रदर्शित की जाती है।

६. केश या बालों का अंकन घुंघराले रूप में किया जाता है। बाल छल्लेदार दिखते हैं। प्रथम तीर्थंकर ऋषभ देव की कहीं-कहीं जटाएं भी अंकित की जाती हैं जो कि कंधों तक किन्तु सुलझी हुई प्रदर्शित की जाती हैं। शेष तीर्थंकरों के कुन्तल केश ही अंकित किए जाते है।

७. मूर्ति की मुद्रा प्रशांत, निर्विकार, ध्यानमग्न, स्मितयुक्त या मंद मुस्कानपूर्ण अंकित होती है।

८. श्रीवत्स चिन्ह (कमल की चार पखुड़ियों जैसा गोलाकार चिन्ह) वक्षस्थल पर अंकित किया जाता है। प्राचीन प्रतिमाओं में यह नहीं भी पाया जाता।

९. तीर्थंकर या जिन प्रतिमा सदा ही तरुण अवस्था में, सुपुष्ट और सुदृढ़ शरीर की धारक बनाई जाती है ऐसा शिल्प शास्त्र का विधान है।

१०. प्रतिमा का वक्षस्थल चौड़ा और कमर उसी के अनुपात में पतली अंकित की जाती है।

११ प्रतिमा के आसन या पादपीठ पर तीर्थंकर से से संबंधित चिन्ह होता है। यह बीचों बीच खोदा जाता है। चिन्हों की यहां एक तालिका दी गयी है। पादपीठ पर एक संक्षिप्त विवरण होता है जिसमें प्रतिमा की प्रतिष्ठा का संवत, वह किस गण की है और कब किसने उसका निर्माण कराया था एवं किस आचार्य आदि की प्रेरणा से

उसका निर्माण हुआ था आदि तथ्य होते हैं। यह जानकारी इतिहास के लिए बड़ी महत्वपूर्ण सिद्ध होती है। तिरुचारणत्तुमलै पहाड़ी पर इस प्रकार के अनेक लेख हैं जिनसे ज्ञात होता है कि आचार्य अज्जनंदी की प्रेरणा से अनेक प्रतिमाओं का निर्माण हुआ था और यह कि सुदूर तमिल देश के लोगों ने भी उस पवित्र पहाड़ी पर प्रतिमाओं का निर्माण करवाया था। अत्यन्त प्राचीन प्रतिमाओं में इस प्रकार के लेख का अभाव भी पाया जाता है। मध्य प्रदेश में बड़वानी नामक स्थान पर ऋषभदेव ८४ फीट ऊची कायोत्सर्ग प्रतिमा है किंतु विवरण के अभाव में उसकी प्राचीनता [illegible] नहीं आंकी जा सकती। विवरण लिख देने का चलन बाद में प्रारंभ हुआ। विनम्रता की पराकाष्ठा!

१२. मूर्ति साथ चैत्यवृक्ष, जो कि सामान्यतः आम्रवृक्ष होता है। [illegible] केवल चवर ही, पादपीठ पर कभी-कभी हाथ जोड़े भक्त यक्ष-यक्षी या शासन देवता, आसन के दोनों ओर पर सिंह अथवा पाद पीठ पर पाच या चार सिंह का अंकन होता है। इसीलिए उसे सिंहासन कहा जाता है यह सिंहासन प्रायः महावीर स्वामी की प्रतिमा के साथ अंकित हो [illegible] होता है। सिंह से यह सूचित होता है [illegible] ने भयंकर सिंहों को जीत [illegible]।

१३. प्रतिमा के मस्तक के ऊपर तीन छत्र उत्कीर्ण किए जाते हैं। कभी-कभी एक ही होता है और कही कही उनका अभाव भी देखा जाता है। भक्त अलग से सोने या चांदी के छत्र भी लटका देते है। वास्तव में, छत्रत्रयी जिन प्रतिमा की विशेष पहिचान है।

१४ जिन मूर्ति के पीछे भामंडल halo भी लगभग अनिवार्य रूप से अंकित किया जाता है। यह पृष्ठासन में उत्कीर्ण किया जाता है। वह गोलाकार बहुसंख्य किरणों जैसी रेखाओं से युक्त होता है जहा इसमें कोई कठिनाई होती है या भक्त वहां अधिक अलंकरण करना चाहते है, वहां वे सोने या चांदी का भामंडल भी लगा देते है।

१५ सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ की प्रतिमा पाच फणों से युक्त भी बनाई जाती है।

१६. पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर सामान्यतः नौ फणों की छाया होती है। किन्तु सात ग्यारह या बहुसंख्य फण भी देखे जाते हैं। अधिक फणों वाली मूर्तियों को सहस्र फणी कहा जाता है। सहस्रफणी पार्श्वनाथ प्रतिमाओं के अनेक मंदिर भारत में है।

१७ बाहुबली की मूर्ति पर जंघाओं तथा बाहुओं पर पत्तोंवाली लताएं अवश्य अंकित की गई थी और निकट ही बाबी भी बन गई थी।

१८. भरत की प्रतिमा के साथ नौ घड़ों के रूप मे नौ निधिया अंकित की जाती है जो यह सूचित करती है कि जिसकी यह मूर्ति है वह किसी समय नौ निधियों से युक्त चक्रवर्ती सम्राट् था। ऋषभदेव के पुत्र इन्हीं भरत के नाम पर देश भारत कहलाता है।

१९ जैन मान्यता के अनुसार सिद्ध भगवान की प्रतिमाओं के साथ वे अंकन नहीं किए जाते जो कि तीर्थंकर प्रतिमाओं के साथ किए जाते है। सिद्ध वे आत्माएं है जो मोक्ष प्राप्त कर चुकी है वे अशरीरी होती है, इस कारण से उनकी प्रतिमा का निर्माण सामान्यतः धातुफलक पर रिक्त मनुष्याकृति के रूप में होता है। इस प्रकार की निर्मिति को स्टेंसिलकट कहा जाता है। ऐसी प्रतिमाएं कायोत्सर्ग या खड़ी हुई ही बनाई जाती है।

२० तीर्थंकर प्रतिमा के कान लंबे बनाए जाते है जो कि कभी-कभी कंधों को छूते हुए भी जान पड़ते हैं। आज भी लंबे कान महापुरुष होने के सूचक माने जाते है। मूर्ति के कान फटे हुए या अन्य किसी दोष से पूर्ण नहीं होते और न ही उनमें किसी प्रकार के आभूषण होते है।

तीर्थंकरों के लांछन या चिन्ह (Cognizances)

१. ऋषभदेव या वृषभदेव	बैल या वृषभ
२. अजितनाथ	गज
३ संभवनाथ	अश्व
४. अभिनंदननाथ	कपि या बंदर
५. सुमतिनाथ	क्रौंच या चकवा
६. पद्मप्रभु	कमल
७. सुपार्श्वनाथ	नंद्यावर्त (दिगम्बर) स्वास्तिक (श्वेताम्बर)
८. चंद्रप्रभु	अर्धचंद्र

९. पुष्पदंत	मकर
१०. शीतलनाथ	स्वस्तिक (दिगम्बर)
	कल्पवृक्ष (श्वेताम्बर)
११. श्रेयांसनाथ	गेंडा
१२. वासुपूज्य	भैंसा
१३. विमलनाथ	शूकर
१४. अनंतनाथ	सेही
१५. धर्मनाथ	वज्र
१६. शांतिनाथ	हरिण
१७. कुंथुनाथ	बकरा
१८. अरनाथ	मीन
१९. मल्लिनाथ	कलश
२०. मुनिसुव्रतनाथ	कूर्म
२१. नमिनाथ	नीलकमल
२२. नेमिनाथ	शंख
२३. पार्श्वनाथ	सर्प
२४. महावीर	सिंह

टिप्पणी—नंद्यावर्त एक प्रकार से स्वस्तिक है जिसके नौकोण होते हैं। यह ज्यामितीय रचना जान पड़ती है। बकरे को छाग तथा नीलकमल को उत्पल भी कहा गया है।

कलावस्तुओं और पौराणिक प्रसंगों का भी जिन प्रतिमाओं के साथ अंकन किया जाता है। कुछ उदाहरण हैं अष्टमंगल, धर्मचक्र, दुंदुभिवादक, मालाएं लिए विद्याधर, मीन युगल आदि। कर्नाटक के हुम्चुआ नामक स्थान पर सातवीं सदी की एक पार्श्वनाथ प्रतिमा के दोनों ओर उनके पूर्व भव के बैरी कमठ द्वारा तपस्या के समय उन पर किए गए उपसर्ग का सुंदर अंकन है।

जैन मान्यता के अनुसार तीर्थंकर का एक यक्ष और एक यक्षिणी होते हैं। केरल में पार्श्वनाथ की यक्षणी पद्मावती देवी की बहुत अधिक मान्यता रही है आज भी है। यह देवी अब केरल में वैदिक परंपरा में भगवती के नाम से पूजी जा रही है ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। नेमिनाथ की शासन देवी अंबिका, ऋषभदेव की यक्षणी चक्रेश्वरी देवी और चंद्र प्रभु की शासन देवी ज्वालामालिनी की भी केरल में काफी मान्यता है। पद्मावती देवी का आसन कमल है और वाहन सर्प है। उनके मस्तक पर फण भी दिखाए जाते हैं। अंबिका देवी की मुख्य पहचान आम्रवृक्ष के नीचे उनके साथ दो बालकों का अंकन है। ज्वालामालिनी देवी का वाहन भैंसा है। चक्रेश्वरी देवी के हाथ में धर्मचक्र होता है। इन देवियों अथवा यक्षों के मस्तक पर कहीं कहीं तीर्थंकर प्रतिमा भी प्रदर्शित की जाती है जो कि उनका तीर्थंकर के धर्म की रक्षक देवी या देव होना सूचित करती है। सभी यक्षों और यक्षिणियों का विवरण देना एक अलग पुस्तक का रूप ले सकता है। इसलिए अधिक लोकप्रिय का ही संकेत किया गया है। इस लेख का मुख्य उद्देश्य बौद्ध और जैन प्रतिमाओं में भेद बताना है।

बौद्ध प्रतिमाएं

बृहत्संहिता में बुद्ध प्रतिमा का लक्षण निम्न प्रकार दिया गया है—

पद्मांकितचरण प्रसन्नमूर्ति: सुनीचकेशश्च।
पद्मासनोपविष्ट: पितेव जगतो भवति बुद्ध:॥

अर्थात् बुद्ध की प्रतिमा चरण पर कमल अंकित, प्रसन्न मुद्रा में सुनीचकेश और पद्मासन में बैठी हुई पिता की भांति होती है।

ऊपर दिए गए लक्षण में केश पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। बुद्ध प्रतिमा के मस्तक के पिछले भाग में बालों का छोटा-सा जूड़ा ऊपर उठा हुआ होता है। इसे उष्णीष कहा जाता है। इस शब्द का अर्थ आप्टे की प्रेक्टिकल-संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी में इस प्रकार दिया गया है—A cearacteristic Mark (of hair) on the head of a Buddha which indicates future sanctity बुद्ध की मूर्ति खड़ी हुई या बैठी हुई बनाई जाती है। श्रीलंका में बुद्ध की लेटी हुई मूर्ति भी बनाई गई है। जैन मूर्ति इस मुद्रा में नहीं बनाई जाती है। उपर्युक्त परिभाषा में एक बड़ी कमी यह है कि उसमें यह उल्लेख नहीं है कि बुद्ध की मूर्ति सदा ही वस्त्र धारण करती है। जिन मूर्ति और बुद्ध प्रतिमा में यह मुख्य भेद है। बुद्ध के कपाल पर कभी कभी तिलक या गोल बिंदी भी देखी जाती है। बुद्ध प्रतिमा यदि ध्यानस्थ न हो तो वह

(शेष पृ० ३२ पर)

श्रुत परम्परा

☐ मुनिश्री कामकुमार नन्दी

भाव श्रुत एवं द्रव्यश्रुत के भेद से श्रुत दो प्रकार के हैं। इनमें भाव की अपेक्षा श्रुत अनादि निधन है (न कभी उत्पन्न हुआ और न कभी होगा) पर द्रव्यश्रुत-शास्त्र परम्परा कालाश्रित है। यह योग्य द्रव्य क्षेत्र काल में ज्ञानी, निर्ग्रन्थ वीतरागी सन्तों द्वारा ज्ञान की एकाग्रता में तथा बाह्य निर्विघ्नताओं में शास्त्र रचना के रूप में उत्पन्न भी होता है और ज्ञान की एकाग्रता तथा बाह्य विघ्न बाधाओं के कारण विनाश को भी प्राप्त होता रहता है।

श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन (वर्तमान में जो वीर शासन जयन्ती के रूप मे महान पर्व माना जाता है) सूर्य के उदय होने पर रौद्र नामक मुहूर्त मे चन्द्रमा के अभिजित नक्षत्र होने पर तीनो लोकों के गुरु वर्द्धमान महावीर के धर्म तीर्थ की उत्पत्ति हुई अर्थात् पांच पर्वतों से शोभायमान राजगृही नगरी के पास देवेन्द्रों से पूजित और सर्व पर्वतों मे उत्तम एवं अत्यन्त विशाल विपुलाचल नामक पर्वत पर भगवान् महावीर ने भव्य जीवों को जीवादि पदार्थों का प्रथम उपदेश दिया।

भगवान् महावीर स्वामी का निश्चित स्थान राजगृही में विपुलाचल पर्वत पर १६ बार समवसरण हुआ था। इससे पूर्व बीसवे तीर्थंकर श्री मुनि सुव्रतनाथ भगवान के के जन्म के कारण भी यह पञ्चशैलपुर-राजगिरि पवित्र है।

"पञ्चशैलपुरं पूतं मुनि सुव्रतजन्मना"।

"हरिवंश पु० जिन सेनाचार्य ॥

गौतमगोत्री विप्रवर्णी चारों वेदों और षडंग विद्या के पारगामी शीलवान और ब्राह्मणों मे श्रेष्ठ वर्द्धमान स्वामी के प्रथम गणधर इन्द्रभूति नाम से प्रसिद्ध हुए। भावश्रुत पर्याय से परिणत इस इन्द्रभूति ने अन्तर्मुहूर्त मे बारह अंग और चौदह पूर्व ग्रन्थो की क्रमश: रचना की। अत. भावश्रुत और अर्थ-पदो के कर्ता तीर्थंकर है तथा तीर्थंकर के निमित्त को पाकर गौतम गणधर श्रुत पर्याय से परिणत हुये। इसलिए द्रव्यश्रुत के कर्ता गौतम गणधर है। यथा —

"श्रुतमपि जिनवरविहित गणधर-रचित द्वयनेकभेदस्थम्। इस भरतखड के आर्य प्रदेश के अनेक जनपदो मे विहार करके जब चतुर्थकाल मे साढे तीन मास कम चार वर्ष शेष रह गये तब कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी मे रात्रि के अन्तिम पहर मे कमल वनो से वेष्टित पावापुर के बाहरी उद्यान में स्थित सरोवर से भगवान् महावीर स्वामी मुक्ति को प्राप्त हुए। उसी समय गौतम गणधर केवल ज्ञान से सम्पन्न हो गए तथा वे गौतम गणधर भी बारह वर्ष मे मुक्त हो गए। जब गौतम गणधर परिनिर्वाण को प्राप्त हुये उसी क्षण मे सुधर्मा मुनि को ज्ञान प्राप्त हुआ। वे भी बारह वर्ष तक लगातार धर्मामृत (श्रुत) की वर्षा कर उत्कृष्ट सिद्धि को प्राप्त हुये। तत्पश्चात् जम्बू स्वामी केवल ज्ञानी हुये। उन्होंने इस भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड में अड़तीस वर्षों तक लगातार विहार किया तथा श्रुत द्वारा भव्य जीवो का उपकार कर अष्ट कर्मों का क्षय कर मुक्ति को प्राप्त किया। ये तीनो अनुबद्ध केवली की सम्पदा को प्राप्त थे। इनके मोक्ष चले जाने के बाद इस भरत क्षेत्र मे केवल ज्ञान रूपी सूर्य अस्त हो गया।

तदनन्तर विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु ये पाँचो ही आचार्य-परम्परा के थे तथा क्रमश चौदह पूर्व के धारी हुये। इन्होने (सौ) वर्ष पर्यन्त भगवान् के समान यथार्थ मोक्ष मार्ग का प्रतिपादन (उपदेश) किया। बाद मे विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय,

जयाचार्य, नागाचार्य, सिद्धार्थस्थविर, धृतसेन, विजयाचार्य, बुद्धिल्ल, गंगदेव और धर्मसेन ये ग्यारह अंग और उत्पाद पूर्व आदि दश पूर्वों के धारक तथा शेष चार पूर्वों के एकदेश के धारक हुए। इन्होंने एक सौ तिरासी वर्षों तक मोक्ष मार्ग का उपदेश दिया। इसके बाद नक्षत्राचार्य, जयपाल, पाण्डु स्वामी, ध्रुवसेन तथा कंसाचार्य ये पाँचो ही आचार्य परम्परागत क्रमशः सम्पूर्ण अंग (ग्यारह अंग) और चौदह पूर्वों के एकदेश धारक हुये। ये एक सौ अठारह वर्ष पर्यन्त श्रुत का प्रचार-प्रसार किये। इस प्रकार छः सौ तिरासी वर्ष पर्यन्त अङ्गज्ञान की प्रवृत्ति रही। तत्पश्चात् सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य ये चारो ही आचार्य सम्पूर्ण आचारांग के धारक और शेष अंग तथा पूर्वों के (एक सौ अठारह वर्ष तक) एक देश के धारक हुये। इसके बाद सभी अंग और पूर्वों का एक देश आचार्य परम्परा से आता हुआ धरसेन आचार्य को प्राप्त हुआ।

अर्हद्वलि के शिष्य माघनन्दी और माघनन्दी के शिष्य धरसेन सौराष्ट्र (गुजरात-काठियावाड़) देश के गिरनार नामक नगर की चन्द्रगुफा मे रहते थे। ये अष्टांग महानिमित्त के पारगामी प्रवचन-कुशल थे। इनको आग्रायणी पूर्व मे वर्णित पञ्चम वस्तु की महाप्रकृति नामक चौथे प्राभृत का ज्ञान था कि आगे अङ्ग श्रुत का विच्छेद हो जाएगा।

धारसेनाचार्य ने महामहिमा (जो कि अंग देश के के अंतर्गत वेणाक नदी के तीर पर था) वेण्या नाम की एक नदी बम्बई प्रांत के सतारा जिले मे महिमानगढ़ एक गाँव भी है, जो हमारी महिमानगरी हो सकती है। इससे धरसेनाचार्य अनुमानतः सतारा जिले मे जैनमुनियों के पंचवर्षीय सम्मेलन मे सम्मिलित हुए और उन्होंने दक्षिण पथ के (दक्षिण देश के निवासी) आचार्यों के पास एक लेख में लिखे गये धरसेनाचार्य के वचनों को भली भाँति समझ कर उस संघ के नायक महासेनाचार्य ने आचार्यों से तीन बार पूछ कर शास्त्र के अर्थ को ग्रहण और धारण करने मे समर्थ देश काल और जाति से शुद्ध उत्तम कुल मे उत्पन्न हुए समस्त कलाओं मे पारंगत दो साधुओं को आन्ध्र देश मे बहने वाली वेणी नदी के तट पर भेजा। जो कुन्द पुष्प, चन्द्रमा और शंख के समान सफेद वर्ण वाले, समस्त लक्षणो से परिपूर्ण हैं, जिन्होंने आचार्य धरसेन की तीन प्रदक्षिणा दी है और जिनके अंग नम्र होकर आचार्य के चरणो मे पड़ गये हैं ऐसे दो बैलों को धरसेन भट्टारक ने रात्रि के पिछले भाग मे स्वप्न मे देखा। इस प्रकार के स्वप्न को देखकर सन्तुष्ट हुये धरसेनाचार्य ने 'जयउ सुय देवदा'' श्रुत देवता ऐसे वचन का उच्चारण किया।

उसी दिन दक्षिण पथ से भेजे हुये वे दोनो साधु धरसेनाचार्य के पास पहुंच गये उसके बाद उन्होंने धरसेनाचार्य से निवेदन किया कि :—

"अज्जेण कज्जेण दो वि जणा तुम्हं पादमूलमुवगया त्ति" आप के पादमूल को प्राप्त हुये है। उन दोनो साधुओं के इस प्रकार निवेदन करने पर 'सुट्ठु भद्द'' अच्छा है कल्याण हो इस प्रकार कहकर धरसेन भट्टारक ने उन दोनो साधुओं को आशीर्वाद दिया—

सेलघण भग्गघड अहि चालणि महिसाऽवि-जाहय सुएहि।
मट्टिय मसय समाणं वक्खाणइ जो सुदं मोहा ॥६२॥

भगवान् धरसेन ने विचार किया कि शैलघन, भग्न-घट, अहि (सर्प) चालनी, महिष, अवि (मेढा) जाहक (जोंक) शुक माटी और मशक के समान श्रोताओ को जो मोह से श्रुत का व्याख्यान करता है।

दढ गारव पडिबद्धो विसयामिस विस वसेण घुम्मंतो।
सो भट्ट-बोहि-लाहो भमइ चिरं भव-वणे मूढो ॥ ६६ ॥

वह मूढ दृढ रूप से ऋद्धि आदि तीनो प्रकार के गारवों के आधीन होकर विषयो की लोलुपता रूपी विष के वश मूर्छित हो अर्थात रत्नत्रय की प्राप्ति से भ्रष्ट होकर भव वन मे चिरकाल तक परिभ्रमण करता है।

इस वचन के अनुसार स्वच्छन्दता पूर्वक आचरण करने वाले श्रोताओ को विद्या देना संसार और भय को ही बढाने वाला है। ऐसा विचार कर दोनो की परीक्षा लेने का निश्चय किया; क्योंकि उत्तम प्रकार से ली गई परीक्षा हृदय मे संतोष को उत्पन्न करती है—"सुपरिक्खा हियय णिव्वुइ करोति"।

अतः धरसेनाचार्य ने दोनो को मन्त्र सिद्ध करने के लिये कह दिया दोनों गुरु वचनानुसार विद्या सिद्ध करने के लिये वहाँ से निकल गए। दो दिन के उपवास के बाद विद्या सिद्ध हुई तो उन्होंने विद्या की अधिष्ठात्री देवियो को देखा कि एक देवी के दाँत बाहर निकले हुये है और दूसरी कानी (अंधी) है। "विकृतांग होना देवताओं का स्वभाव नही है"। इस प्रकार दोनो ने विचार किया। मन्त्र-सम्बन्धी शास्त्र मे कुशल उन दोनो ने हीन अक्षर वाले मन्त्र में अधिक अक्षर मिला कर और अधिक अक्षर वाले मन्त्र मे से अक्षर निकाल कर मन्त्र का पढ़ना प्रारम्भ किया तो दोनो देवियाँ अपने स्वभाव और सुन्दर रूप में उपस्थित दिखलाई पड़ी।

तत्पश्चात् गुरुवर धरसेन के समक्ष योग्य विनय सहित उन दोनो ने विद्या-सिद्ध सम्बन्धी समस्त वृत्तान्त को निवेदन किया। बहुत अच्छा "सुट्ठु तुट्ठेण" इस प्रकार सन्तुष्ट हुये धरसेन भट्टारक ने शुभ तिथि नक्षत्र आदि में ग्रन्थ का पढ़ना प्रारम्भ किया। इस प्रकार क्रम से व्याख्यान करते हुये धरसेन भगवान् से उन दोनो ने आषाढ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी के पूर्वान्ह काल में ग्रन्थ समाप्त किया। उसी दिन वहाँ से भेजे गये उन दोनो ने "गुरु वयणमलंघणीज्जं" गुरु के वचन अलघनीय होते हैं। ऐसा विचार कर आते हुये अंकलेश्वर (गुजरात) मे वर्षा योग किया।

> ज्येष्ठ सितपक्ष पंचम्यां चातुर्वर्ण्य संघ समवेत.।
> तत्पुस्तकोपकरणैर्व्यधात् क्रियापूर्वक पूजाम् ॥ ४८ ॥
> श्रुत पंचमीति तेन प्रख्याति तिथिरय परामाप।
> अद्यापि येन तस्या श्रुत पूजा कुर्वते जैन ॥
> इन्द्रनंदी श्रुतावताह ॥

अर्थ—भूतबली आचार्य ने षट्खण्डागम की रचना करके ज्येष्ठ शुक्ला को चतुर्विधि सघ के साथ उन शास्त्रो को उपकरण मानकर श्रुतज्ञान की पूजा की जिससे श्रुतपचमी तिथि की प्रख्याति जैनियो मे आज तक चली आ रही है। और उस तिथि को वे श्रुत की पूजा करते है।

वर्षा योग को समाप्त कर जिन पालित पुष्पदन्त आचार्य ने दीक्षा दी। बीस प्ररूपणा गर्भित सत्प्ररूपणा के सूत्र बना कर जिन पालित को पढ़ाकर उन्हे भूतबली आचार्य के पास भेजा। भूतवलि आचार्य ने जिन पालित से जान लिया कि पुष्पदन्त आचार्य की अल्पायु है।

अतः महाकर्म प्रकृति प्राभृत का विच्छेद न हो इस प्रकार विचार कर भूतबलि आचार्य ने द्रव्यप्रमाणानुगम आदि को लेकर ग्रन्थ रचना की। इसीलिये इस खण्ड सिद्धान्त की अपेक्षा भूतबलि एव पुष्पदन्त आचार्य भी श्रुत के कर्त्ता कहे जाते है। ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी श्रुतपंचमी का महान् पर्व है, इसको ज्ञान पचमी भी कहते हैं।

॥ पांच श्रुत धाम हैं ॥

(१) पवित्र श्रुततीर्थ राजगृह का विपुलाचल है जहाँ महावीर स्वामी ने श्रुत ज्ञान की गंगा बहायी और गणधर देव ने इसे झेलकर बारह अगो की रचना की।

(२) गिरनार की चन्द्रगुफा जहा धरसेन स्वामी, पुष्पदन्त व भूतबलि इन मुनिद्वयवरो को अमूल्य श्रुत का उत्तराधिकार दिया।

(३) अंकलेश्वर जहाँ वह जिनवाणी पुस्तकारूढ हुई और चतुर्विधि संघ ने श्रुत का महोत्सव किया।

(४) मूड़बद्री जहाँ पर जिनवाणी ताड़पत्रो पर सुरक्षित रूप से विराजमान है और आज हमें प्राप्त हुई।

(५) पोन्नूर हिल जहाँ श्री कु० कु० आचार्य ने परमागम शास्त्र, समयसार, प्रवचन सार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड आदि की रचना की।

> ये यजन्ते श्रुत भक्त्या ते यजन्तेऽञ्जस. जिनम।
> न किंचिदन्तर प्राहुराप्ता हि श्रुत देवयो ॥

—:०:—

किरात जाति और उसकी ऐतिहासिकता

☐ डा० रमेशचन्द्र जैन

ऐतिहासिक आधारों[1] साहित्यिक प्रमाणों[2] एवं भाषा विज्ञान के साक्ष्यों[3] से विदित होता है कि प्राचीनकाल में हिमालय के जंगलों में कोल जाति आखेट और कन्दमूल, फल आदि से अपना निर्वाह करती थी, पूर्व की ओर से लघु हिमालय की ढालों पर पशुचारण करती हुई किरात जाति ने हिमालय मे प्रवेश किया। धीरे-धीरे कोल जाति को बीहड़ क्षेत्रों की ओर धकेल कर या आत्मसात करके यह जाति आसाम से नेपाल, कुमायू, कागड़ा होती हुई स्फीती, लाहुल और लद्दाख[4] तक फैल गयी[5]।

प्राचीन साहित्य और स्थापत्य में इस जाति का किरात, कीर, किन्नर और भिल्ल नामों से उल्लेख मिलता है। कीर या किन्नर सम्भवत. किरात जाति की प्राचीन तम शाखा थी। उसका सम्बन्ध मुख्यत: भागीरथी से पश्चिम के पर्वतीय क्षेत्रो से जोड़ा जाता है[6]। भिल्ल शब्द का प्रयोग सम्भवत: किरात और अन्य वनचर जातियो के लिए व्यापक अर्थ मे होता था[7]।

असम, सिक्किम और भूटान मे तो आज भी किरात जाति का बाहुल्य है। प्राचीन काल मे मिथिला, नेपाल, उसका पूर्वी भाग आज भी किराती या किरात देश कहलाता है, कुमायूं जहाँ आज भी राजी या राजकिरात रहते हैं[8], गढ़वाल जहाँ अनेक कीर नामयुक्त गाव मिलते हैं[9], टिहरी जहाँ भागीरथी की प्रमुख सहायक आज भी (भिल्लगंगा[10]) कहलाती है, गगोत्तरी का टकणौर प्रदेश, भागीरथी ऋग्वैदिक काल मे किराती नाम से प्रसिद्ध थी,[11] यमुनाघाटी, जहाँ कश्यपसहिता के अनुसार किरात जाति का गढ़ था[12], तथा कागड़ा, जहाँ बारहवी शताब्दी तक बैजनाथ कीरग्राम (किरातग्राम) कहलाता था[3], किरात जाति के प्रमुख केन्द्र थे।

चपटी मुखाकृति, चपटा भाल, छोटी या पिचकी नाक, मूछ, दाढ़ी की कमी, पीला या गेहूंवा रंग, अपेक्षाकृत नाटा आकार एव हृष्ट पुष्ट शरीर, ये किरात जाति की विशेषतायें है, जो महाहिमालय की उत्तरी और दक्षिणी ढालो के निवासियो म लद्दाख, लाहुल और कनौर से लेकर असम तक मिलती है।[14]

पूर्व की ओर असम के नागा प्रदेश से आगे वर्मा, थाई (श्याम) होते हुए हिन्दचीन-कम्बोदिया तक इस जाति का प्रसार मिलता है। इस किरात जाति को वर्तमान विद्वानों ने तिब्बती-बर्मी भाषा के 'मोन' शब्द और कम्बोदिया (कम्बुज) की भाषा के 'ख्मेर' शब्द को जोड़कर 'मोन' ख्मेर' नाम दिया है।[15]

किरात जाति पशुचारक-आखेटक जाति थी। वह भेड़े पालतीं और काले कम्बल की गाती से शरीर ढकती थी[16]। इस जाति में जाति प्रथा नहीं थी, वह न जनेऊ पहनती और न पुरोहित रखती थी। शौचाचार से अनभिज्ञ उसका जीवन म्लेच्छो जैसा था[17]। अन्य पशुचारक जातियों के समान उसमे भी पति-पत्नी के सम्बन्ध ढीले-ढाले होते थे।[18]

कांगडा के किरात ऋग्वैदिक आर्यों के प्रबल प्रतिद्वन्द्वी थे[19]। उनके नेता सम्बर ने आर्यों को लोहे के चने चबवाए थे[20]। जैन साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है जब भरत चक्रवर्ती दिग्विजय करते हुए कैलाश की ओर बढ़े थे तो गगाजी के स्रोत प्रदेश (गढ़वाल) में उनका किरातो से घोर युद्ध हुआ था[21]

किरात जाति के अवशेष अब मुख्यत: उत्तरी सीमान्त प्रदेश और तराई में ही मिलते है। इन क्षेत्रो में भी पश्चिम की अपेक्षा पूर्व की ओर किरातों की भारी जन संख्या है लद्दाख के भोटा, चम्बा के लाहुली, लाहुल के निचले भागो के निवासी, स्पिति के सिपयाल, कुल्लू में मलाणा गाव के मलाणी, सतलज की उपरली घाटी के कनौर (किन्नर), नेलंङ् के जाड, माणा-नीती के मारछा-तोलछा, मिलम के जोहारी, असकोट (पिथौरागढ) के राजी (राज किरात)[22] पश्चिमी नेपाल के मगर और गुरङ, मध्यनेपाल के तमङ्, नेपाल उपत्यका के नेवार, पूर्वी नेपाल की तीनो किराती जातियाँ, लिम्बू, याखा और राई, सिकिम के लेपचा और असम के नागा तथा कामरूप की अनेक मोन-पा जातियाँ उसी महान् किरात या मोन-ख्मेर जाति की अवशेष मानी जाती हैं।[23]

किरातो की दक्षिणी शाखा भाङ या मोगा जाति

हरिद्वार से पूर्व की ओर नैनीताल, उत्तर प्रदेश और नेपाल तथा दरभंगा की तराई में मिलती है। तिरहुत (तीरभुक्ति) को यह नाम इसी जाति के बाहुल्य से मिला है।

पश्चिम की ओर यह जाति बोकसा और महर नाम से गढ़वाल और देहरादून के भाबर मे घिरत, चांग और बाती आदि नामो से होशियारपुर, कागडा और जम्मू तक मिलती है। प्राचीनकाल में इस जाति का प्रसार तराई के दक्षिण मे पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल मे व्यापक रूप से हुआ था। पंजाब-सिन्धु के मैदान मे भी किरातों की टोलियाँ फैली थी, जैसा हड़प्पा की एक समाधि से कपाल से विदित होता है।(अ)

लघु हिमालय के ऊँचे और बीहड पठारो पर भी जहाँ पशुचारक-कृषक खशो ने बसना पसंद नही किया। भिल्ल किरातों की कुछ टोलियाँ बची रही गयी और शताब्दियो तक अपनी विचित्र रीति-नीतियो के कारण अपना पृथक अस्तित्व बनाए रहीं।

अर्जुन को शिव उत्तराखण्ड में किरातवेश में ही मिले थे। ह्नांगहो के उदगम प्रदेश से जब मङ्गोल मुख मुद्रा वाली तिब्बती चीनी जाति दक्षिण में उतरकर असम की पश्चिम को ओर बढी तो उसे यहां पहले से बसी किरात जाति मिली। आठवीं शताब्दी से तिब्बती मंगोल भी हिमालय से इस ओर बढ़कर किरातो मे मिलते रहे और आज भी मिलते जा रहे है।

वेद, रामायण, महाभारत, निरुक्त, कालिदास, बाराहमिहिर, बाण और तालमी को हिमालय के किरातो का पता था रामायण मे तो समुद्री किरातो (हिन्द चीनियो तक का उल्लेख है। इसलिए निश्चित है कि मङ्गोल मुख मुद्रावाली किरात जाति हिमालय प्रदेश मे कम से कम तीन हजार वर्षों से है। हिमालय प्रदेश में इस मोन या मोन-पा जाति के वंशज, चाहे उन्होने परिस्थिति बस तिब्बती भाषा, तिब्बती रीति-नीतियाँ और तिब्बत में प्रचलित लामा धर्म की विशेषतायें भी अपना ली हों, अवश्य किरातवंशी और भारतीय हैं।

दसवी शताब्दी से हमारे उत्तरी सीमन्त के लिए, जो मानसरोवर प्रदेश के दक्षिण में लद्दाख से कामरूप (उ० पू० सी०) तक विस्तृत है, भोट (तिब्बत) के सीमान्त से मिला होने के कारण भोटान नाम का प्रयोग होने लगा।

और इस उत्तरी सीमान्त के किरातो के लिए भुट्ट, भोटा, भोटांतिक जैसे नामो का प्रयोग आरम्भ हुआ। दसवी शताब्दी मे काशी के कवि सम्भवतः विद्याधर ने नेपाल के नेवारो के साथ भोटांतो का उल्लेख किया है।[33]

ग्यारहवी शताब्दी मे क्षीर स्वामी ने दर्दरो के साथ भुट्टो को भी म्लेच्छो में गिना है। इस शताब्दी में कल्हण ने तिब्बत के भूतो और लद्दाख के भुट्टो का तथा अलबरूनी ने लद्दाख के भूटवारी दस्युओं और भूटेसर (भूटान) का उल्लेख किया है।

डॉ० डी० सी० सरकार ने बिहार प्रान्त स्थित राजगिरि के तप्तकुण्डो मे आरम्भ कर रामगिरि पर्यन्त विन्ध्याचल प्रदेश को किरात जनपद कहा है। आदिपुराण मे किरात जनपद को भीलों का प्रदेश माना गया है।

यशस्तिलक चम्पू में कहा गया है कि सम्राट् यशोधर जब शिकार के लिए गए तब उनके साथ अनेक किरात शिकार के विविध उपकरण लेकर साथ मे गए। पन्नवणा सूत्र मे अनार्यों मे शक, यवन, किरात, शबर, बर्बर आदि म्लेच्छ जातियो का उल्लेख है। वेदव्यास ने किरातो को शूद्रों की ही एक उपशाखा माना है। मनु ने किरात को शूद्र की स्थिति को प्राप्त क्षत्रिय माना है। वैदिक साहित्य मे किरातो का उल्लेख प्राप्त होता है। महाभारत के अनुशासन पर्व मे भी किरात को शूद्रवत् बताया गया है। किरातार्जुनीय मे शिव, अर्जुन की परीक्षा के लिए किरात रूप मे उपस्थित होते हैं, जिसमे उनके स्वरूप का वर्णन करते हुए भारवि ने लिखा है कि उनकी केश राशि फूलों वाली लताओ के अग्रभाग से बधी थी। कपोल मोर पंख से सुशोभित थे और आखो मे लालिमा थी। सीने पर हरिचन्दन की टेढ़ी-मेढी रेखायें खिची हुई थी, जिन्हे उष्णता के कारण बहते हुए पसीने ने बीच-बीच में काट दिया था और हाथ में बाण सहित विशाल धनुष था। अमरकोश मे किरात, शबर और पुलिंद को म्लेच्छ जाति की उपशाखा कहा गया है। अभिधानरत्नमाला में किरात को एक उपेक्षित एवं जंगली जाति का बताया गया है।

महाभारत के कर्ण पर्व मे किरात आग्नेयशक्ति के द्योतक माने गये है[४]। आश्वमेधिक (७३/२५) मे वर्णन है कि अर्जुन को अश्वमेधीय घोड़े के साथ चलते समय किरातो, यवनो एवं म्लेच्छो ने भेटें दी थी। भारतीय जनजातियो की महिला परिचारिकाओ का भगवती सूत्र[५] मे उल्लेख स्पष्ट रूप से यह द्योतित करता है कि उत्तर मे वैशाली से किरात देश तक व्यापार सम्बन्ध थे[६]। जम्बुद्दीव पण्णत्ति में किरातो का चिलात (चिलइया) के रूप में उल्लेख किया गया है। विष्णु पुराण मे किरातो का उल्लेख है[७]। वीर पुरुषदत्त के राज्य के १४वे वर्ष के नागार्जुनकुण्ड अभिलेख मे भी किरातो का उल्लेख है। इन सब मे इस जाति को अनार्य कहा गया है। नागार्जुनकुण्ड अभिलेख मे किरातो का बदनाम, बेईमान व्यापारियो के रूप मे वर्णन है। मेगस्थनीज के वर्णन मे ऐसे व्यक्तियो का उल्लेख है, जिनके नथुने के स्थान पर केवल छिद्र होता था। सम्भवत: ये किरात थे। टॉलमी ने किरातो को सोडियन (वर्तमान सूद) जाति का कहा है जो अक्ष (Oxus) नदी द्वारा बैक्ट्रियाना (Bactriana) से अलग हो गयी थी।

यह जाति हिमालय के दक्षिणी विस्तृत भू-भाग ब्रह्मपुत्र के पास के पूर्वी इलाके असम, पूर्वी तिब्बत (भोट), पूर्वी नेपाल[११] तथा त्रिपुरा[१२] में बस गयी थी। विमलसूरि कृति पउमचरिय मे उल्लिखित है कि कुछ अनार्यो ने जनक के देश पर आक्रमण कर दिया था। ये जातियाँ थी म्लेच्छ, शबर, किरात, कम्बोज, शक तथा कपोत[१३] (कपिश)।

भारतीय साहित्य मे किरातो का प्रयोग सामान्य अर्थ किया गया है। कालिदास के किरात निश्चय ही तिब्बती या लद्दाख, जस्कर और स्पगु के तिब्बती वर्मी थे। फिर भी मानसरोवर के चतुर्दिक निवास करने वाले, तिब्बतियो को किरात मानने मे कोई बाधा नही। यद्यपि काराकोरम की घाटी से पूर्व से बहने वाली गंगा के पहले नही, किन्तु बाद किरातों का सामना होता है तो भी कैलाश के दृश्य का उल्लेख हुआ है[१५] और मान सरोवर उसी पर्वत श्रृंखला में है। उसमे कोई सन्देह नही कि भूटान और उसके पड़ोस के निवासी किरात कहे गए हैं। पेरिप्लस[१६] किरातों को गंगा के मुहाने के पश्चिम के निवासी मानता है और पोलेमी टिपेरा के आस पास के परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय साहित्य मे उनको समस्त हिमालय श्रृंखला में और विशेषत: ब्रह्मपुत्र की तराई मे स्थान दिया गया है। किन्तु कालिदास उनको लद्दाख के आस पास में रखते हैं[१७]।

किरात भारत की अति प्राचीन अनार्य (संभवत: मंगोल) जाति जिसका निवास-स्थान मुख्यत. पूर्वी हिमालय के पर्वतीय प्रदेश मे था। प्राचीन संस्कृत साहित्य में किरातो के विषय मे अनेक उल्लेख मिलते है। जिनसे कई मनोरंजक तथ्यो का पता लगता है। प्राय. उनका सम्बन्ध पहाडो और गुफाओं से जोडा गया है और उनकी मुख्य जीविका आखेट बताई गयी है। अथर्ववेद में सर्पविष उतारने की औषधियो के सम्बन्ध मे किरात बालिका की स्वर्णकुदाल द्वारा पर्वत भूमि से भेषज, खोदने का उल्लेख है (अथर्व० १०४,१४) वाजसनेयी संहिता (३०,१६) और तैत्तिरीय ब्राह्मण में किरातो का सम्बन्ध गुहा से बताया गया है--'गुहाम्य. किरातम्'। बाल्मीक रामायण में किरात नारियो के तीखे जूड़ो का वर्णन है, और उनका शरीर वर्ण सोने के समान वर्णित है—किरातास्तीक्ष्णचूडाश्च हेमाभः प्रियदर्शनाः (किष्किंधाकाण्ड ३४०/२६)।

(क्रमश)

सन्दर्भ

१. Rapson -Cambsidge hirtory of India vol. II
२. कालिदास का भारत भाग १ पृ० ६४
३. ग्रियर्सन : Linguistic survey of India Vol I Part I पृष्ठ ४१ ४५
४. कालिदास का भारत भाग १ पृ० ६४
५. राहुल साकृत्यायन—ऋग्वैदिक आर्य पृ० ८२
६. राहुल सांकृत्यायन : गढ़वाल पृ० ४२
७. चकार वसतिं तत्र भिल्लाना निचयैर्युत.।
तत्तदाचरण कुर्वंस्त तदा भगवानपि.।
रेमे 'सोऽपि किरातैश्च'—केदारखड २०६/२-३
८. Sherying : Western Tibet and British borderland P. 15
९. यथा—किरखू, किरसू, खिरसू, किरभाणा, किरमोला, किरपोली, किरसात, किरसिया, कीर आदि।
१०. केदारखण्ड अध्याय २०६ (शेष पृ० ३ कवर पर)

आगमों के सम्पादन की 'घोषित-विधि' सर्वथा घातक है

पद्मचन्द्र शास्त्री, सम्पादक 'अनेकान्त'

'प्राकृत-विद्या' जून ९४ मे प्रकाशित आगम-सम्पादन की निम्न विधि को पढकर हमे बड़ी वेदना हुई कि—"उन्होंने संपादक ने) अनेक ताडपत्रीय, हस्तलिखित और मुद्रित प्रतियों का तुलनात्मक अध्ययन करके अपने सम्पादन के कुछ सूत्र निर्धारित किए और उन सूत्रों के अनुसार प्रचलित परम्परा की लीक से कुछ हट कर छात्रोपयोगी सम्पादन किया।"

उक्त घोषणा से नि सन्देह विश्वमान्य सम्पादन-विधि के विपरीत—एक आत्मघाती, ऐसी परम्परा का सूत्रपात हुआ जिससे परम्परित प्राचीन मूलआगमो की असुरक्षा (लोप) का मार्ग खुल गया। क्योकि ऐसे और व्यक्ति भी हो सकते है जो जब चाहे मनमानी किसी भी अन्य भाषा का सूत्र-रूप मे निर्धारण कर परम्परा की लीक से हट कर सपादन कर ले। ऐसे मे आगमो का मूल अस्तित्व सन्देह के घेरे मे पड़ जायगा और किसी अन्य की कृति को बदलने का हर किसी को अधिकार हो जायेगा और ऐसा करना सर्वथा अन्याय ही होगा।

वस्तुत: आगमों की भाषा के सम्बन्ध में विद्वानों में अभी तक किसी एक भाषा का निर्धारण या अन्तिम निर्णय नही हो सका है और न निकट भविष्य में इसकी संभावना ही है। भाषा के सम्बन्ध मे अभी तक विद्वानो के विभिन्न सन्देहास्पद मत ही रहे है।

उक्त अक मे ही प्राचीन परम्परित प्राकृत आगमो मे व्याकरण का प्रयोग सिद्ध करनेके लिए अनेक व्यर्थके उद्धरण भी दिए गए है और वे भी परम्परा से हट कर। आखिर, गाड़ी लीक से उतर जाय तो दुर्घटना क्यो न हो? हमने इस लेख मे उन लीक से हटे उद्धरणो को निरस्त करने के लिए आगम के प्रमाणों एवं युक्तियों का उपयोग किया है ताकि आगम श्रद्धालु वस्तुस्थिति को समझ सकें। तथाहि—

१. वागरण' का प्रसंग गत अर्थ : व्याख्या

आगम मे कई प्रकार के सूत्र बतलाए गए है, जैसे—१. 'सूचना सूत्र २. पृच्छा सूत्र ३. वागरण सूत्र आदि। इनकी परिभाषा के सम्बन्ध मे पं० कैलाशचन्द शास्त्री ने अपने 'जैन साहित्य का इतिहास' ग्रन्थ प्रथम भाग के पृष्ठ ३३ पर इस भांति लिखा है—

सूचना सूत्र 'जिस गाथा द्वारा किसी विषय की सूचना दी गई हो उसे सूचना सूत्र कहते हैं।' जैसे—"केवडिया उवजुत्ता सरिसीसु च" आदि — कसायपाहुड की ६७वीं गाथा।

पृच्छा सूत्र—'जिन गाथाओं मे किसी विषय की पृच्छा की गई हो, कोई बात पूछी गई हो वे गाथाएं पृच्छा सूत्र कही गई है।' जैसे—'केवचिरं' उवजोगो कम्मिकसायम्मि' आदि कसायपाहुड की गाथा ६३।

वागरण सूत्र—'जिसके द्वारा किसी विषय का व्याख्यान किया जाता है उसे वागरण यानी व्याख्या सूत्र कहते हैं। जैसे 'सव्वेसु चाणुभागेसु संकमो मज्झिमो उदओ' आदि कसाय पाहुड की २१९वी गाथा का उत्तरार्ध।

लेख में संशोधकों की ओर से उक्त गाथा के 'सव्वेसु चाणुभागेसु सकमो मज्झिमो उदयो त्ति एदं सव्वं वागरण सुत्तं' इत्यादि टीका गत भाग को शब्दशास्त्र सम्बन्धी व्याकरण सूत्र (ग्रामर) बतलाने का असाध्य प्रयास किया गया है, जबकि प्रसंग में यह व्याख्या सूत्र है—ग्रामर जैसा कुछ नहीं है।

संशोधको की दृष्टि में यदि उक्त, उद्धरण शब्द शास्त्र (ग्रामर) सम्बन्धी सूत्र है तो क्या कोई सम्मानित व पुरस्कृत बडे से बड़े ज्ञाता यह बताने मे समर्थ है कि यह सूत्र शौर सैनी आदि प्राकृतो मे से किस प्राकृत के लिए निर्धारित है और इसका क्या प्रयोजन है तथा यह किस शब्द रूप की सिद्धि में उपयोगी है और कौन से आदेश, आगम या प्रत्यय आदि का विधान करता है और इसका क्या शब्दार्थ है? आगमो और आचार्यों के मत में तो उक्त प्रसंग मे आया 'वागरण' शब्द व्याख्या के अर्थ में लिया गया है—व्याकरण सूत्र (ग्रामर) जैसे अर्थ में नही।

गाथा की उक्त पंक्ति 'कसाय पाहुड सुत्त' की है। और कसाय पाहुड भाग १६ पृ० ५७ पर 'वागरण' सूत्र के विषय मे स्पष्ट लिखा है—

"एद णज्जदि' एवमुक्ते एतत्परिज्ञायते किमिति वागरण सुत्त ति, **व्याख्यान सूत्रमिति**, व्याक्रियतेऽनेनेति व्याकरणं **प्रतिवचनमित्यर्थः**। अर्थात् ऐसा कहने पर यह जाना जाता है कि यह व्याकरण (ग्रामर) सूत्र है या व्याख्यान सूत्र है ? जिसके द्वारा व्याक्रियते अर्थात् विशेष रूप से—पूरी तरह से मीमासा की जाती है उसे व्याकरण (वागरण) सूत्र कहते है, उसका अर्थ होता है **प्रतिवचन**।"

उक्त प्रसंग से स्पष्ट है कि यहा **वागरण का अर्थ शब्दशास्त्र संबधी व्याकरण (ग्रामर) नहीं है,** अपितु व्याख्या है। खेद है, फिर भी अपनी मान्यता को सिद्ध करने के लिए मूलाचार्यो की व्याख्या को भी बदलने का अनुचित कार्य किया गया। मूलभाषा तो इन्होंने बदल ही दी।

२. 'बड्ढउ वायगवंसो जसवंसो अज्जणागहत्थीणं।
वागरण-करणभंगिय-कम्मपयडी पहाणाणं॥

—उक्त गाथा श्वेताम्बर ग्रंथ नन्दीसूत्र की है। जिसे संशोधको ने व्याकरण की सिद्धि मे दिया है। इसमें वाचकवंश के ख्यात आचार्य नागहस्ती की विशेषताओ का वर्णन करते हुए उनकी यश कामना की गई है। यहाँ भी वागरण का अर्थ, (आचार्य के वाचक होने से) शब्द शास्त्र सम्बन्धी व्याकरण न ग्रहण कर प्रश्न-व्याकरण नाम दशवें अंग के व्याख्याता (वाचक) के रूप मे ग्रहण किया है गाथा के अर्थ के लिए नन्दी सूत्र की व्याख्या दृष्टव्य है। तथाहि —'वागरण=प्रश्न व्याकरण, करण=पिण्डविशुध्यादि, भंगिय=चतुर्भंगिकाद्या, कम्मपयडि=कर्मप्रकृति प्रतीता एतेषु **प्ररूपणामधिकृत्य** प्रधानानामिति गाथार्थः।' पृ० १२

'वागरण' का एक अर्थ 'सद्दपाहुड' भी अंकित है। कोश में 'सद्द' का अर्थ ध्वनि और 'पाहुड' का अर्थ उपहार किया गया है दोनो ही भांति वागरण का प्रसंगगत अर्थ शब्दरूपी उपहार देने वाला—व्याख्याता ही ठहरता है और यही नागहस्ती मे उपयुक्त भी है।

प्रश्न व्याकरण (दशम अंग) के वर्ण्य विषय में कहा गया है कि "अंगुष्ठादि प्रश्न विद्यास्ता व्याक्रियन्ते अभिधीयन्तेऽस्मिन्निति प्रश्न व्याकरणं" "**पण्हो त्ति पुच्छा, पडिवयणं वागरणं प्रत्युत्तरमित्यर्थः**"—पृ० १२

इसके अतिरिक्त 'सन्मति तर्क प्रकरण' में वागरण से व्युत्पन्न शब्द '**वागरणी**' आया है विद्वानो ने मूल-वागरणी को निम्न अर्थों मे लिया है—

(क) श्री अभयदेव सूरि=आद्यवक्ता ज्ञाता वा।
(ख) श्री सुखलाल जी=मूल प्रतिपादक।
(ग) श्री बेचरदास जी= ,, ,, ,, ।
(घ) डा० देवेन्द्र कुमार=मूल व्याख्याता।
(च) क्षु० सिद्धसागर जी=मूल विवेचन करने वाला।
(छ) षट् खंडागम[1] =मूल व्याख्याता।
(ज) कसाय पाहुड (मथुरा)=व्याख्यान करने वाला।
(झ) लघीयस्त्रय (स्वोपज्ञ)='तीर्थंकर वचन संग्रह—विशेष प्रस्ताव मूल-व्याकरिणौ द्रव्यपर्यायार्थिकौ निश्चेतव्यौ।'

संशोधको ने उक्त लेख मे ही कसायपाहुड सुत्त (कलकत्ता) की हिन्दी प्रस्तावना पृ० ६ से जो यह उद्धृत किया है कि—'**जो संस्कृत और प्राकृत व्याकरणों के वेत्ता हैं।**' वह अर्थ भी नन्दी सूत्र की उक्त गाथा से फलित नही होता। क्योकि गाथा में संस्कृत व प्राकृत का कही उल्लेख नही और न ही उक्त गाथा की व्याख्या में कहीं ऐसा कहा गया है अतः—मात्र हिन्दी देख कर ऐसा लिखना प्राकृतज्ञो को शोभा नही देता। और न उक्त हिन्दी मात्र को देख कर उनका यह लिखना ही संगत है कि—"आचार्य नागहस्ती संस्कृत प्राकृत व्याकरणो के वेत्ता थे, तो यह निश्चित और असंदिग्ध तथ्य है कि उस समय इन भाषाओ के व्याकरण के ग्रन्थ भी विद्यमान थे।"

उक्त स्थिति में ज्ञाता स्वयं विचारें कि 'वागरण' के प्रसंगगत 'व्याख्या' अर्थ को तिलांजलि देकर उसे ग्रामर जैसे अर्थ मे प्रसिद्ध करना कैसे उचित है? और प्रासंगिक आगम-व्याख्याओं में भी बदल करना कौन सी,

टिप्पण० (१) 'तित्थयरवयणसंगह विसेस पत्थार मूलवागरणी'

कितनी बड़ी स्वच्छ प्रक्रिया है ? क्या, आगमो के अस्थिर होने से जैन स्थिर रह सकेगा या परिवर्तन करने वालो का नाम अजर अमर रह सकेगा ? सोचने और चिन्ता का विषय है।

३-४ आचार्य जयसेन की दुहाई :

हमें हँसी आती है उस परिकर पर, जहाँ से आचार्य जयसेन की टीकागत गाथा २७, ३६, ३७, ७३, १६६ के **'इक्क'** गाथा १७, ३५, ३७३, के **'ऊण'** प्रत्ययान्त शब्द गाथा ५ के **चुक्किज्ज**। गाथा ३३ के **'हविज्ज'**। गाथा ३०० के **'भणिज्ज**।' गाथा ४४, ६८, १०३, २४० के **'कह'**। और अण्णाणमोहिदमदी, सव्वण्हुणाणदिट्ठो, जदि सोपुग्गल **दव्वीभूदो**, गाथाओं के **'पुग्गल'** शब्द आगम भाषा से वहिष्कृत किए गए हो वही मे अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए अब आचार्य जयसेन की व्याकरण पंक्तियों की दुहाई दे, उन्हे वैयाकरण स्वीकार किया जाय ? क्या, आचार्यश्री तब व्याकरणज्ञ नही दिखे जब उनके द्वारा स्वीकृत उक्त शब्द रूपों का बहिष्कार किया गया। और आगम भाषा को भ्रष्ट बताकर लगातार कई आगम बदल दिए गए।

हम स्पष्ट कर दें कि 'आचार्य श्री जयसेन ने व्याकरण सम्बन्धी जो भी पंक्तियाँ दी है वे प्राकृत से अनभिज्ञ संस्कृत-पाठियो को दृष्टिगत करदी है। संस्कृत के नियम प्राकृत भाषा मे लागू नही है। आचार्य ने प्राकृत शोधन में कही भी पश्चाद्वर्ती व्याकरण की अपेक्षा नही की और न ही कोई व्याकरण प्राकृत भाषा मे बना है। जितने भी व्याकरण हैं वे संस्कृत भाषा के शब्दो के आधार पर बाद में बने हैं। प्राकृत भाषा तो स्वाभाविक भाषा है जो **'बालस्त्रीमन्दमूर्खाणा'** सभी के लिए सरल ग्राह्य है।

५. डा० नेमीचंद का मत अस्थिर :

संशोधको के मत में यदि डा० नेमिचद ने आगमो की भाषा को शौरसैनी लिख दिया है तो उन्होंने कही यह भी तो लिख दिया है कि—"प्राचीन गाथाओं की भाषा शौरसेनी होते हुए भी महाराष्ट्रीपन से युक्त है। भाषा की दृष्टि से गाथाओ में एकरूपता नही है अर्धमागधी और महाराष्ट्री प्रभाव इन पर देखा जा सकता है।" प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास'। पृष्ठ २१७

इसी मे पृ० १७, १८ पर डा० नेमीचन्द ने यह भी लिखा है कि "प्राकृत भाषा मे ईसवी सन् की दूसरी शती तक उप-भाषाओं के भेद भी प्रकट नही हुए थे। सामान्यतः प्राकृत भाषा एक ही रूप मे व्यवहृत हो रही थी। इस काल में वैयाकरणो ने व्याकरण-निबद्ध कर इसे परिनिष्ठित रूप देने की योजना की।" स्मरण रहे, कि उक्तकाल आचार्य कुन्दकुद के बाद का है।

यदि उक्त डा० साहब का निश्चित मत होता कि दि० आगमो की भाषा शौरसेनी है तब न तो वे भाषा मे उपभेदो की उत्पत्ति दूसरी शताब्दी से बताते और ना ही तब तक के काल मे प्राकृत भाषा के एक (अभेद) रूप मे व्यवहृत होने की बात करते। इतना ही नही, उन्होने तो शौरसेनी के 'त' को 'द' मे परिवर्तित होने जैसे मुख्य नियम की भी उपेक्षा कर 'आगमो मे (शौरसेनी भाषाहीन) अन्य भाषाओ के शब्द रूप भी स्वीकार किए है। जैसे— **गइ, रहियं, वीयराय, सव्वगय, सुयकेवलि, सम्माइट्ठी, मिच्छाइट्ठी** आदि। वही, पृष्ठ ४५-४६।

डॉ० नेमीचन्द जी के अनुरूप उनके गुरुदेव डा० हीरालाल जी का भी यही मत था कि आगमो की भाषा मिली जुली प्राकृत है। प्राकृत भाषा के धुरन्धर विद्वान् डा० उपाध्ये भी इसे स्वीकार करते है। -देखे, हमारे पूर्व लेख अनेकान्त मार्च ९४।

जैन आगमों के महान वेत्ता प० कैलाश चन्द शास्त्री के मत मे—'द्वादशाग श्रुत की भाषा अर्धमागधी थी। किन्तु उनका लोप होने पर भी महाराष्ट्री और शौरसेनी भाषाएँ, जो प्राकृत के ही भेद है, जैन आगमिक-साहित्य की रचना का माध्यम रही।'

—जैन साहित्य का इतिहास भाग १, पृष्ठ ३।

हम इस प्रसंग मे डा० मोहनलाल मेहता द्वारा 'श्रमण' जून ९४ मे प्रकाशित लेख के कुछ उन अंशों को उद्धृत करना भी उपयुक्त समझते है, जिनसे परम्परित प्राचीन आगमो की भाषा की विविधता और सम्पादन सम्बन्धी विश्वमान्य-विधि जैसी हमारी मान्यता की पुष्टि होती है। तथाहि

१. 'प्राकृत का मूल-आधार क्षेत्रीय बोलियां होने से उसके एक ही काल मे विभिन्नरूप रहे है प्राकृत व्याकरण

में जो 'बहुल' शब्द है वह स्वय इस बात का सूचक है कि चाहे शब्द रूप हो, चाहे धातु रूप हो, या उपसर्ग आदि हो उनकी बहुविधता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।' पृ० २४७।

२. 'यदि मूलपाठ मे किसी प्रकार का परिवर्तन किया भी जाता है। तो भी इतना तो अवश्य ही करणीय होगा कि पाठान्तरो के रूप मे अन्य उपलब्ध शब्द रूपो को भी अनिवार्य रूप से रखा जाय साथ ही भाषिक रूपों को परिवर्तित करने के लिए जो प्रति आधार रूप में मान्य की गई हो उसकी मूल प्रति छाया को भी प्रकाशित किया जाय क्योंकि छेड़-छाड़ के इस क्रम में साम्प्रदायिक आग्रह कार्य करेंगे, उससे ग्रन्थ की मौलिकता को पर्याप्त धक्का लग सकता है।' पृ० २४८।

३. "आगम सम्पादन और पाठ शुद्धिकरण के उपक्रम में दिए जाने वाले मूल पाठ को शुद्ध एव प्राचीन रूप मे दिया जाय, किन्तु पाद टिप्पणियों मे सम्पूर्ण पाठान्तरो का संग्रह किया जाए। इसका लाभ यह होगा कि कालान्तर मे यदि कोई सशोधन कार्य करे तो उसमें सुविधा हो।" पृष्ठ २५३। स्मरण रहे कि इन्होने हमारे बारम्बार लिखने पर भी टिप्पण नही दिए।

हमे आश्चर्य है कि ऐसी स्थिति मे भी कुछ लोग भ० ऋषभदेव के व्याकरण तक की बात उछालते है। हालाकि वे आचार्य कुन्दकुन्द तक का भी कोई प्राकृत-व्याकरण नही खोज सके। फिर यह भी प्रश्न महत्त्वपूर्ण है कि उनके व्याकरण यदि थे भी तो क्या वे प्राकृत भाषा के ही थे और क्या उनमें यह भी लिखा था कि दि० आगमो की भाषा शौरसेनी है? हमें तो विश्वास नही होता कि ऐसा हो।

अन्त में हम निवेदन कर दे कि इतने गम्भीर महत्त्वपूर्ण विषय पर—जिसमें विभिन्न विद्वानों के अब तक विभिन्न मत रहे है, आगम के बारे मे अल्पावधिक चंद गोष्ठियाँ और पश्चाद्वर्ती विद्वान् किसी निर्णय करने के अधिकारी नही है। हमारी परम्परित प्राचीन आगम भाषा-भ्रष्ट नहीं है जैसा कि उस पर लाछन लगाया गया है। परम्परित आगम हमे सर्वथा प्रामाणिक है। उन्हे सशोधन के नाम पर अनिर्णीत किसी एक भाषा मे बदल देना आगमो की अवहेलना है। इस सम्बन्ध मे हम पर्याप्त प्रमाण दे चुके हैं और 'वागरण' आपके समक्ष है। कृपया स्वच्छ मन से चिन्तन करे इसी से आगम की रक्षा हो सकेगी।

एक बात और। हम सशोधकों की सभी मान्यताओ का विधिवत् निराकरण 'अनेकान्त' मार्च ९४ के अपने लेख में कर चुके है। उस ओर ध्यान नही दिया गया। अच्छा हो कि ये शौरसेनी की धुन छोड़ परम्परित दि० आगमो को पर-कालवर्ती सिद्ध करने जैसे (अन्जान) असफल प्रयास से विराम ले, ऐसी हमारी प्रार्थना है। वरना, ऐसा न हो कि इस भूल का खमियाजा भविष्य में समाज को भोगना पड़े। पिछली भूल का परिणाम शिखर जी का विवाद तो सामने है ही। आखिर, जब त्याग और ज्ञान ये दोनों संग्रह के पर्यायवाची बन गए हो और मिल बैठे तब सभी कुछ होना सभव है इसमे कोई सन्देह नही। —धन्यवाद

(पृ० १७ का शेषांश)

कर्त्तव्य बोध से शून्य है और नैतिक मूल्यो का उसके जीवन मे कोई महत्व नही है। चाहे शासक वर्ग हो या नागरिक जन, उनके जीवन मे आचरण की शुद्धता केवल उपदेश का अंग बनी हुई है। आज जनजीवन मे जो मूल्य पनप रहे है वे हैं भौतिकवादी प्रवृत्ति, आडम्बर, दिखावा, अधिकाधिक धन संचय और उसके लिए सभी प्रकार के हथकण्डे अपनाना। ऐसी स्थिति मे धर्म या धर्माचरण की बात करना मूर्खता मानी जाती है। इस अर्थ मे यदि देखा जाय तो यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण नही होगा कि आज मनुष्य बड़ी तीव्र गति से धर्म निरपेक्ष (धर्म से रहित या उदासीन) होता जा रहा है और वास्तव में ऐसी धर्म निरपेक्षता (धर्म के प्रति उदासीनता) की ओर उन्मुख है। इस वास्तविकता को हम झुठला नहीं सकते। इस तथ्य को स्वीकार करने मे हमे कोई हिचक भी नही होना चाहिए। जो उपनिवेशवाद हमारे मन मे घुस कर बैठा हुआ है वह उन सभी विकृतियो को उत्पन्न कर रहा है जो सामाजिक बिखराव के लिए आवश्यक है। परस्परिक घृणा और द्वेष के बीज उसी के परिणाम है। ऐसी स्थिति मे यदि देश मे हिंसा का ताण्डव होता है जैसा कि आए दिन हम देख रहे है। तो इसमें आश्चर्य नही होना चाहिये।

प्रथम तल, भा० दि० केन्द्रीय परिषद
१-ई/६, स्वामी रामतीर्थ नगर,
नई दिल्ली-११००५५

जरा सोचिए

कुछ भूली बिसरी यादें:—

—'अरिहंत' के विषय में (डा० नेमीचन्दजी, आरा)

"वर्तमान में अरिहंत' पद प्रचलित है, जो अहिंसा-संस्कृति के अनुकूल नही है। इस पद का शाब्दिक अर्थ है—अरि-शत्रुओं-कर्मशत्रुओ के हंत-हनन करने वाले, पर इस कोटि के मंगल मंत्र में हन् धातु का प्रयोग अहिंसा संस्कृति के अनुकूल किस प्रकार माना जायगा? व्यवहार मे देखा जाता है कि भोजन के समय मारना, काटना जैसे हिंसावाची क्रियापद अन्तराय का कारण माने जाते है, अत: कोई भी अहिंसक व्यक्ति इन शब्दों का प्रयोग मंगलकार्य मे किस प्रकार कर सकेगा? शिलालेख (खारवेल) मे प्रयुक्त 'अरहंत' पद का अर्थ अतिशय पूजा के योग्य है...षट्खण्डागम् टीका मे वीरसेनाचार्य ने उपरि-अंकित अर्थ की पुष्टि करते हुए कहा है—अतिशय पूजार्हत्वाद्वार्हन्त...' धवला टीका प्रथम जिल्द पृ० ४४) आचार्य वीरसेन द्वारा उद्धृत प्राचीन गाथाओ में भी 'अरहंत' पद आया है '···अरहंता दुण्णय कयंता' ···अतएव खारवेल का यह शिलालेख···मंत्र का प्रथम पद का पाठ निश्चित करने मे भी सहायक है। ई० पू० १०० तक 'अरहंत' पद का ही व्यवहार किया जाता था, पता नहीं किस प्रकार 'अरिहंत' पद पीछे प्रविष्ट हो गया।"

—'प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पृ० ६१, सन् १९६६।

उक्त विचार डा० सा० के स्वयं के हैं और विचार देना व्यक्ति का न्याय संगत मौलिक अधिकार है। अत: डा० सा० ने और हमने अपने विचार दिए। इससे यह तो नहीं माना जा सकता कि यहा शीर्षस्थ श्रुतधर आचार्यों को 'अरिहंत' पद का भाव न समझने का आरोपी बताया है। हम दोषी तो तब माने जाते जब पूर्वाचार्यों के मूल को अत्यन्तभ्रष्ट बताकर उनकी मूलकृति मे मनमाने संशोधन कर देने जैसा कि प्रचलन शोधकर्ताओ ने चला दिया है—कई मूल शास्त्र बदल दिए और अब 'उल्टा चोर कोतवाल को डाटे' वाली कहावत को चरितार्थ करने मे लगे हैं—

"खुद मियाँ फजीहत, दीगरां नसीहत।"

हम सलमान रुशदी या तस्लीमा नसरीन नही जो हम पर 'हिंसा हि परमोधर्म' का कहर बरपा हो। हम तो परंपरित मूल-रक्षा की बात करते रहे है और करते रहेंगे। क्योकि जैन धर्म रक्षा की इजाजत देता है—"अहिंसा हि परमोधर्म' का पाठ पढाता है। जरा सोचिए।

—संपादक

(पृ० २१ का शेषांश)

उपदेशमुद्रा मे होती है अर्थात् वह हाथ ऊपर उठा कर हथेली सामने करके सम्बोधन की मुद्रा मे निर्मित होती है। जिन प्रतिमा मे यह मुद्रा नही होती है किन्तु केवल आचार्य या उपाध्यक्ष के अकन मे देखी जाती है जो कि तीर्थंकर से नीचे की श्रेणी मे होते हैं और जिन्हें मोक्ष की प्राप्ति नहीं हुई होती है।

मानसार में यह भी उल्लिखित है कि बुद्ध प्रतिमा के कान लंबे अंकित किए जाने चाहिए। प्राय. जिन प्रतिमाओं के कान भी लंबे बनाए जाते है और वे कधो को लगभग छू ही जाते है। इस ग्रंथ में बुद्ध प्रतिमा के बहुत-से लक्षण जिन प्रतिमाओं के समान दिए गए है। उसमें लिखा है—"The Buddhist images should be made practically movable like the Jain images," P. 72

जिन प्रतिमाओं से अनेक साम्य होने के कारण भी बुद्ध प्रतिमाओं और तीर्थंकर प्रतिमाओ में भेद करने मे भूल हो जाती है। सबसे बड़ा भेद तो वस्त्र का है। बुद्ध मूर्तियां वस्त्र सहित होती हैं जब कि जैन मूर्ति दिगम्बर होती है। दिक् या दिशा ही उसका अम्बर या वस्त्र होता है। वह उस आत्मा का ध्यान दिलाती है जिसने रचमात्र सासारिक साधन अपने पास नहीं रखा और न ही मन की कोई बात किसी से छिपाई। बुरे भाव सदा के लिए अपने से दूर कर दिए।

बी १/३२४ जनकपुरी,
नई दिल्ली-५८

११. राहुल सांकृत्यायन—ऋग्वैदिक आर्य पृ० ६

१२. अत्रिदेव : आयुर्वेद का इतिहास पृ. २०६

१३. कांगड़ा गजेटियर पृ० ५०१

१४. शिवप्रसाद डबराल : उत्तराखण्ड के भोटान्तिक पृ० ८

१५. राहुल सांकृत्यायन : ऋग्वैदिक आर्य पृष्ठ ८३

१६. डबराल—भोटान्तिक पृ० ८

१७. भेदा: किरात शबर पुलिन्दा म्लेच्छजातय:
—अमरकोष २।१०।२०

१८. डबराल भोटांतिक पृ० ८

१९. राहुल सांकृत्यायन : ऋग्वैदिक आर्य पृ० ८१

२०. वही पृ० ८२

२१. आदिपुराण भाग २ पृ० १२७

डा० जगदीसचन्द्र जैन प्राकृत साहित्य का इतिहास पृ० ११७

२२. राहुल सांकृत्यायन : ऋग्वैदिक आर्य पृ० ८३

२३. शेरिंग : Western Tibet and Baitish borderland पृ० १५

२४. राहुल सांकृत्यायन : ऋग्वैदिक आर्य पृ० ८३

२५. राहुल साकृत्यायन : पुरातत्त्व निबन्धावली पृ० ११५

२६ Hodiwal : Studies in Indo Muslim history.

२७. कांगड़ा गजेटियर पृ० १७२

२८. (अ) Pyggot Be hristoirc India.
Anciet cities of India पृ० २२६

२९. महाभारत—वनपर्व अ० ४२

३०. ग्रियर्सन : लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया जिल्द १ खण्ड १ पृष्ठ ४१

३१. Sherring : Western Tibet and British borderland P. २०४-२०५ ।

३२. काश्मीरन्तु समारभ्य कामरूपात्त्व पश्चिमे ।
भोटान्त देशो देवेशि ! मानसेशाच्च दक्षिणे ॥
शक्ति संगमा तंत्र ३।७।३३

३३. जेहिं किज्जअ घाला, जिण्णुणिवाला, भोटन्त पिट्टन्त चले ।
भंजाविय चीणा, दवाहि हीणा लोहावत हाकंद पले ।
... ...काशी राआ जक्षण चले ।
राहुल सांकृत्यायन पुरातत्त्व निबन्धावली

३४. म्लेच्छ जातीया: : दरदभूटभेदादयश्चांडाल भेदा.

३५. प्राकृत साहित्य का इतिहास पृ० २६

३६. Illiot or Dowson : The Arab Geographers.

३७. विष्णुपुराण भारत : चौखम्भा संस्करण १९६७ ई. पृ० ३२ तथा Studies in the Geography of Ancient and medieval India, P. 95

३८. आदिपुराण में प्रतिपादित भारत आदि पुराण २६।४६ पृ० ५४

३९. अनणुकोणोत्कूणित पाणिभि: किरातै: परिवृत: पृ० २२०

४०. डा० जगदीश चन्द्र जैन : प्राकृत साहित्य का इतिहास पृ० ११३

४१. वेदव्यास स्मृति १।१०-११

४२. मनुस्मृति ६०।४३-४४

४३. अथर्वेद १०।४।१४ तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।४।११

४४. महाभारत—अनुशासन पर्व ३५।१७।१८

४५. किरातार्जुनीयम् १२।४०-४३

४६ धर्मशास्त्र का इतिहास भाग-१ पृ० १२६

४७. अभिधान रत्नमाला २।५६८

४८. महाभारत (कर्ण पर्व) ७३।२०

४९. भगवती सूत्र ६।३३।३८०

५०. Dr. J. C. Sikdar : Studies in Bhagwati sutra P. 321

५१. जम्बुद्वीव पण्णत्ति, ५६ पृष्ठ २३

५२. विष्णु पुराण (विलसन का संस्मरण) पृ० १५६-६०

५३. Le' Nepal. 11 PP. 7218 Sylvain levi

५४. J. A. S. B. XIX Leong-chroncles of Tripura P. 536

५५. पउमचरिय २७।७-६

५६. रघुवंश ३।८०

५७. स्काफ द्वारा अनुवाद पृ० ४७, ६२

५८. मैकक्रिण्डल्स टोलेमी, मजूमदार द्वारा सम्पादित पृ० १९४

५९. कालिदास का भारत भाग पृ० ६२

कागज प्राप्ति :—श्रीमती अंगूरी देवी जैन, धर्मपत्नी श्री शान्तीलाल जैन कागजी के सौजन्य से, नई दिल्ली

Regd. with the Registrar of Newspaper at R. No. 10591/62

वीर-सेवा-मन्दिर के उपयोगी प्रकाशन

जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह, भाग १ : संस्कृत और प्राकृत के १७१ अप्रकाशित ग्रन्थों की प्रशस्तियों का मंगलाचरण सहित अपूर्व संग्रह, उपयोगी ११ परिशिष्टों और पं० परमानन्द शास्त्री की इतिहास-विषयक साहित्य-परिचयात्मक प्रस्तावना से अलंकृत, सजिल्द। ... ६-००

जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह, भाग २ : अपभ्रंश के १२२ अप्रकाशित ग्रन्थों की प्रशस्तियों का महत्वपूर्ण संग्रह। पचपन ग्रन्थकारों के ऐतिहासिक ग्रंथ-परिचय और परिशिष्टों सहित। सं. पं. परमानन्द शास्त्री। सजिल्द। १५-००

श्रवणबेलगोल और दक्षिण के अन्य जैन तीर्थ : श्री राजकृष्ण जैन ... ६-००

जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश : पृष्ठ संख्या ७४, सजिल्द। ७-००

जैन लक्षणावली (तीन भागों में) : सं० पं० बालचन्द सिद्धान्त शास्त्री प्रत्येक भाग ४०-००

Basic Tenents of Jainism : By Shri Dashrath Jain Advocate 5-00

Jaina Bibliography Shri Chhotelal Jain, (An universal Encyclopaedia of Jain-References) In two Vol.

Volume I contains 1 to 1044 pages, volume II contains 1045 to 1918 pages size crown octavo

Huge cost is involved in its publication. But in order to provide it to each library, its library edition is made available only in 600/- for one set of 2 volume 600-00

सम्पादन परामर्शदाता : श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, सम्पादक श्री पद्मचन्द्र शास्त्री

प्रकाशक—भारतभूषण जैन एडवोकेट, वीरसेवा मन्दिर के लिए, गीता प्रिंटिंग एजेन्सी, डी०-१०५, न्यू सीलमपुर, दिल्ली-५३ द्वारा मुद्रित

प्रिन्टेड
पत्रिका बुक-पोस्ट

'ANEKANT' Periodical—June 1994